श्रीत्रिपुरा-रहस्य

(चर्याखण्ड)

हिन्दीव्याख्यासहितम्

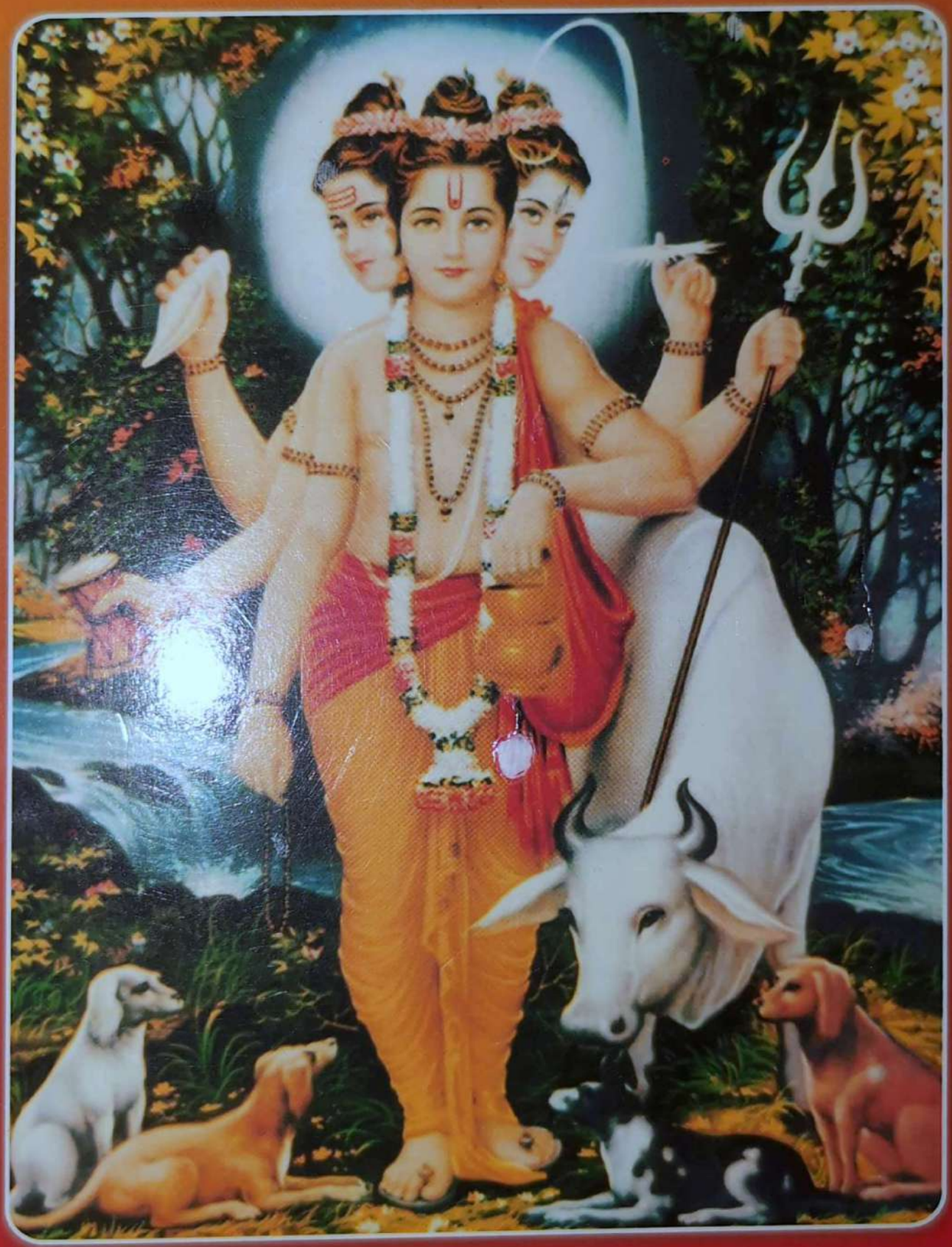

व्याख्याकार:

आचार्य रविशङ्कर द्विवेदिनः

ज्योतिष्पीठ पण्डित

त्रिपुरारहस्य चर्याखण्ड

व्याख्याकारः
आचार्य रविशङ्कर द्विवेदः
झोतेश्वर (म.प्र.)

सर्वाधिकार - प्रकाशकाधीन
प्रथम संस्करण - 1000 प्रति
मार्गशुक्ल-11 संवत् 2075
गीता जयन्ती
18 दिसम्बर 2018
दूरभाष - 9424606561

मूल्यम् - 100/-

प्रकाशक
श्रीराजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी विद्यापीठ मंदिर
परमहंसी गंगा आश्रम, ज्यौंतेश्वर, श्रीधाम, नरसिंहपुर (म.प्र.)

मुद्रक
वोरार्ट, सर्वोदय, जी.पी.ओ. के पास, अहमदाबाद

अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
श्रीशारदापीठम्
द्वारका, देवभूमि द्वारका (गुजरात)
दूरभाष : 02892-235109
जोशीमठ
तोटकाचार्य गुफा, चमोली, गढ़वाल (उत्तराखण्ड)
दूरभाष : 01389-222185

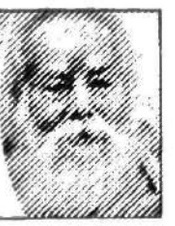

क्रमाङ्क :

दिनाङ्क :
स्थान :

शुभाशीर्वादाः

हरितायन-प्रोक्त त्रिपुरारहस्य ग्रन्थ के तीन खण्डों में से तृतीय **'चर्याखण्ड'** पूर्णरूप से नहीं मिल पा रहा है । प्राप्त चर्याखण्ड में जो विषय ज्ञात हुए हैं उनमें चर्या का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है । प्राप्त अध्यायों में पूजाविधान के साथ पात्रासादन क्रम तथा अन्त में पूजोद्वासन और पात्रोद्वासन विधि का उल्लेख मिलता है ।

अन्तिम अध्याय में कामकला रहस्य का विवेचन भी मिलता है । अतः जिज्ञास्य क्रम का अधिकांश रूप में परिचय हो जाने से जिज्ञासु साधक का उत्साह बढ़ेगा । इस आधार पर यह अनुवाद मूलग्रन्थ के आधार पर तैयार किया जा रहा है । इस अपूर्व ग्रन्थ की सफलता के लिए हमारे नारायणस्मरणात्मक आशीर्वाद हैं ।

शुभैषी

स्वरूपानन्द सरस्वती

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती
जगद्गुरु शङ्कराचार्य
ज्योतिष्पीठ एवं द्वारका शारदापीठ

अ.ज्येष्ठ शु. ५/वि.-२०७५
१९/५/२०१८
श्री परमहंसी गंगा आश्रम
नरसिंहपुर (म.प्र.)

समर्पणम्

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं,
यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै-
तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं,
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ (श्वेताश्वतर उप. 6/18)

देहेन्द्रियाणि च मनो न तु मे तवैव ।
स्वात्मीयबान्धवगणा न तु मे तवैते ॥
सर्वं त्वददीयमिति मे प्रियमेव सर्वम् ।
त्वत्प्रीतये सततमेव नियोजयामि ॥
(श्रीयन्त्रः श्रीविद्या दिव्यत्व विशेष न्यासविधिः ग्रन्थ से साभार)

श्रीमद्गुरुचरणपादुकाभ्यां नमः ।
शरणापन्नोऽस्मि !!!
रविशङ्करो द्विवेदः

प्रकाशकीय

ऋषियों-महर्षियों के इस पवित्र देश में जहाँ गंगा-यमुना के रूप में साक्षात् ब्रह्मद्रव प्रवाहित हो रहा है, द्वादशज्योतिर्लिंगों के रूप में वही परब्रह्म चमत्कृत होकर प्रगट हो रहा है, इक्यावन शक्तिपीठों में अपनी परमाद्याशक्ति के रूप में विराजित है, चारों धामों में स्वयं धर्म-ब्रह्म की सत्ता रूप में अवस्थित है - जब भी यहाँ ब्रह्म के प्रति अनास्था उत्पन्न हुयी है, धर्म के प्रति अश्रद्धा फैली है, वेदों के प्रति उपेक्षा का भाव आया है, यज्ञों के स्वरूप में विकृति आयी है, वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ, सदाचारी - ब्राह्मणों पर वज्रपात हुआ है, सतोगुण को दबाकर रजोगुण एवं तमोगुण का साम्राज्य छाया है, धर्म का स्थान अधर्म, पाखण्ड, ढोंग आदि ने ग्रहण किया है - तब ही कोई न कोई ईश्वरीय विभूति वेद-धर्म की रक्षार्थ अवतरित हुयी है ।

लगभग 2525 वर्ष पूर्व भी इस पुरातन-सनातन देश भारत में ऐसा ही भयावह समय उपस्थित हुआ; सनातन-वैदिक धर्म एवं यज्ञ-यागादि कर्म एकदम उपेक्षित हो गये; नास्तिकवादी बौद्ध धर्म ने वैदिक धर्मों का निषेध कर डाला । अनधिकारी तथाकथित वैदिकों को मोहित करके वेदादिधर्म शास्त्रों के प्रति अनास्था उत्पन्न कर दी । वर्णाश्रम धर्म के वैदिक आचारों को केवल धन्धा कमाने का साधन बताकर बौद्धों ने सर्वत्र ब्रह्मविद्वेष फैला दिया- सारांश ! सनातन वैदिक धर्म इस धर्मप्राण देश भारत में ही सिसक रहा था, दम तोड़ रहा था । मुट्ठी भर वैदिक मूल संरक्षण-निरत रहकर वेदों के मूल की रक्षा कर रहे थे - वे चिन्तित थे कि - 'को वेदानुद्धरिष्यति'? भगवान् बुद्ध ने जो उपनिषद् मूलक धर्मोपदेश दिया था उसे भी प्रमादवश भुला दिया गया था । उसमें भी विकृति आ गयी थी । त्याग का स्थान भोगवाद ने ले लिया था । वैदिक कर्मकाण्ड की ऐसी दुर्दशा हो रही थी कि वेदों को भाण्डों, धूर्तों, निशाचरों की रचना बताया जाने लगा था । तत्कालीन शासक भी विपरीत प्रभाव में बह गये थे । शक्तिशाली बौद्धों के समुदाय, शिष्य और संघ के साथ राजाओं के महलों में प्रवेश करके घोषित कर देते कि 'राजा उनके मत का है, देश उनका है, वैदिक मार्ग का सर्वथा त्याग कर दो'। ऐसा भयावह समय इस राष्ट्र में उपस्थित होने पर जब यज्ञादि बन्द होने से देवगण भी सन्तप्त हो गये तो सब देवता कैलाश पर्वत पर भगवान शङ्कर की

शरण में गये और सम्पूर्ण स्थिति निवेदित करते हुए कहा - "प्रभु आजकल न कोई मनुष्य सन्ध्यावन्दनादि वैदिक कर्म करता है न संन्यास सेवन करता है, सभी पाखण्ड रत हैं - यज्ञ शब्द भी कान में न पड़े अतः कान बन्द कर लेते हैं लोग - परमात्मा का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों को बौद्धों ने दूषित कर अनर्थ कर डाला है । प्रभो! अब तो दुष्टों का विनाश कर वैदिक मार्ग की स्थापना कीजिये, देवगणों की प्रार्थना स्वीकार करते हुए भगवान शङ्कर ने कहा कि - "कुमार कार्तिकेय तुम वैदिक कर्मकाण्ड के उद्धार के लिए भारत में अवतार लो; ब्रह्मा जी व इन्द्र तुम्हारी सहायता के लिए उत्पन्न होंगे; हम स्वयं अवतरित होंगे तथा आप अन्य देवतागण भी मनुष्य रूप धारण कर भारतवर्ष में जन्म लो".... इस प्रकार कुमार कार्तिकेय-कुमारिल भट्ट बने । ब्रह्मदेव - मण्डनमिश्र के रूप में आये । इन्द्र-राजा सुधन्वा के रूप में प्रकट हुए । विष्णु भगवान सनन्दन और शेषनाग पतंजलि के रूप में इस धरती पर आ गये । वायु बने हस्तामलक तथा वरुण ने चित्सुख के रूप में जन्म लिया । वृहस्पति आनन्दगिरि और सरस्वती ने उभय-भारती के रूप में जन्म लिया । अन्य अन्य देवता भी भगवान शङ्कर के निर्देशानुसार इस पवित्र राष्ट्र में मानवरूप में अवतरित हो गये वेद का उद्धार करने के लिये । वेद के तीन काण्ड है - कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड । मण्डनमिश्र तथा कुमारिल भट्ट ने 'कर्मकाण्ड' का पुनरुद्धार किया । पतंजलि ने 'उपासनाकाण्ड' की रक्षा की और 'ज्ञानकाण्ड' का उद्धार करने के लिये स्वयं भगवान शङ्कर 'आद्यश्रीशङ्कराचार्य' के रूप में इस धरा पर अवतीर्ण हुए ।

वेदान्त मत के प्रबल पोषक भगवत्पादशङ्कर ने समस्त भूमण्डल पर अद्वैतमत की पुनर्स्थापना कर अवैदिकों की दीवाल को धराशायी कर वैदिक मत का किला खड़ा कर दिया । प्रसिद्ध है कि आद्यशङ्कर ने उपासनीय ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए, और चित्त शुद्धयर्थ देवोपासना (कर्मकाण्ड) की आराधना भी करनी चाहिए । उन्होंने पञ्चदेवोपासना अर्थात् आराध्य योग्य इष्टदेव की आराधना करने का आदेश दिया । एतदर्थ अलौकिक स्तोत्रों की रचनाकर स्वयं के द्वारा स्थापित चारों मठों में शिवशक्ति (चन्द्रमौलीश्वर), पराम्बा ललिता की अराधना हो सके उनकी पूजा विधान प्रारम्भ करवाया।

भगवत्पाद स्वयं जगदम्बोपासक थे । देव्यक्षमापान स्तोत्र और सौन्दर्यलहरी

आदि इसके प्रबल प्रमाण हैं । शक्ति की उपासना में "माँ" क्या है, सौन्दर्य-लहरी के प्रथम श्लोक में आद्यशङ्कर स्वयं प्रार्थना कर रहे हैं -

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥1॥

भगवान् शिव शक्ति से युक्त होकर ही सृष्टि का संचालन करने में स्वयं को समर्थ पाते हैं । पराशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरी राजराजेश्वरी से संयुक्त न हों, तो उनमें स्पंदन भी संभव नहीं है । तब वे सृष्टि, संहार या संतुलन रखने में भी अपने आप को सामर्थ्यवान् नहीं पाते हैं । प्रकृति के बिना पुरुष मात्र कल्पना है । **माँ**! जिनके अनेक जन्मजन्मान्तरों के पुण्य उदय हों वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर द्वारा पूजनीया आपश्री की स्तुति, पूजन, वन्दन करने का अधिकारी बन आपकी चरणधूलि प्राप्त कर सकता है ।

और भगवत्पाद को माँ की कृपा कैसे प्राप्त हुई, सौन्दर्य लहरी के 75 वें मन्त्र से सिद्ध है -

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः
पयःपारावारः परिवहति सारस्वतमिव ।
दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्
कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता ॥75॥

हे पर्वतराज पुत्री! तुम्हारे वक्षस्थल से झरता हुआ शुद्ध श्वेत क्षीर तुम्हारे हृदय से बहते हुए अमृत प्रवाह के समान प्रतीत होता है । लगता है कि श्वेतवर्णयुक्त वाग्देवता सरस्वती ही वह रूप धारण कर आ गयी हो । करुणामयी (स्तन पान करके) दूध पीकर द्रविड़ शिशु मनमोहक श्रेष्ठ कवि बन गया है न?

विशेष - द्रविण शिशु का सङ्केत शङ्करभगवत्पाद ने स्वयं के लिए किया प्रतीत होता है । कथा है कि शङ्कर के पिता के बाहर जाने पर घर के देवताओं की पूजा उनकी पत्नी आर्याम्बा करती थीं । एक बार उनके अशुचि अवस्था के कारण बालक शङ्कर को भगवती के पूजन का सुअवसर मिला । नैवेद्य में प्रतिदिन दूध का भोग अर्पित किया जाता था, शङ्कर ने भी दूध का नैवेद्य लगाया । उनका बाल मन समझता था कि भगवती दूध पीती

हैं सो उनको पीता न देख वे रोने लगे। उनको रोता देख भगवती साक्षात् प्रकट हुई और सारा दूध पी गईं । भोग के बाद का दूध शङ्कर को ही मिलता था सो वे पुनः रोने लगे तब भगवती ने कृपाकर बालक शङ्कर को अपना स्तनपान कराया । स्तनपान करते ही बालक शङ्कर ने उनकी स्तुति एक उच्चकोटि की कविता के माध्यम से करने लगे ।

''अष्टवर्षे चतुर्वेदी''

पिता के घर लौटने पर यह बात पता चली तो उन्हें एक साथ हर्ष विषाद दोनों हुआ । रात्रि में भगवती ने स्वप्न देकर शङ्कर के अवतारी होने का सन्देश पिता को दिया ।

अर्थात् **माँ की करुणा असंभव को संभव करे** । भगवत्पाद्यशङ्कराचार्य की परम्परा में पीठद्वय का निर्वहन करने वाले जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज ने परमहंसी गंगा आश्रम, झोंतेश्वर में माँ भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी का विशाल मंदिर निर्मित कर गर्भगृह में एक रजत सिंहासन पर माँ को स्थापित किया । इधर जगदम्बा ने उन्हें दो (**पीठद्वय**) सिंहासनों पर विराजमान करा दिया, यही उनकी अहैतुकी कृपा है ।

प्रकृत ग्रन्थ के तीन विभाग है - माहात्म्यखण्ड, ज्ञानखण्ड प्राप्त थे चर्याखण्ड जैसे ही प्राप्त हुआ, पूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज ने ज्योतिष्पीठ पंडित आचार्य श्री रविशंकर द्विवेजी जी को अनुवाद के लिए आज्ञा दी । चर्याखण्ड की दुर्लभता और अप्राप्त की प्राप्ति कैसे हुई, इसका निवेदन पीठ पण्डित द्विवेदी जी ने ''दीक्षा'' में स्वयं किया ही है ।

पूज्य महाराजश्री इस युग के सर्वश्रेष्ठ श्रीविद्योपासक महापुरुष हैं । उनके आदेश से पूर्णाभिषिक्त आचार्य श्री रविशंकर द्विवेदी ने चर्याखण्ड अनुवादित कर श्रीविद्या उपासना क्रम में एक नया अध्याय जोड़ दिया है ।

अतः महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना का दुर्लभ ग्रन्थ **चर्याखण्ड** त्रिपुरसुन्दरी सेवा ट्रस्ट प्रकाशित कर प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है ।

नारायणस्मरण सहित -

(स्वामी सदानन्द सरस्वती)
सचिव, राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी सेवा ट्रस्ट,
परमहंसी गंगा आश्रम, झोंतेश्वर (म.प्र.)

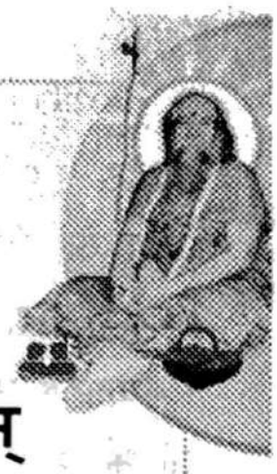

यस्यां गुरोश्चरणपङ्कजमेव लभ्यम्

कोई ' शाम्भवी अवस्था' है । इस अवस्था की उपलब्धि 'श्रीगुरु के चरणकमल हैं । उसी अवस्था के स्फुरण की हर साधक को प्रतीक्षा है । साधना इष्ट की और उपलब्धि गुरुचरण की ? उठता है न अनूठा सा प्रश्न ? पर जानकार जानते हैं कि ज्ञानचक्षु के उद्घाटन से ही 'ज्ञेय' की उपलब्धि होगी । ज्ञानचक्षु ही आज्ञाचक्र है । शाम्भवी अवस्था आज्ञाचक्र की जागरितावस्था है ।

आज्ञाचक्र के जागरण के बिना ज्ञान चक्षु खुलेगा ही नहीं और ज्ञानचक्षु के खुले बिना इष्टदर्शन होगा नहीं । इसलिए 'गुरोश्चरणपङ्कज ही लक्ष्य' हो तो इष्टसाधनता सम्पन्न होती है । तब आँखे तो खुली होती हैं पर दृश्य नहीं होता क्योंकि दिव्यचक्षु के प्राप्त होते ही चर्मचक्षु तात्पर्यहीन हो जाते हैं । उपलब्धि उपचार से होती है । उपचार ही उपचर्या है और वही उपचर्या अपने गहन अर्थ में 'चर्या' हो जाती है । 'चर्या' का अधिकारी अनन्य होता है । यही शिवशक्ति सामरस्य है । साधक की शिवोऽहं की भावना 'चर्या' का निकष है ।

अनेक दिनों से 'त्रिपुरा रहस्य' का यह तीसरा 'चर्या-खण्ड' होकर भी विलुप्त सा था । यह रहस्य ही है कि अकस्मात् यह 'श्रीगुरु' के सम्मुख 'साधकोत्तम' को कैसे उपलब्ध हो गया ? जैसे उस परमतत्व के ज्ञात हो जाने से कुछ भी अज्ञात नहीं रहता, सब कुछ विज्ञात ही हो जाता है वैसे ही लभ्य को लब्ध को भी कुछ अलभ्य अथवा अलब्ध नहीं रहता ।

ज्योतिष्पीठ की ज्योति के ज्योतित स्तम्भ ज्योतिष्पीठ पण्डित आचार्य रविशंकर द्विवेदी जी ही 'श्रीसुन्दरी' की सघन-साधना के सिन्धु 'दुण्डिराजानन्दनाथ' हैं । चर्याखण्ड की उनकी उपलब्धि चर्या की उपलब्धि है । इसकी पुष्टि हमारे द्वारा इनके लिए आरम्भ में ही कथित 'यस्यां गुरोश्चरणपङ्कजमेव लभ्यम्' की उक्ति है। कहना होगा -

धन्योऽस्ति श्रीमठसुमण्डितदुण्ढिनाथः श्रीपीठपण्डितवरो रविशङ्कराख्यः।

येनानुवादविधिना विहिता सपर्या श्रीशाम्भवी सुनिहिता गुरुणाहयवस्था॥

स्वामिश्रीः अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती
परम सुगोप्ता, धर्मसंघ 1008

पत्राचार/कार्यालय · ज्योतिष्पीठ, केदारपीठ आश्रम 221007
हेल्पलाईन 96703 96703 (चौबीस घंटे), चार्टर्स अप 96705 96705 विश्व केन्द्र 96704 96704
ईमेल info@dharmasansad1008.in वेबसाइट www.dharmasansad1008.in
ट्विटर dharmasansad1008 ट्विटर @dharmasansad1008

कुछ पूछने - जानने में संकोच न करें। हम आपके लिये ही कार्य कर रहे हैं।

श्री ललिता महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः

श्रीत्रिपुरारहस्य श्रीविद्या उपासना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, इसका उपदेश भगवान दत्तात्रेय ने श्री परशुरामजी को दिया तब से परशुराम जी विद्या के परम आचार्य माने जाते हैं । इसी त्रिपुरा रहस्य के आधार पर उन्होंने परशुराम कल्पसूत्र ग्रन्थ की रचना की, इसके भी सार रूप में सुमेधात्रृषि ने भगवती बाला की आज्ञा से त्रिपुरा रहस्य नामक ग्रन्थ नारद जी को सुनाया वही ग्रन्थ आज भारत में श्री विद्योपासकों के लिए प्रकाश स्तम्भ जैसा है ।

इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं, माहात्म्यखण्ड, ज्ञानखण्ड और चर्याखण्ड। माहात्म्य खण्ड और ज्ञानखण्ड तो प्रकाशित हैं चर्याखण्ड पूर्णरूप से अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया है क्योंकि यह उपलब्ध नहीं हो पाया है । भगवती के अनुग्रह से पूज्यपाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के हरिद्वार चातुर्मास्य के समय पूज्य महाराज श्री के पूर्णाभिषिक्त साधक ज्योतिष्पीठ पंडित आचार्य श्री रविशङ्कर द्विवेदी शास्त्री जी को मूल प्रति प्राप्त हुई जो 9 अध्यायात्मक है । जिसका अनुवाद पूज्य गुरुदेव की आज्ञा से श्री शास्त्री जी ने अथक परिश्रम कर किया है । निश्चय ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जिज्ञासु श्रीविद्यासाधकों को एक अमूल्यनिधि प्राप्त हो रही है ।

श्रीमाता राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी जगदम्बा से ग्रन्थ के सफल प्रकाशन हेतु प्रार्थना करता हूँ ।

भाद्रकृष्ण एकादशी
चातुर्मास्य द्वारका शारदामठ
देवभूमि द्वारका (गुजरात)

(**कैवल्यानन्द ब्रह्मचारी**)

संदेश (11)

त्रिपुरा-सपर्या-सन्देश

"त्रिपुरा रहस्य" संज्ञक दुर्लभ एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद तथा सम्पादन अत्यन्त कठिन कार्य है, जिसमें उसके तृतीय भाग "चर्याखण्ड" का अनुवाद द्विपीठाधीश्वर परम्पूज्य जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज की आज्ञा से ज्योतिष्पीठ पण्डित एवं तपः मनीषी विद्वद्धुरीण श्री रविशंकर शास्त्री जी ने किया है । यह दुःसाध्य कार्य निश्चित रूप से शास्त्री जी की सुदीर्घ साधना और गुरुकृपा का पावन परिपाक है । इस खण्ड का मूल प्रकाशन "चिकितुषी" अंक दो के विद्वान् सम्पादक प्रो0 वागीश शुक्ल ने एतत्पूर्व किया था, किन्तु ऐसा साङ्गोपाङ्ग उपयोगी विस्तृत और समुचित अनुवाद पण्डित जी के तन्त्रज्ञान, विद्वता, भगवती त्रिपुरसुन्दरी की कृपा और गुरु जी के आशीर्वाद से ही सम्भव था ।

इसके प्रकाशन से भक्तों,उपासकों और साधकों को भगवती की आराधना हेतु लगभग ढेर सारी आवश्यक सामग्री एकत्र प्राप्त हो सकेगी, जिससे भोग और मोक्ष, इन दोनों की उपलब्धि इसी ग्रन्थ-सामग्री और विधि के द्वारा सरलतया सम्भव हो जाएगी । अतः इसके अनुवाद और प्रकाशन, दोनों पुण्यप्रद हैं । इस खण्ड के न प्रकाशित होने के कारण पूर्व दो खण्डों के प्रकाशन के बावजूद ग्रन्थ को पूजनादि की दृष्टि से व्यवस्थित नहीं कहा जा सकता था । ऐसी स्थिति में इस ज्ञानपिटक को सुष्ठु व्यवस्था प्रदान करने का सौभाग्य अनुवादक को प्राप्त हुआ, एतदर्थ सम्पादक शास्त्री जी पुण्ययश और अनुकम्पा तीनों के लिए भाग्यशाली गुरुभक्त हैं । ध्यातव्य है कि इसके प्रकाशन के बाद भी ग्रन्थ के ढेर सारे अध्यायों का प्रकाशन अवशिष्ट हैं ।

यद्यपि शास्त्री जी ने एतत्पूर्व अनेक महत्त्वपूर्ण एवं शास्त्रीय ग्रन्थों पर कार्य किया है (तभी तो इस चर्याखण्ड के लिए आप प्रवृत्त हो सके) फिर भी यह कार्य नितान्त महत्त्वपूर्ण है और शास्त्री जी के जन्मजन्मान्तरीय पुण्यराशि का सुफल है ।

हम इस परमपावन, उत्कृष्ट एवं असंख्यजन समुदाय को पुण्य एवं भुक्ति-मुक्ति का भाजन बनाने वाले प्रकृत ग्रन्थ-भाग के स्वनाम धन्य अनुवादक/सम्पादक पण्डितप्रवर श्री रविशङ्कर शास्त्री जी को अनेकानेक साधुवाद देते हैं और प्रणति के साथ आपके स्वस्थ व सुदीर्घ जीवन-यात्रा के लिए भगवान् द्वारकाधीश से प्रार्थना करते हैं ।

विदुषां वशंवदः महामहोपाध्याय

आचार्य जयप्रकाश नारायण द्विवेदी

द्वारका (गुजरात)

दीक्षा

भगवती श्री विद्या के माहात्म्य का वर्णन श्रीत्रिपुरारहस्य ग्रन्थ के माहात्म्यखण्ड का परिचय होने के बाद क्रमशः फिर ज्ञानखण्ड का परिचय हुआ । इसी क्रम में श्रीत्रिपुरा रहस्य के तृतीय खण्ड ''चर्याखण्ड'' का नाम कर्णगोचर हुआ । इसकी जानकारी के लिए यथा ज्ञान, तथा यथा परिचय स्थलों एवं विद्वानों से सम्पर्क करने पर भी निश्चित रूप से ज्ञान नहीं हो पा रहा था ।

इसी जिज्ञासा के बीच में पूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज जी का १९८५-८६ सन् में स्वर्गीय नेपाल नरेश के आमन्त्रण पर उनके साथ मुझे भी जाने का अवसर मिला । काठमाण्डू में पूज्य महाराज जी ने मुझे आदेश दिया; कि नेपाल में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त हो जाते हैं अतः तुम यहाँ खोज करो, कहीं ''चर्याखण्ड'' प्राप्त हो जाये तो पर्याप्त मूल्य देकर ले आओ । मैं आज्ञा पाकर खोज करते हुए एक विशाल पुस्तक भण्डार में गया, वहाँ पर्याप्त ग्रन्थों को देखकर मैंने व्यवस्थापक महोदय से पूछा कि मैं जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी के यहाँ से आया हूँ , मुझे ''चर्याखण्ड'' जो त्रिपुरारहस्य नामक ग्रन्थ का तृतीय भाग है खरीदना है यह सुनकर वे व्यवस्थापक महोदय बोले श्रीमन् ! आप इन पुरानी पुस्तकों को खोजते हैं । वे इस समय दुर्लभ हो गई हैं । पाठकों की रुचि अब बदल गई है । बहुत ही कम लोग इन्हें खोजते हैं । पर आपको यहाँ यह पुस्तक नहीं मिल सकेगी। मैंने इधर -उधर देखते हुए एक कागजों के ढेर में एक छोटी सी ९-१० पन्नों की पुस्तक जैसी देखा उत्सुकता से मैंने उठाकर उलट-पलट कर देखा उसमें कुछ रेखा चित्र योगिनियों

तथा इन्द्रादि लोकपालों के बने थे । मैंने उन महोदय से कहा आपके यहाँ से खाली हाथ नहीं जाना चाहते हैं, अतः इसका मूल्य बताइये । वह हँसा, और बोला यह तो बेकार कागजों में ढेर में फेका हुआ कागज है आप ऐसे ही ले जाइये । मैंने कागज में छोटा सा कागज की इस पुस्तकालय से बिना मूल्य के नहीं लूँगा । सुनकर वह बोला ठीक, आप एक रूपया दे दीजिये, मैंने वह दिया वापस आकर बताया कि महाराज जी ! ''चर्याखण्ड'' तो कोई जानता ही नहीं है । प्राचीन एवं दुर्लभ होने से कोई प्रयत्नशील भी नहीं होता । ऐसा मैंने उस व्यवस्थापक की बातें बताया तथा जो छोटी पुस्तिका खरीदा था, उसे पूज्य महाराज जी को दिखाया और बताया कि महाराज जी इसमें ग्रहादिकों के रेखाचित्र हैं, उनमें ६४ योगिनियों के चार समूह सचित्र है यह सुनकर उन्होंने देखा और बोले यह तो अपूर्व उपलब्धि हो गई । अब तुम्हीं इन चार समूहों में से एक समूह की योगिनियों का चयन करो । मैंने अनजान स्थिति में पूज्य महाराज जी के चरणों का स्पर्श कर ''अक्षोभ्यादि जयन्तिकान्त'' योगिनी समूह वाला भाग निवेदित किया। उन्होंने स्वीकृति दी तथा आश्रम में प्रतिष्ठा की। यह स्मरणीय है कि म.प्र. के जबलपुर के निकट नर्मदा तट के प्रसिद्ध भेड़ाघाट धुआंधार क्षेत्र में चौंसठ योगिनी'' नाम से प्रसिद्ध श्रीगौरीशंकर मन्दिर सहित एक प्रसिद्ध शक्तिपीठ रूप से प्रसिद्ध स्थान है जो प्राचीन राज्य व्यवस्था से युक्त था वहाँ चौंसठ योगिनियों की मूर्तियाँ प्राचीन मूर्ति कला की सुन्दर विशाल मूर्तियाँ स्थापित है परन्तु वे सभी रानीदुर्गावती के राज्य (आदिवासी) में मुगल सम्राट अकबर के आक्रमण से) ६४ नहीं हैं। एवं सभी लगभग ४८ की संख्या में हैं, तथा सभी खण्डित हैं। केवल नाम

की ''चौंसठ योगिनी'' मन्दिर की प्रसिद्धि है तथा धूआंधार ''नर्मदातट के होने से पर्यटक स्थल है।

चौंसठ योगिनी'' स्थल भेड़ाघाट स्टेशन क्षेत्र नर्मदा तट में है । यह जबलपुर (म.प्र.) से नरसिंहपुर जाने वाले मार्ग में है । यहाँ नरसिंहपुर जिले के ''गोटेगांव (श्रीधाम) होकर जाता है । गोटेगांव का ''श्रीधाम'' यह नाम-करण पूज्य शङ्कराचार्य जी ने किया है। रेलवे ने श्रीधाम नाम से भी रेलवे स्टेशन प्रसिद्ध किया है । श्रीधाम से लगभग १६कि.मी. पर श्रीवनम् परमहंसीगङ्गा आश्रम ज्योतेश्वर (झौंतेश्वर) की स्थापना की है। यह आश्रम तब स्थापित हुआ जब पूज्य शङ्कराचार्य जी स्वतन्त्रतासंग्राम में कारावास से मुक्त होकर यहाँ की आरक्षित वनस्थली में आये थे । यहाँ दैवी प्रेरणावश उन्होंने वर्षों तक सघन वन में एकान्त वास करते हुए श्री सिद्धेश्वर महादेव की सन्निधि में यह आश्रम स्थापित किया एवं परमहंसी गङ्गा कुण्ड प्रकट किया तथा यहाँ श्री गीताजयन्ती के महत्त्वपूर्ण पर्व में श्री श्रृंगेरीपीठाधीश्वर ब्रह्मलीन जगद् गुरु शङ्कराचार्य स्वामी अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज के करकमलों से भगवती राजराजेश्वरी श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी की अति मनोरम मूर्ति की विशाल दक्षिण शैली के शिखर वाले मंदिर में स्थापना हुई । यहीं पर भूमिगत अपूर्व दो शिवलिंग प्राप्त हुए जो झौंतेश्वर नाम से (ज्योतेश्वर) क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं।

वहाँ श्रीराजराजेश्वरी मन्दिर में जो नेपाल से योगिनियों के रेखाचित्र वाली पुस्तिका थी उसके अनुसार उड़ीसा मूर्तिकला के रूप में काले पत्थर में उत्कीर्ण योगिनियों की स्थापना इस मन्दिर में तथा पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में स्थित गंगा के पश्चिम तट में निर्मित बारा महादेव स्थान के पार्श्व में श्री राजराजेश्वरी सेवा मठ में भगवती राजराजेश्वरी के मंदिर में भी इन योगिनियों की स्थापना

भी शङ्कराचार्य जी ने करवाई।

इन योगिनियों के विषय में खोज के प्रसंग में एक पुस्तक दुर्गासप्तशती (सम्पूर्ण दुर्गासप्तशती) पुस्तक जिसमें पूरे सात सौ श्लोक हैं। यह खोज नेपाल में ही पर्यटक स्वामी श्री विद्यारण्य जी ने (मूर्खारण्य नाम से प्रसिद्ध) आद्य शङ्कराचार्य जी के द्वारा लिखित "यतिदण्डैश्वर्य विधानम् " पुस्तक की खोज की साथ ही यह पुस्तक भी उन्हें मिली तथा उनके शिष्यों ने भारत में (म.प्र.) प्रकाशित कराया ये दोनों प्रतियाँ हम लोगों को मिली उसमें दुर्गासप्तशती के परिशिष्ट में श्री महाकाली , महालक्ष्मी, महासरस्वती की प्रत्येक की चौसठ योगिनियों के श्लोक संगृहीत है उसमें श्री महालक्ष्मी के मध्यम चरित्र से सम्बद्ध योगिनियों में ये अक्षोभ्यादि योगिनियाँ परिगणित हैं। तथा श्री भास्कराय जी द्वारा योगिनी हृदय के सेतुबंध भाष्य में भी इस स्थल में वर्णन किया गया है।

तथा प्रसिद्ध पूज्य भास्कराय जी के द्वारा लिखित ललिता सहस्त्रनाम के सौभाग्य भास्कर नाम के भाष्य में महाचतुःषष्टिकोटि योगिनी-गण सेविता-२३७) नाम मन्त्र के भाष्य में अक्षोभ्यादि योगिनियों का उल्लेख किया है, कि भूपुर (श्रीचक्र) प्रथमावरण की तीन रेखाओं में से मध्यम रेखा में ब्राह्यादि अस्पष्ट मातृकाओं के साथ आठ आठ अष्टकों में स्थित हैं। यथा-

(ब्राह्यादीनामष्टानां मध्ये एकैकस्या अंशभूता एव । अंशभूता अक्षोभ्या शक्तयोऽष्टावष्टाविति चतुःषष्टि योगिन्यः । तासामपि प्रातिस्विकमंशभूताः कोटिसंख्यकागणास्तैर्महद्भिः सेविता।। इति।।

योगिनी हृदय-पूजा संकेत प्रकरण में भगवान् शिव ने कहा कि -

त्रैलोक्यमोहनचक्रनिवासिनीनां ब्राह्यादीनामंशभूता अक्षोभ्याद्याश्चतुः-षष्टियोगिन्यः तासां प्रत्येकमंशभूतानां कोटिसंख्याकानां महौजसां

महाप्रभावशालिनीनां योगिनीनां उक्त लक्षणानां मिलित्वा चतुःषष्टिकोट्यो यतश्चक्रमेतत् समाश्रित्य संस्थिताः।

चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् ।।

चक्रमेतत् समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते ।।३/१९३

त्वमेव तासांरूपेणक्रीडसे विश्वमोहिनी।। १/२-३/१९४

अमृतानन्दयोगी ने "दीपिका" टीका में व्याख्या की है -

मध्यमभूगृहान्तश्चतुःषष्टिकोटियोगिनीसमष्टिभूतानामक्षोभ्यादीनाम् अष्टाष्टकम् -

यह ग्रन्थ पूज्य व्रजवल्लभ द्विवेद द्वारा संपादित है । चर्याखण्ड खोजरूप दीक्षा में पूर्वाङ्गरूप इन योगिनियों की उपलब्धि हुई इन त्रिधावर्णित योगिनियों (षट्चक्रस्थित डाकिन्यादि, श्रीचक्र के नवों आवरणों में प्रत्येक में स्थित प्रकटादि परापरातिरहस्य योगिनी तथा श्रीचक्र के त्रिरेखभूपुर की मध्यम रेखा में स्थित अष्टाष्टक रूप में, ब्राह्म्यादि मात्रंश भूता अक्षोभ्यादि योगिनियाँ) के अनुग्रह से इसी वर्तमान "सौम्य" वैक्रम संवत्सर २०७३ एवं २०१६ वें ईशाब्द में मोक्षपुरी हरिद्वार में सम्पन्न -

६६वें चातुर्मास्य व्रतानुष्ठान में उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित पूज्य जगद्गुरुशङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के करकमलों में अलवर जिले के निवासी श्रीराम शास्त्री महोदय ने एक फोटो काँपी की "चिकितुषी" शीर्षक की "श्रीत्रिपुरा रहस्य" के दुर्लभ "चर्याखण्ड" की मूल श्लोक वाली प्रति बिना किसी परिचय तथा सूचना के अर्पित की ।

मूल काँपी के आवरण में त्रिपुरारहस्य चर्याखण्ड मकर संक्रान्ति संवत् २०६४ एवं १४ जनवरी २००८ संवत् लिखा है। तथा सम्पादक श्रीवागीश शुक्ल जी का नाम मुद्रित है। भीतर के दूसरे

पृष्ठ में सम्पादक सम्माननीय श्री शीतला प्रसाद जी उपाध्याय-उपाचार्य सांख्ययोग तंत्र आगमविभाग सं.सं. विश्वविद्यालय वाराणसी उ.प्र. मुद्रित है। ऊपरी पृष्ठ भाग में श्री उपाध्याय जी की हस्तलिपि में उपाध्याय जी के परम् श्रद्धेय गुरुकल्प श्री प्रो. नवजीवन रस्तोगी जी के कर कमलों में अर्पित चर्याखण्ड की प्रतिलिपि उसमें ३-१-२००९ लिखा है ।

मूलप्रति की फोटो कॉपी मिलने पर पूज्य जगद्गुरुशङ्कराचार्य जी ने मुझे विगत सुदूर वर्षों में अन्वेषण की आज्ञा रूप दीक्षा की भाव भूमि में पढ़ने का आदेश दिया । कॉपी में प्रस्तावना के विस्तृत विवरण में श्री उपाध्याय जी द्वारा विस्तृत विवरण पढ़ने पर कुछ अनिर्णीत सी स्मृतियॉ उभरीं । मैंने "श्री भास्कराय एक व्यक्तित्व और कृतित्त्व" नामक पुस्तक देखा है; जिसका सम्पादन पूज्य श्री बटुकनाथ जी खिस्ते ने किया है । उन्होंने श्री रघुनाथ प्रसाद (शास्त्री) गोडबोले महोदय का चित्र एवं विवरण दिया है। मेरी स्पष्ट अन्तश्चेतना में एक किरण सी अवश्य कौंधती थी । पर उसका कारण रण सुस्पष्ट नहीं होता था । यह बात जरूर थी, कि पूर्ण दीक्षा के बाद पूज्य गुरुवर्य पूज्य जगद्गुरुशङ्कराचार्य जी ने मुझे काठमांडू नेपाल में पहुचते ही चर्याखण्ड खोजने की सीधे शब्दों में "जाओ यहाँ चर्याखण्ड की खोज करो" की आज्ञा क्यों दी। उस आज्ञा का साक्षात्कार मुझे हरिद्वार के चातुर्मास्य में श्री गुरु की चरण सन्निधि में रहते हुए अकल्पित रूप से हुआ । इस उपलब्धि में निमित्त ये विद्वद्गण है । इन्हें सर्वतोभावेन प्रणाम अर्पित है । प्रति में उल्लिखित प्रस्तावना में श्री उपाध्याय जी का नाम श्री खिस्ते जी ने भी उल्लिखित किया है । श्री उपाध्याय जी ने प्रस्तावना में "अपने विद्या गुरु श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी जी का आशीर्वाद लिया तथा उनके निर्देशानुसार आवश्यक संशोधनादि

किया '' लिखा है । मेरे हृदय में जो भास्करराय जी के लिये अपूर्व भाव है , उसके आधार पर भौतिक दृष्टि से ही उनके गुरुवंशज श्री गोडवोले जी से यह प्रति प्राप्त हुई अर्थात् भास्करपरम्परा ही इसकी श्रेयोभागिनी है ।

प्रस्तावना के विस्तृत विवरणानुसार श्री सम्माननीय श्री वागीश शुक्ल जी प्रणम्य है उन्होंने सम्पूर्ण प्रति को भी इसी रूप में प्रकाशित करने का परामर्श दिया ।

भारतीय सनातन अपौरुषेय वेदमय वाङ्मय जिसके लिये वाक्य पदीयकार मंगलाचरण में विवरण देते हैं कि-

अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतोयतः।।

इस आधार पर अद्वैत तत्त्व चिन्तन में अपूर्णता का बाध कर पूर्णता की अपरोक्षानुभूति की शिक्षा गुरुवर्य दिया करते हैं वेदोक्ति भी है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।इति।।

एक और उक्ति है-

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः ।
स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति ।। इति।।

नित्याषोडशिकार्णव प्रोक्त द्वादशश्लोकी के तीसरे श्लोक में कहा है-

यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः ।
रविताक्ष्यैन्दुकन्दर्प शङ्करानलविष्णुभिः ।।३।।

भगवती मन्त्रमयी हैं मातृकामयी हैं माहेश्वर चतुर्दश मातृकामय सूत्र नादोद्भूत होकर शिव शक्तिमय हैं। जो पूर्ण हैं उनकी दीक्षा भी ''पूर्णदीक्षा'' श्री दत्तात्रेय गुरुवर्य के अनुसार है। अतः जितना भी

अंश मिला है वह माँ भगवती की कृपा से भगवती के चरणों में समर्पित जो श्री भास्कर्राय जी के वंशजों के पास से मिला है। अतः वह भी पूर्ण ही है।

प्राप्त अंशों को विचार श्रेणी में लाकर चिन्तन किया जाय तो चर्याखण्ड के १४वें में अध्याय में देवतोद्वासन एवं अर्घ्योद् वासन का निर्देश श्री दत्त गुरुवर्य ने किया है। पूजा का पूर्वाङ्ग तथा मध्य विधान तथा अन्त में आरम्भ की हुई पूजा या सपर्या उद्वासनान्त ही होती है, अर्थात् पूर्ण होती है। इसलिये चर्या "शब्द को लें । उसके अर्थ को लें तो क्रमशः वर्णन किये जाते हुए श्री त्रिपुरारहस्य के प्रथम खण्ड माहात्म्य खण्ड, द्वितीय खण्ड ज्ञानकाण्ड, एवं तृतीय खण्ड चर्याखण्ड" यह चर्याखण्ड अंतिम खण्ड होने से उपक्रमोपसंहार की दृष्टि से विचार करें तो चर्या में ही पूर्णता है। और वह १४ वें अध्याय में स्पष्ट निर्दिष्ट है। यथा-

अर्घ्योद्वासनकं कुर्याद् देवतामपिचोद्वसेत् ।।
समाप्य पूजामात्मानं ध्यायन् कामकलात्मकम् ।।१४/१०४।।

अनन्तर-

बहिर्व्यापारोपरतो भूयाद् राम! तवेप्सितम् ।।
एतत्ते कथितं राम! क्रमादर्घ्यादिसाधनम् ।।१४/१०५।।

इसी तत्त्व का सुस्पष्ट वर्णन भगवान् आद्य शङ्कराचार्य ने किया है - सौ०ल० के २९ वें श्लोक में यथा-

जपो जल्पः शिंल्पं सकलमपिमुद्रा विरचना-
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा-
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ।।२७।। अस्तु

इस प्रकार इस उपलब्धि के लिये आ प्रलयान्त में अपने सद्गुरुवर्य के पादपद्मों में मिलिन्दायमान हो पद्मकोष में निलीन

हूँ। वे सद्गुरु अनुग्रहात्मक पञ्चमकृत्य के ब्रह्म सदाशिव के तद्रूप भगवती के हृदय से ही प्रादुर्भूत होकर श्रीविद्यातत्त्व का "आबालगोपविदिता" रूपात्मक अनुग्रह वर्तमान में करते आ रहे हैं वे सद्गुरु हैं । वे पूज्य अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज हैं।

पूज्य महाराज जी ने ज्योतिष्पीठ शङ्कराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज से संन्यास दीक्षा ली। सन् १९७३ में जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर पूज्य महाराज जी का पूज्य ब्रह्मलीन करपात्री जी (हरिहरानन्द सरस्वती) पुरीपीठाधीश्वर ब्रह्मलीन श्री निरञ्जनदेवतीर्थ जी महाराज एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर अभिनव सच्चिदानन्दतीर्थ जी महाराज ने दिल्ली में ज्योतिष्पीठ पर भारत के समस्त आध्यात्मिक संस्थानों के प्रमुखों की उपस्थिति में अभिषेक किया । और शृंगेरी पीठ के शङ्कराचार्य स्वामी अभिनव विद्यातीर्थ ने पत्र एवं पट्टवस्त्रअपने हस्ताक्षर करके पीठ पण्डित को भेजा था ।

इसके अनन्तर सन् १९८२ में द्वारकापीठ में जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्री अभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ जी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर दक्षिणाम्नाय शृंगेरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्री अभिवनवविद्यातीर्थ जी महाराज ने द्वारका जाकर पूज्य महाराज जी के ज्योतिष्पीठाधीश्वर रहते हुए भी द्वारकापीठ गद्दी पर अभिषेक किया तब से पूज्य महाराजजी दो आम्नाय पीठों के जगद्गुरु शङ्कराचार्य के रूप में प्राप्त होते आ रहे हैं ।

सन् १९७३ में अभिषिक्त होने के बाद पूज्य महाराज जी ने सन् १९८० में ही सर्व प्रथम जोशीमठ में ही श्री तोटकाचार्य गुफा का लोगों को प्रत्यक्ष कराया तथा भगवती राजराजेश्वरी

श्रीमाता ललिताम्बा की मूर्ति एवं मन्दिर बनवाकर स्थापना करवाई। इसके बाद श्री परमहंसी गंगा आश्रम (श्रीवन) ग्राम ज्योतेश्वर (झौंतेश्वर) जिला-नरसिंहपुर (म०प्र०) मार्गशीर्ष शुक्ल ११शी (गीता जयन्ती पर्व) में तदनुसार दिसम्बर सन् १९८२ ई. में श्री शृंगेरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य अ.श्री. महासन्निधानम् स्वामी श्री अभिनवविद्यातीर्थ जी के करकमलों से दाक्षिणात्य प्रतिष्ठा पद्धति से प्राण प्रतिष्ठा करवाई। इसी परमहंसी आश्रम क्षेत्र मे "नेत्रालय" का उद्घाटन माननीय श्री राष्ट्रपति श्रीप्रणवमुखर्जी के कर कमलों से करवाया। तथा श्री ज्योतिरीश्वर ऋषिकुल सं० विद्यालय का उद्घाटन भी पूर्व मे माननीय श्रीराष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा जी के करकमलों से उद्घाटन करवाया । पूज्य शङ्कराचार्य जी ने पूर्व प्रधानमन्त्री श्री मनमोहन सिंह महोदय से "गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित करवाया। तथा नर्मदा तट में (उत्तर तट) स्थित सांकलघाट (शङ्करघाट) श्री गोविन्दनाथ वन में लाखों वर्ष की भौगालिक रचना युक्त गुफा में (नर्मदा के किनारे तट में) २५००वर्ष पूर्व कालटी (केरल) में अवतीर्ण श्रीमदाद्य शङ्कराचार्य जी की दीक्षा स्थली (गुरु गोविन्दनाथ जी) को प्रामाणिक शास्त्रीय आधारों पर राष्ट्र के सामने प्रस्तुत किया। जिसका दर्शन दक्षिणाम्नाय शृंगेरीपीठ के वर्तमान आचार्य श्री अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री भारतीतीर्थ जी महाराज ने गुफा के भीतर जाकर दर्शन किया, जो आज भी सभी के दर्शनार्थ है। इसके बाद विशुद्ध वनवासीक्षेत्र झारखण्ड के चाईवासा चक्रधरपुर के बीहड़ जंगल में मुण्डारी वनवासी (आदिवासी) क्षेत्र कालीकोकिला नदियों के संगम (कारो कोयलनदी) में आनन्दपुर समीच आश्रम मे "विश्वकल्याण आश्रम" की स्थापना की एवं भगवती ललिताम्बा की मूर्ति प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई। इस क्षेत्र में अद्यावधि ईसाईयत के धर्मान्तरण का सामना करते हुए धर्मान्तरित

वनवासियों को (मुण्डारी आदि) पुनः "स्वधर्मानयन" अभियान द्वारा बिना किसी प्रलोभन को दिये, लाखों वनवासियों को गिर्जाघर (ईसाईयों के) उत्तर में "रामायणघर" बनवाकर उन बनवासियों को "मुण्डारी भाषा में रामायण का अनुवाद करवाकर वितरित करवाया। उन वनवासियों को होली के पवित्र उत्सव में प्रतिवर्ष "नारायणसेवा" नाम से भोजन एवं वर्ष पर्यन्त अन्न वितरण की भोजन व्यवस्था करवाई। जो लगभग ३५-४० वर्षों से निरन्तर चल रही है। तथा वहाँ एक विशाल चिकित्सालय "श्रीस्वरूपानन्द चिकित्सालय" का निर्माण कराया । जिसका उद्घाटन भारतीय लोकतंत्र के प्रमुख स्तंभ प्रधानमन्त्री श्री नरसिंहाराव महोदय ने किया। तथा निःशुल्क क्षेत्र-सेवा शिविर का भी आयोजन करवाया जो आज भी चल रहा है । होली के "होलाष्टक" से लगभग दस दिनों तक प्रभातफेरी रामायण नवाह पाठ ३५-४० वर्षों से निरन्तर चल रहा है। यह स्थान "काशीपुर-पुरुलिया-बंगाल स्टेट राज्यान्तर्गत था उसी का अंग आनन्दपुर समीच ग्राम नदीतट में है वहाँ के पर्वत में भूमिगर्भ प्राप्त वायुवीरा हनुमान जी की मूर्ति का भव्य मन्दिर बनवाया । वही चिकित्सालय के निकट श्रीविश्वरूपेश्वर महादेव का कसौटी पत्थर निर्मित विशाल शिवलिंग जो विगत राजतन्त्रकाल का है, उसका जीर्णोद्धार भी कराया है इसी क्रम में पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में "गंगार पश्चिम कूल वाराणसी समतूल" इस बंगाली मान्यतानुसार गंगा के किनारे (गंगा के पश्चिमतट) में स्थित कोन्नगर स्थान में "बारामहादेव" मन्दिर के निकट भगवती राजराजेश्वरी का मन्दिर बनवाकर भगवती की मूर्ति स्थापित एवं प्राणप्रतिष्ठा करवाया कोन्ननगर से आगे श्रीरामपुर नामक स्थान में कामेश्वरकामेश्वरी का कामेश्वराङ्कनिलया भगवती की युगलमूर्ति प्रतिष्ठित करवाई। राजस्थान के जोधपुर

नगर में भी भगवती ललिताम्बा की युगलमूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई। इसके बाद मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल नगर के मध्य झरनेश्वर आश्रम में भगवती की साढ़े चार फुट ऊंची सात क्विंटल वजन की स्फटिक निर्मित "रमावाणी निषेविता" भगवती की मूर्ति प्रतिष्ठा सम्पन्न की । जबलपुर (म.प्र.) में भगवती पीताम्बरा की स्थापना तथा छत्तीसगढ़ प्रान्त के रायपुर तथा बिलासपुर नगर में भगवती त्रिपुरा की मूर्ति क्रमशः "प्रेमाम्बा" और "ब्रह्मविद्याम्बा" भगवती त्रिपुराम्बा की प्राण प्रतिष्ठा की तरह नर्मदा उद्गम दिव्य क्षेत्र अमरकण्टक में "दसमहाविद्याओं की मूर्ति प्रतिष्ठा की । सिवनी (मप्र.) में गणेशगंज नामक स्थान में "बालात्रिपुरसुन्दरी" की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। एवं मातृधाम में बंग शैली के मन्दिर में भगवती त्रिपुराम्बा की प्रतिष्ठा की। विशेष उल्लेखनीय विषय यह है कि केदारनाथ धाम में मन्दाकिनी के तट में प्राचीन जीर्ण शीर्ण आद्यशङ्कराचार्य जी की समाधि का स्थान का जीर्णोद्धार करवाकर तीन क्विंटल बजनी स्फटिक शिवलिङ्ग और आद्यशङ्कराचार्य मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न करायी । मन्दिरों का निर्माण करवाया । द्वारका नगरी में प्राचीन सिद्धेश्वर मन्दिर में शिवलिङ्ग समुद्री हवा के प्रभाव से गल गया था। उस स्थान में नर्मदा से प्राप्त विशाल शिवलिङ्ग मूर्ति की स्थापना करवाई द्वारकापीठ में शङ्कराचार्य पीठ का परिवर्धन विशाल रूप में करवाया । आद्यशङ्कराचार्य जी ने मठाम्नाय महानुशासन में आचार्य का कर्तव्य निश्चित किया है। वह इस वर्तमान समय में धर्माचार्य का राष्ट्र, देश समाज को भारतीय अध्यात्ममय उपासना, सदाचार शिष्य वर्ग को अनुशासित करने का कार्य करना, गुरु के लिये जो लक्षण शास्त्रों में कहे गये हैं "वे यही हैं । सद्गुरु "श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ" हो यह उन्होंने पूरा किया और पूरा वर्तमान में भी कर रहे हैं । उपासना के क्षेत्र में

उन्होंने महाविद्याओं की उपासना का सुगम विधान और उसके लिये उपासना के शास्त्रोक्त देवस्थान, तथा आश्रमों की स्थापना की आज श्री विद्योपासना जैसी अत्यन्त मार्मिक उपासना को उन्होंने अभिवृद्ध किया। ऐसे सद् गुरुवर्य के लिये सर्वस्व समर्पण भी पर्याप्त नहीं है। गुरुवर्य ने विदेशी शासन में अंग्रेज अधिकारी से वाराणसी सेण्ट्रल जेल में यही कहा था -"हम अपने संस्कारों से भारत की आध्यत्मिकता की सेवा के लिये घरद्वार, प्राणोंा की चिन्ता त्याग कर भारत माता के लिये समर्पित हुए हैं ।" यह आज भी वे भारतीय मूल्यों के लिये मानापमान की चिन्ता किये बिना सद्गुरु का कर्तव्य शासन एवं शासितों के लिये वर्गभेद से अप्रभावित होते हुए पूरा करते आ रहे हैं उन्हें असीमित अनन्त जन्मों तक प्रणामार्पण करता हूँ, श्रीगुरुमूर्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः (६०३ ल.स.ना.)

मैं उन शास्त्र समर्पित विप्रों विद्वानों को भगवती ललिताम्बा के स्वरूप उन नामों का स्मरण करते हुए ४ विप्रप्रिया श्री पादुकां पूजयामि ८८७ ल.स.ना.), विप्ररूपा श्रीपादुकां पूजयामि नमः (ल.स.ना. ८८८) प्रणाम करता हूँ। इसके साथ ही वयोवृद्ध ब्रजवल्लभ जी को प्रणाम समर्पण । उन पूज्य भास्कारराय का शिष्यपरम्परा के श्रीरघुनाथ प्रसाद गोडवोले जी दीक्षानाम श्री अम्बानन्दनाथ का स्मरण करते हुए मानसिक वंदन करता हूँ। श्री वागीश जी शुक्ल जिनकी प्रेरणा से यह दुर्लभ ग्रन्थ दृष्टिगोचर हुआ। श्री गोपाल प्रसाद जी उपाध्याय जी जिन्होंने सम्पादन एवं आमुख लिखकर सन् २००८ में ही उपलब्ध करा दिया । मैं उन अलवर निवासी प्राचीन ग्रन्थों के समर्पित अन्वेषक और सर्वसुलभ बनाने वाले श्रीरामशास्त्री इन्होंने हरिद्वार में चातुर्मास्यव्रत में संस्थित श्री जगद्गुरु जी के करकमलों में इस चर्याखण्ड की सीमित प्रति

जैसी उपलब्ध थी वैसी ही फोटो काँपी अर्पित की एतदर्थ सभी को प्रणाम करता हूँ । मुझे तो पूज्य गुरुवर्य ने ब्रह्मविद्यानन्द ब्रह्मचारी द्वारा बुलवाकर कहा देखो यह चर्याखण्ड की प्रति प्राप्त हो गई है। वही सुदूर भूतकाल की नेपाल यात्रा के सम्बन्ध को संकेतित करते हुए मुझे ही पढ़ने का आदेश दिया। मैंने थोड़ा पढ़ा दूसरे दिन पुनः इन्हीं ब्रह्मचारी द्वारा बुलवाकर पूछा क्या पढ़ा तुमने। संक्षेप मैं ने यथा स्मृति निवेदन किया उन्होंने कहा यह मूल प्रति है। इसमें पूजोद्वास एवं देवतोद्वास तथा "कामकला" तत्त्व का विवेचन है अतः जितना भी अंश उपलब्ध है उससे चर्या का अभिप्राय पर्याप्त अंश में पूरा हो जाता है सारग्राहित्वेन, "अतः तुम ही इसका अनुवाद करो। यह भगवती की ही प्रेरणा है भगवती के गुरुमूर्ति होने से अतः मैंने थोड़ा बहुत जितना हृदय में उद्भूत हुआ, उसे शब्द में व्यक्त करने का प्रयास किया है। जो श्री सद्गुरुवर्य को समर्पित करने के अनन्तर विद्वज्जनों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। कृपया स्वीकार कर अनुग्रहीत करें, प्रार्थना है । चि० पद्मनाभधर द्विवेदी की एक स्थल में जो विचारों एवं अनुवाद क्रम में उत्पन्न अवरोध को दूर करने की सूझ अविस्मरणीय है, बात यह है कि जब मैं त्रयोदशवें अध्याय के दसवें श्लोक का अर्थ लिख रहा था, तब पूरा श्लोक यह है -

वेदाङ्गुले त्रिकोणं स्यात् पूर्वस्मिन् तस्य बाह्यतः ।
चतुष्कोणं भवेद्रामाङ्गुलक्षेत्रं तु भार्गव ।।१०।।

इस श्लोक के उत्तरार्ध में जो पंक्ति है उसमें जो शब्द हैं उनमें मैं समझ नहीं पा रहा था कि त्रिकोण के बाह्य भाग मे चतुष्कोण और वह भी रामाङ्गुलक्षेत्र कौन सा है। इसे सोचने में लगभग दो दिन बीत गए। समझ में नहीं आ रहा था कि चतुष्कोण तो भूपुर में है। वहाँ त्रिकोण नहीं है। यहाँ त्रिकोण के बाहरी भाग में

चतुष्कोण कहाँ है। पद्भनाभधर ने पूछा "बाबूजी! क्या बात है, मैंने बताया, उसने तत्काल कहा जिसमें गुरुत्रय पूजन होता है। यह चतुष्कोण है। श्रीयन्त्र में स्पष्ट दिखाया। इसे बताने में जरा सा भी विलम्ब नहीं हुआ। वह चतुष्कोण इस रूप (0) में प्रकट होता है। मन में सन्तोष उपजा कि ये नवयुवकगण भी पूज्य महाराज जी के अमोघ संकल्प से श्रीविद्या में परिचित हो रहे हैं। भगवती आबालगोपविदिता ९९४ ही हैं। यह अभिव्यक्त हो रहा है। पुनः मैं सभी का हृदय से अभिनन्दन करते हुए यह परमदुर्लभ सौभाग्य अन्वेषणरूप दीक्षा की सफलता भगवती के अनुग्रह स्वरूप भगवान् सदाशिव की अनुग्रहरूप कृत्य शक्ति की किरण श्री गुरु के अनुग्रह से प्राप्त हुई। वह भगवती चरणों के स्मरण करते हुए श्री गुरुचरण पङ्कज में समर्पित हैं-

सम्पूजकानां परिपालकानाम् -
जितेन्द्रियाणां च तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य राज्ञाम् ।।
करोतु शान्तिं भगवन् कुलेशः ।।४।।
नन्दन्तु साधक कुलान्यणिमादि सिद्धाः
शापापतन्तु समयद्विषि योगिनीनाम् ।
सा शाम्भवी स्फुरतु कापि ममाप्यवस्था,
यस्यां गुरोश्चरण-पंकजमेव लभ्यम् ।।

श्रीमद्गुरुपादपद्मपरागपूरपीयूषपानपटुर्मिलिन्दः
औपमन्यवो द्विवेदो रविशङ्करः

चर्याखण्ड के उपलब्ध अध्यायों की विषय सूची

संदेश 3

समर्पण 4

प्रकाशकीय 5-9

संदेश 10-11

भूमिका (दीक्षा) 12-26

विषय सूची 27-30

चर्याखण्ड मंगलाचरण 1-9

प्रथमोऽध्यायः- 51 श्लोक दीक्षादिविधान 30 वें श्लोक तक

अ ..... वैदिकतारतम्य से षड्ऋतुओं की सलोकता । श्लो.-43 20

आ..... श्रीपुर में षड्विधाप्राकारान्ता भूमिका । श्लो.-44 21

इ ..... तान्त्रिक उपासकों के लिए मरकत प्राकारान्त मिश्र (वैदिक एवं

..... तान्त्रिक) उपासकों के लिए महापद्मवनान्ता । श्लो.-45 21

ई ..... बन्धन से मुक्ति । श्लो.-46 21

उ ..... ज्ञान होने पर मुक्त होता है इसमें क्रम नहीं है। श्लो.47 21

ऊ..... सदाश्रय से शुभकृत् का पतन नहीं पापकृत् को दण्ड । श्लो.-48 ... 22

द्वितीयोऽध्यायः- 48 श्लोक दण्ड विधानादि

ऋ ..... दण्डनाथा द्वारा दण्डविधान । श्लो. 7-15 24

ॠ ..... मन्त्रिणी द्वारा यथोपासनफल । श्लो.16-31 29

ऌ..... श्रीपुर का अतिशय माहात्म्य । श्लो. 32-39 37

ॡ..... श्रीयन्त्र साधक का सम्मान । श्लो. 41-44 43

ए ..... 8 महापाप श्रीविद्योपासना में परम दारूण है। श्लो.46-52 47

ऐ ..... देवताओं से उत्तरोत्तर श्रेष्ठत्व । श्लो. 57-60 49

ओ..... पञ्चप्रेतता । श्लो. 62-77 52

औ..... श्रीपूजन की अद्वितीयता । श्लो.78-84 61

तृतीयोऽध्यायः 61 श्लोक पूर्णादीक्षादिविधान

अं ..... उपनयन संस्कार जैसे श्रीविद्या दीक्षा भी प्रमुख है । श्लो.-6 67
अः ..... सद्गुरु से ही दीक्षा उत्तम एव सफल है; अयोग्य से नहीं ।
..... श्लो.-7 69
क..... यदि अयोग्य गुरु से हुई तो, असफलता । श्लो.-8 70
ख ..... अदीक्षित यदि देगा तो दोनों को घोर नरक । श्लो.-10 71
ग ..... मूलविद्या जप प्रमाद । असावधानी; उपेक्षादि
..... होने से अन्धतामिस्र नरक की प्राप्ति । श्लो.-40 89
घ ..... षोडशी महामन्त्र ही महापादुका है और महापादुका ही
..... चारों वेदों का तात्विक महावाक्य है । श्लो.-55-56 96

चतुर्थोऽध्याय 32 श्लोकात्मक

ङ ..... परशुराम जी का प्रश्न - तन्त्रों की एवं उनमें कहे गये विधानों
..... की अनेकता से उन सभी का ऐक्य कैसे? श्लो.-1-8 99
च ..... सद्गुरूनिर्दिष्ट तन्त्र एवं विधान अत्याज्य है इन सभी
..... का विस्तृत समाधान । श्लो.-24 104

5, 6, 7, 8, 9, 10 अध्याय प्राप्त नहीं है ।

एकादशोऽध्यायः 50 श्लोकात्मक

छ ..... दीक्षानन्तर दिनचर्या में प्रातःकृत्य । श्लो.1-13 108
ज ..... प्रातःसन्ध्योपासन में आचमन विधि (श्रोत्राचमन) ।
..... श्लो. 14-20 111
झ ..... ऋष्यादिन्यास सङ्कल्पपूर्वक विस्तृत विवरण ।
..... श्लो. 21-40 113
ञ ..... भगवती त्रिपुरा का ध्यान एवं पञ्चपुष्पबाण ।
..... श्लो. 41-44 119
ट ..... सन्ध्योपासन अनिवार्य सूर्य एवं मूलविद्या अर्घ्योपस्थान की
..... अनिवार्यता । श्लो. 45-50 120

द्वादशोऽध्यायः 33 श्लोकात्मक

ठ ..... जपविधान वर्णन में - "रश्मिमाला" से शुभारम्भ ।
..... श्लो. 1-2 123

ड ..... तीनों कालों (समयों) में यथाशक्ति जप संख्यापूर्वक ।
..... श्लो. 3-11 124
ढ ..... जपमाला के भेद । श्लो. 12-25 125
ण ..... जप के प्रकारों में मानस जप ध्यान सहित सर्वोत्तम ।
..... श्लो. 26-28 130
त ..... उपासना का तत्त्व तथा निष्कामता की महत्ता के साथ
..... जपविधि अतिगुह्य है । श्लो. 29-33 131

त्रयोदशोऽध्यायः

थ ..... पूजाविधि में दो भेदों का कथन । श्लो. 1-2 132
द ..... पूजा के उत्तमादि भेद । श्लो. 3 132
ध ..... पूजा का आधारबिन्दु (मूर्ति आदि) का वर्णन । श्लो. 4-6 133
न ..... श्रीचक्र की सर्वोत्तमता का वर्णन । श्लो. 7-9 133
प ..... श्रीचक्र का परिमाण (96 अं.मान) का वर्णन । श्लो. 10-14 135
फ ..... भगवती और परिवार देवता; आवरणेशी शक्तियाँ । नित्याशक्तियों
..... का स्थान एवं महानित्या का स्थान । श्लो. 15-21 136
ब ..... गुरूओं के स्थान का निर्देश । श्लो. 22-27 139
भ ..... रेखात्रयभूपुर प्रथमाववरण का वर्णन । श्लो. 28-34.5 141
म ..... द्वितीयावरणषोडशदल वर्णन । श्लो. 35.5 147
य ..... तृतीयावरण अष्टदल (मूलाधार) । श्लो. 1-2 147
र ..... दशारद्वय (बहिर्दशार-मणिपूर अनाहत चक्र) । श्लो. 37.5 148
ल ..... अष्टार (विशुद्धि चक्र) । श्लो. 38.5 149
व ..... बिन्दु (आज्ञाचक्र) में भगवती का पूजन, पूजन के आधार
..... शालिग्रामादि पीठों में किसी एक निश्चित मूर्ति पर पूजन
..... श्लो. 39-45 150

चर्याखण्डे - चतुर्दशोऽध्यायः अर्घ्यसाधनविधिः

105 श्लोकात्मकः

श ..... अर्घ्यसाधनविधि के पूर्व पूजागृह में प्रवेश तथा पूर्वाङ्गकृत्य ।
..... श्लो. 1-3 156
ष ..... सामान्यार्घ्य विशेषार्घ्यपात्रों के भेद एवं द्रव्यनिक्षेप ।
..... श्लो. 4-9 157

स ..... शापमोचन की अनिवार्यता सुवासिनी पूजन एवं
..... अभिमन्त्रण । श्लो. 10-13 159
ह ..... चिदग्नि कुण्ड में होम अन्तर्याग; लघुप्राणप्रतिष्ठा चल एवं
..... स्थिर प्रतिष्ठा का नियम । श्लो. 14-20 160
ळ..... त्रिमूर्ति (लिङ्ग; यन्त्र; एवं मूर्ति) पूजक की महत्ता ।
..... श्लो. 27-40 167
क्ष ..... अंजली द्वारा पुष्पाञ्जलि का महत्त्व; प्रत्येक मन्त्र में चतुस्तार
..... योग तथा अर्थज्ञानपूर्वक मन्त्रादि प्रयोग का महत्त्व भगवती
..... की विभिन्नोपचारों से पूजा एवं होमादि सुवासिनी कुमारी
..... बटुक पूजन अन्त में पूजा उद्वासन अर्घ्योद्वासनान्तकर्मो
..... का विस्तृत वर्णन । श्लो. 41-105 170
15, 16 एवं 17 अध्याय अप्राप्त है ।

चर्याखण्डेऽष्टादशोऽध्यायः 45 श्लोक कामकलास्वरूपः

कामकलास्वरूपविषय प्रश्न श्रीभार्गव द्वारा । श्लो. 1-3 188
कामकला प्राधान्यम् माहात्म्यञ्च । श्लो. 4-8 188
चिति का भाववर्गक्रमानुगा वर्णन । श्लो. 9 190
अक्रमा का स्वरूप विवेचन शिवादिरूपिणी । श्लो. 10 191
परा का अपरिच्छिन्नत्व परिच्छिन्नत्व अपरा । श्लो. 11 191
परा का विमर्शरूप । श्लो. 12-14 192
चैतन्यादि शब्दों से व्यवहृतशक्ति । श्लो. 15 193
चैतन्यादि शब्दों का विवेचन । श्लो. 16-26.5 193
अपराकामकला वर्णन विस्तरशः । श्लो. 27-44 196
अपरा के ही ध्यान से बोधोदय होकर बन्धनमुक्ति । श्लो. 45 204

परिशिष्ट

विरुद-षोडशी 207
खड्गमाला में अन्तिम में उल्लिखित "महाराज्ञी" इत्यादि तान्त्रिक
मार्ग के गूढ़ नाम हैं; उनका लोकव्यवहार में कौन सा चलता है;
उसका संक्षिप्त परिचय 208

श्रीसात्वतसंहितायाम्

।।श्रीदत्तात्रेयध्यानम् ।।

भगवतेऽवधूताय सद्गुरवे नमः-
संस्मरेदथदत्ताख्यं ज्ञानमूर्तिमलेपकम् ॥
मनुष्यमुनिदेवानांसमाधिनिरतात्मनाम् ॥1॥ (111)
ईषल्लब्धरसानां च ब्रह्ममार्गानुसारिणाम् ॥
स्वप्रभानिकरेणैव भासयन्तं च तत्पथम् ॥2॥ (112)
मनसासह वायूनामाकृतिप्रतिषेधकृत् ॥
श्रुतीनां मानसानां चाप्याचाराणांतथैव च ॥3॥ 113)
वर्णानामाश्रमाणांच परिरक्षक एव हि ॥
मानसैकार्णवान्तस्थे निष्कम्पे बुद्धिपादपे ॥4॥ (114)
अभिमानलताढ्ये चाप्युपरिस्थमनुस्मरेत् ॥
प्रावृड्गिरिरिवश्यामं तेजसाज्वलनोपमम् ॥5॥ (115)
ध्वंसकृद्विघ्नजालस्य निद्रालस्यचयस्य यः ॥
उत्कृष्टद्विजरूपेण विकसत्पद्मरूपिणा ॥6॥ (116)
स एव द्विभुजो ध्येयो दण्डदर्भाक्षसूत्रधृक् ॥

।। श्रीगुरुवंदनम् ।।

4-आराध्यदेवंभक्तानां कलिदोष विनाशकम् ॥
वन्देश्री गिरिजानन्दं शारदाश्रीमठाधिपम् ॥1॥
अखण्डंयस्य ज्ञानं च भक्तिर्यस्याऽनपायिनी ॥
शारदाज्योतिरीशस्य दर्शनंशुभमस्तु नः ॥2॥
तेजोमयीं महाविद्यां शेखराञ्चितमस्तकाम् ॥
रक्तांचतुर्भुजां वन्दे श्रीविद्यां गुरुपादुकाम् ॥-
श्रीमद्गुरु-श्री-पादुकां पूजयामि नमः

।। श्रीमत्सद्गुरवे नमः ।।

।। श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।।

4-रमावाणी निषेवितायै श्रीमल्ललिताम्बायै नमः

श्रीपादुकां पूजयामि नमः

ॐ नमः -

ॐ नमः कारणानन्दहृद्बीजाकाशगात्रिणे ॥
यल्लीलालेशललितालोकालोकाण्डरेणवः ॥ 1 ॥
यदक्षरं परं ब्रह्म जगन्मालामणिप्रभम् ॥
सर्वं सर्वात्मकं सर्वसारं सर्वपदाश्रयम् ॥ 2 ॥
यदेवाशेषसंसारदलबीजशिवात्मकम् ॥
शिवरूपं शक्तिरूपं ब्रह्मरूप स्वरूपकम् ॥ 3 ॥
त्रिपुरां परमेशानीं महाप्रलयसाक्षिणीम् ॥
दग्धकामोज्जीवनाय सुधाधारां नमाम्यहम् ॥ 4 ॥

माहात्म्यखण्ड मंगलाचरण त्रिपुरा रहस्य

ॐ नमः कारणानन्दरूपिणी परचिन्मयी ॥
विराजते जगच्चित्र चित्रदर्पणरूपिणी ॥ 1 ॥

ज्ञानखण्ड-मंगलाचरण त्रिपुरा रहस्य

ॐ नमः कारणानन्दरूपा जयति सा परा ॥
बिन्दुचक्रोल्लसत्पञ्चब्रह्मासनविराजिता ॥ 1 ॥

चर्याखण्ड-मंगलाचरण त्रिपुरा रहस्य

चर्याखण्ड-मंगलाचरण (तीनों खण्डों का)

श्रीमद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः

।। श्रीपादुकां पूजयामि नमः।।

ॐ नमः कारणानन्द हृद्बीजाकाशगात्रिणे

यल्लीलालेशलसितालोकालोकाण्डरेणवः ॥1॥

मैं उन प्रणवरूप भूमा परब्रह्म को नमस्कार करता हूँ । जो कारणानन्दरूप से समस्त प्राणियों के हृदय में बीज रूप से स्थित हैं, (व्यष्टिगत) तथा समष्टिगत असीमरूप व्यापक विराट् शरीर से व्याप्त हैं, एवं जिनकी लेशमात्र लीला व्यक्त तथा अव्यक्त रूप से पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड के अणु अणु में परिव्याप्त है ॥ १॥

यदक्षरं परं ब्रह्म जगन्मालामणिप्रभम् ।

सर्वं सर्वात्मकं सर्वसारं सर्वपदाश्रयम् ॥2॥

जो परब्रह्म अक्षर है अनन्त जगतों की माला के समुज्ज्वलित सुमेरुमणि हैं, सर्वातिशायी हैं, समस्त भूत सृष्टि की चेतनारूप आत्मा हैं, सभी के सार रूप हैं । समस्त आधारों के एकमात्र आश्रय हैं, उन्हें मेरा प्रणाम ॥२॥

यदेवाशेषसंसारदलबीजशिवात्मकम् ।

शिवरूपं शक्तिरूपं ब्रह्मरूपस्वरूपकम् ॥3॥

जो परब्रह्म ही एकमात्र सम्पूर्ण संसार रूपी दल (वृक्ष) के बीज (परमकारणरूप) तथा शिवात्मक हैं । वे ही शिवरूप (प्रकाश), वे ही शक्तिरूप (विमर्शरूप) तथा सभी के समष्टिरूप ब्रह्मरूप हैं, उन्हें मेरा प्रणाम निवेदित है ॥३॥

त्रिपुरां परमेशानीं महाप्रलयसाक्षिणीं ।

दग्धकामोज्जीवनाय सुधासारांनमाम्यहम् ॥4॥

मैं उन माँ जगन्माता के चरणों में नमन करता हूँ । वे माता त्रिपुरों की स्वामिनी है, परम ईशानी अर्थात् ईशान की शक्ति हैं और महाप्रलय की एकमात्र साक्षिणी हैं (महासंहारेऽस्मिन् विहरति सतित्वत्पतिरसौ सौ.ल. २६) जिनकी अमृत सारपूर्ण करुणादृष्टि से शिव की क्रोधाग्नि से दग्ध काम भस्मरूप हो गया, वह पुनः उज्जीवित हो गया था ॥४॥

(इन चार श्लोकों का मंगलाचरण त्रि.रहस्य माहात्म्यखंड का है)

ॐ नमः कारणानन्दरूपिणी परचिन्मयी,

विराजते जगच्चित्रदर्पणरूपिणी ॥ 1॥

उन परब्रह्मरूपिणी परचिन्मयी तथा कारणानन्दरूपिणी को प्रणाम । चित्रविचित्र यह जगत् जो उनका प्रतिबिम्ब है वे दर्पणरूपिणी हैं ॥१॥

(यह एक श्लोक में वर्णित मंगलाचरण त्रि.र. ज्ञानखण्ड का है)

त्रि.र. तृतीय खण्डः चर्याखण्ड में मङ्गलाचरण

ॐ नमः कारणानन्दरूपा जयति सा परा ।

बिन्दुचक्रोल्लसत्पञ्चब्रह्मासनविराजिता ॥1॥

वह अपरोक्ष परब्रह्म प्रणवरूप है (वाचक प्रणव का जो वाच्य है) उन्हीं की जो शक्तिरूपा किं वा परब्रह्मस्वरूपिणी हैं कारणानन्दरूपा हैं तथा परा शिवा है अर्थात् सर्वोत्कृष्टा हैं, शिवस्वरूपिणी हैं, जो शिवशक्तिमय बिन्दुचक्र में उल्लसित कारणपञ्चब्रह्मासन में (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईशान, तथा पंचमुख सदाशिवासन में विराजमान हैं॥ (बैन्दवासना १०५, और पञ्चब्रह्मासनस्थिता स.स. ५८, एवं परा.....३६६) दृष्टव्य हैं - बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशार-युग्मंमन्वस्त्रनागदल संयुतषोडशारम्। वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च, श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः॥) परा भगवती का नाम है । चार

नाद - परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी कहे गए हैं पराशक्ति ही प्रलयानन्तर पुनः सृष्टि के लिये वह परब्रह्मतत्त्व प्रधान कारण होता है, उस कारणरूप परब्रह्म की आनन्दरूपा वही पराशक्ति हैं, जिसके सिंहासन के; जो बिन्दुरूप है, यह बिन्दु श्रीचक्र का सर्वानन्दमय नवम आवरण है उसमें वह शक्ति (सृष्टि, स्थिति, संहति, निग्रह, तथा अनुग्रह रूप पञ्चकृत्यों के अधिपति क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईशान और सदाशिवात्मक पञ्चब्रह्मासन पर विराजिता हैं ।। (यह आचार्यों ने चिन्तन किया है)।।

प्रस्तुत ग्रन्थ भगवती आत्मरूपा महात्रिपुरसुन्दरी के माहात्म्य, उनके तात्त्विक ज्ञान एवं उनकी आराधना के लिये तृतीय खण्ड चर्याखण्ड के नाम से भारतभूमि में गुरुशिष्य परम्परा से अभी तक चला आया है ।

सौभाग्य से प्रथम माहात्म्यखण्ड तथा द्वितीय ज्ञानखण्ड उपलब्ध हैं अंतिम तृतीयखण्ड चर्याखण्डकाल के गर्त में पड़ा था पर वंश परम्परा से जो ज्ञानभण्डार ग्रन्थों में ग्रथित हो जाते है वे जिज्ञासु अन्वेषकों द्वारा साधना के परम गुप्त साधकों के ग्रन्थ संग्रह में किसी न किसी रूप में मिल ही जाते हैं एक बात वैदिकोक्ति से चरितार्थ होती है, चाहे वह कैसा भी काल परिणाम क्यों न हो, एक रोचक स्मरण यह होता है कि ज्ञान स्वरूप परब्रह्म की वाच्यता तथा लक्ष्यार्थरूपता है। वह नित्य हो, चाहे वह भौतिक दृष्टि से पूर्ण या अपूर्ण अथवा आंशिक ही क्यों न हो पुरातन काल में कितना भी साहित्य नष्ट किया गया पर जितना बचा वह पूर्णता का अनुभव करा ही देता है, उदाहरणार्थ भगवान शिव का माता पार्वती के प्रति यह कथन -

''राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्त्रनाम तत्तुल्यं रामनामवरानने '' -

शुक्ल यजुर्वेद भी पुरुषसूक्त में कह रहा है ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः, सहस्रपात् स भूमि ँ सर्वतः स्पृष्ट् वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् '' इसी आधार पर जब वाच्य अर्थात् लक्ष्यार्थ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'' तो वाचक भी पूर्ण ही होगा । वाक्यपदीय'' कार भी कह रहे हैं ''अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम् । विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः ऐसी स्थिति में इस इक्कीसवीं सहस्राब्दी की प्रथम शताब्दी में हम भी ज्ञान से सम्पन्न रहेंगे। बस हमें उस ज्ञान परम्परा को बनाए रखना है । पीढ़ी दर पीढ़ी वह संस्कार और वह प्रवृत्ति उद्देश्य और विधेयभूता ही रही आए ।।।

इस ग्रन्थ के तीनों खण्डों में संवाद के रूप में प्रतिपादन हुआ है, पौराणिक परम्परा में यह ग्रन्थ त्रेतायुग से आरब्ध है, हमने जो यह अपने श्री गुरुवर्य के मुखारविन्द से सुना है वह इस प्रकार है- त्रेतायुग में अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के २८ वें त्रेता में वर्तमान में २८वाँ कलियुग जिसके पाँच हजार वर्ष बीत चुके हैं यहाँ यह स्मरणीय है, ब्रह्मा के एक कल्प (दिन) में चौदह मनु भुक्त होते हैं जिनमें वर्तमान में सप्तम वैवस्वतमनु का भोग चल रहा है -: (हेमाद्रिचिन्तन में)। जब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामभद्र मिथिला धनुर्यज्ञ के उपरान्त वैवाहिक विधि सम्पन्न होने के सुअवसर में शिवधनुः के भङ्ग होने से ध्वनि से आकर्षित होकर जामदग्नेय श्री परशुराम जी दुर्दान्त क्षत्रियों का सवंश नाश करते हुए घूम रहे थे उसी समय पर वे जनकपुरी में आए वहाँ उन्होंने श्रीरामभद्र से संवाद किया पुनः परीक्षार्थ वैष्णव धनुष को सामने किया वह वैष्णव धनुष बिना प्रयत्न के भगवान् के करकमलों में चला गया । श्री परशुराम ने शरसंधान का निर्देश दिया था वह भी हो गया । श्रीरामभद्र ने कहा ''रामो द्विश्शरं नाभिसंधत्ते'' अब

बताऐं यह शर किस लक्ष्य में जावे। श्रीपरशुराम ने कहा जो मैंने हिंसाजन्य यज्ञादि किए उनसे उत्पन्न जो लोक हैं; उन्हें नष्ट कर दें । ऐसा होने पर तथा उनका जो आवेशावतार था वह अपने मुख्यांश पूर्णावतार श्रीरामभद्र में विलीन हो गया । निस्तेज श्रीपरशुराम अब इधर-उधर किंकर्तव्य विमूढ़ होकर घूम रहे थे । उस समय देवर्षि नारद मिले उन्होंने जब पूछा तब परशुराम जी ने सभी घटना बताकर उपाय पूछा श्री नारद जी ने कहा कि तुम "बृहस्पति के भाई संवर्त से मिलो" परशुराम जी ने पूछा मैं उन्हें पहिचानूंगा कैसे ? तब श्री नारद जी ने कहा वे वाराणसी में निवास कर रहे हैं । वे जब विश्वनाथ दर्शन के लिये निकलते हैं तब यदि मार्ग में शव यात्रा दिखी तो वहीं से जय विश्वनाथ कह कर वापस लौटते हैं पर उनका कहना है कि जो मेरा परिचय देगा वह भस्म हो जायगा । अतः देखो मैं तुम्हारे सामने चिता बनाकर दिखा रहा हूँ अतः बता देना कि नारद ने मुझे आप का परिचय दिया और चिता पर आरूढ़ हो गये यह देख लो यह सभी सुनकर परशुराम जी वाराणसी में आये, उन्होंने देखा कि एक भिक्षुक विश्वनाथ मन्दिर की ओर जा रहा है पर एक शवयात्रा देखकर वह जय विश्वनाथ कहकर वापस लौटने लगा तभी परशुराम जी दौड़कर भिक्षुक के चरणों में लोट गये वह छोड़ो-२ कहकर जाने लगा परशुराम जी ने कहा कि महाराज! मुझे नारद जी ने परिचय दिया है कि आप संवर्तमुनि हैं। संवर्त ने कहा, कि नारद ने कहा है मैं उसे अभी ही भस्म किये देता हूँ पर परशुराम जी बोले वे तो चिता में चढ़ गये हैं संवर्त ने कहा तो ठीक है । फिर उन्होंने परशुराम जी से कहा, कि तुम यहाँ से श्री दत्तात्रेय जी के पास जाओ, वे तुम्हारी समस्या हल करेंगे, परशुराम जी संवर्त के बताए गये स्थान में गये वहाँ उन्होंने देखा, कि आश्रम क्षेत्र में

एक युवक युवती के पास बैठकर मद्य पान कर रहा है, उन्हें भ्रम हो गया कि यहाँ यह भी होता है ऐसा सोचकर लौटने को हुए कि दृश्य बदल गया । उन्होंने देखा कि श्री अवधूत श्रीदत्तात्रेय सामने खड़े हैं, भगवान् दत्त ने कहा कि संवर्त ने ठीक ही कहा है, भगवान् श्रीदत्त ने सम्पूर्ण रहस्य श्री विद्या के बताकर कहा, कि तुम एक आराधना करो, भगवान् परशुराम पुनः भगवती की कृपा से श्रीदत्त जैसे सद्गुरु के अनुग्रह से पुनः तेजः सम्पन्न हो गये ।

इस ग्रन्थ के मुख्य वक्ता श्री हारितायन जी हैं, इन्हें सुमेधानाम से भी जाना जाता है ये परशुराम जी के शिष्य हैं । श्री सुमेधा हारितायन जी ने जो प्रश्न किया परशुराम जी से । श्री परशुराम जी ने श्री दत्तात्रेय के शरणागत होकर जो ज्ञान प्राप्त किया था, उसे हरितायन जी ने त्रिपुरा रहस्य के तीन खण्डों में वर्णित किया। यह एक प्रकार से श्रीपरशुराम दत्तात्रेय संवाद रूप में है, यह ग्रन्थ हरितायनसंहिता के नाम से भी जाना जाता है ।

अपितु इस ग्रन्थ के दूसरे श्लोक में देवर्षि का नाम आया हुआ है कि "देवर्षे! श्रुत-मे-तत्ते ज्ञान-खण्डं समीरितम् । संश्रुतं मोक्षजननं साक्षाच्छिवमुखोद्गतम् ॥२॥ श्री सुमेधा हारितायन पूर्वजन्म में ब्राह्मणकुल में जन्म लेकर भी क्षीणस्मृति थे पर बाल सुलभ सहज रूप में सभी को "ऐ-ऐ" सम्बोधन करते थे इसे परमदयामयी बालाभगवती ने स्वप्न में बालक के हृदय में इस एकाक्षर को बिन्दु सहित कर दिया । यह बालक आगे से अबोध होते हुए भी सहज प्रवृत्ति से "ऐं-ऐं " बोलने लगा निरन्तर जप क्रम चलने से भगवती की कृपा हो गई । वहीं इस बालक को भगवती ने कहा, कि तुम ही अगले जन्म में "त्रिपुरा रहस्य" ग्रन्थ की रचना करोगे।

षट्त्रिंशद्दिवसैरेतत्कर्तव्यं भवता भवेत् (त्रि. र. मा. २/८२) ये ही हारितायन नाम से जन्म लेकर भगवती की कृपा से इस त्रिपुरा

रहस्य का निर्माण कर सके । प्राप्त वर्तमान जन्म में इस तत्त्व की प्राप्ति का घटनाक्रम इस प्रकार वर्णित किया गया है, कि जब परशुराम जी श्री गुरु दत्तात्रेय जी आश्रम में गये, वहाँ परमदयालु गुरुवर्य ने दीक्षा देकर वह परम तत्त्व मन्त्ररूप में परशुराम के हृदय में रोपित कर दिया, जिसके प्रभाव से वे पूर्ववत् तेजः सम्पन्न हो गये । उनके पास श्रीहारितायन जिन्हें सुमेधा ऋषि के नाम से भी जाना जाता है, ये परशुराम जी के शिष्य थे ।

मूलतः सनातन गुरुशिष्य परम्परा से ज्ञान धारा अक्षुण्ण बहती आ रही है । सार निष्कर्ष से यह क्रम इस प्रकार से व्यक्त हुआ है कि-

भगवान् महादेव शिव ने विष्णु को इस तत्त्व का उपदेश किया, विष्णु ने ब्रह्मा को उपदेश किया, मर्त्यलोक में महाविष्णु के ही स्वरूप भगवान् दत्तात्रेय ने परशुराम को उपदिष्ट किया तथा (इस उपक्रम के पश्चात् श्रीदत्तगुरु श्रीपरशुराम जी से चर्याक्रम का इस "चर्याखण्ड" में वर्णन आरम्भ कर रहे हैं-) यथा-

परशुराम ने अपने शिष्य सुमेधा हारितायन को उपदेश दिया हालास्य नगर में (दक्षिण क्षेत्र) आकर भगवती मीनाक्षी माँ की शरण में आकर उनके चरणों में समर्पित होकर इस ग्रन्थ की रचना का उपक्रम प्रारम्भ किया और भगवती के निर्देशानुसार छत्तीस दिनों में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ तीन खण्डों में, प्रथम खण्ड माहात्म्यखण्ड, दूसरा ज्ञानखण्ड, तीसरा चर्याखण्ड । प्रथम, द्वितीय खण्डों पर अनुवाद हुआ है मान्य विद्वानों द्वारा ये उपलब्ध भी हो रहे हैं, जिज्ञासु साधक श्रीविद्यातत्त्व से लाभान्वित हो रहे हैं । श्रीविद्यातत्त्व का उपदेश एवं साधना के लिये मन्दिरों का निर्माण कराके पूज्य शङ्कराचार्य जी ने साधकों का उपकार किया। (आबालगोपविदिता-१९४)

चर्याखण्डः तृतीये, प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरण के पश्चात् ग्रन्थ का आरम्भ द्वितीय श्लोक से- यथा - मूलश्लोक -:

देवर्षे ! श्रुतमेतत्ते ज्ञानखण्डं समीरितम् ॥
संश्रुतं मोक्षजननं साक्षाच्छिवमुखोद्भवम् ॥2॥

हे देवर्षे नारद !! साक्षात् शिव महादेव के श्रीमुख से निसृत मोक्षभाव को प्रकट करने वाला यह "ज्ञानखण्ड" नामक द्वितीय खण्ड कहा गया था, वह मैंने सुना ॥२॥

अथ ते कथयाम्यद्य चर्याखण्डं शृणुस्व-तत् ॥
यच्छ्रुत्वा त्रिपुरा प्रीतिं लभेन्मोक्षैकसाधनम् ॥3॥

ज्ञानखण्ड के कथनान्तर अब मैं अभी मोक्षभाव के एक मात्र साधन उस "चर्याखण्ड" को तुम्हारे लिये कहता हूँ; जिसके श्रवण कर लेने पर भगवती त्रिपुरा के लिये प्रीति प्राप्त होती है ॥३॥

त्रिपुराया बाह्यचर्यासाधनेऽत्युत्तमं त्विदम् ॥
एतद्विचार्य न क्वापि चर्यायां मुह्यति क्वचित् ॥4॥

यह चर्याखण्ड भगवती की चर्यारूप साधना में अत्युत्तम साधन है । ऐसा मन में विचार करके साधक कहीं भी किसी भी अवस्था में साधनों की भरमार से घबराता नहीं है, और न ही मोहग्रस्त होता है किंकर्तव्यविमूढ़ भी नहीं होता ॥४॥

आदौ श्रुत्वा तुमाहात्म्यं त्रिपुराया महत्तरम् ।
भक्ति निर्भरस्वान्तो रामः पप्रच्छ वै गुरुम् ॥

मुनि सुमेधा नारद जी से कह रहे हैं - देवर्षिवर्य ! नारदजी ! सर्वप्रथम श्रीगुरु दत्तात्रेय जी से भगवती त्रिपुराम्बा के सर्वोत्कृष्ट माहात्म्य को सुनकर श्री परशुरामजी ने भक्तिपरिपूर्णअन्तःकरण

होकर गुरुवर्य से आगे पूछा ॥५॥

भगवन् ! श्रीगुरो! नाथ! या सा श्री त्रिपुराभिधा ॥
तामुपासितुमिच्छामि श्रुतमाहात्म्यवैभवम् ॥6॥

हे भगवन् ! श्रीगुरो! नाथ! यह जो त्रिपुरा नाम्नी महाशक्ति महाविद्या है, उनके अलौकिक, वैभवयुक्त-माहात्म्य को आपके श्रीमुख से सुनकर मैं उनकी उपासना करना चाहता हूँ ॥ ६॥

अनुग्रहं कुरु मयि भगवन् ! करुणानिधे ! ॥
इति सम्प्रार्थितस्तेन दत्तात्रेयो दयानिधिः ॥ 7 ॥

हे भगवन् ! करुणानिधे !! मेरे ऊपर आप कृपया अनुग्रह कीजिये । इस प्रकार जिज्ञासु परशुराम के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर दयानिधि श्रीदत्तात्रेय गुरुवर्य ने - ॥ ७ ॥

निशाम्य भार्गवे भक्तिं दृढ़ां श्रद्धासमाश्रयाम् ॥
आगमोक्ताविधानेन दीक्षयामास वै क्रमात् ॥8॥

श्रीगुरु दत्तात्रेय जी ने भार्गव परशुराम के निवेदन में और हृदय में श्रद्धापरिपूर्ण सुदृढ़ शुद्धभक्ति को देखा अपने ज्ञानचक्षुओं से। फिर उन्होंने आगमशास्त्रोक्त विधान से उन्हें क्रमपूर्णपद्धति से दीक्षा दी ॥८॥

अथाखिलां पद्धतिं तु तस्मै प्रोवाच योगिराट् ॥
तत्ते नारद ! वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥9॥

दीक्षा संस्कार द्वारा अधिकारी बनाकर समस्त पद्धति को भार्गव परशुराम जी को उपदिष्ट किया उन योगिराज ने । वह .जो त्रिपुरापद्धति आगमोक्त है; उसे मैं सम्पूर्ण रूप में तुम्हें सुनाऊँगा, तुम सावधान मन से सुनो ॥९॥

हारितायन सम्प्रोक्तं श्रुत्वा प्रोवाच नारदः ॥
हारितायन सन्देहो ममात्राभून्महत्तरः ॥10॥

हारितायन सुमेधामुनि द्वारा श्रीदत्तात्रेयोक्त आगमिक समस्त त्रिपुरा सम्बद्ध पद्धति को सुनकर नारद बोले, कि हारितायन जी ! आपने जो पद्धति मुझे सुनाई मैंने सुना परन्तु मुझे बहुत बड़ा सन्देह मन में हो गया है ॥१०॥

तत्त्वां पृच्छामि मे ब्रूहि सुस्पष्टं च सहेतुकम् ॥
गुरुणा भार्गवायादौचर्या प्रोक्तेति संश्रुतम् ॥11॥

उस हृदयगत सन्देह से मैं पूछ रहा हूँ , कारणसहित सुस्पष्टरूप से मुझे सुनाओ- वह संदेह यह है,कि पूर्व में श्रीदत्तगुरु ने भार्गव परशुराम को "चर्या " भगवती त्रिपुरासम्बन्धी कही थी, ऐसा सुना गया है ? ॥११॥

त्वयातृतीयखण्डं वै चर्यारूपमुदाहृतम् ।
कुत एतद्वैषम्यं तन्मे सम्यक् समीरय ॥12॥

आपने कहा कि तृतीय चर्याखण्ड कहा गया तो यहाँ विषमता यह हो रही है,कि श्रीगुरु ने जो चर्या का उपदेश किया वह कैसी थी ? और आपने जो"चर्याखण्ड" की चर्चा की वह क्या है? गुरुप्रोक्तचर्या तथा आपसे प्रोक्त चर्या क्यों अलग-अलग हैं? यदि एक हैं तो दो बार आपका कहना किस अभिप्राय से है ? आप मेरे संदेह का निराकरण करें ॥१२॥

इति पृष्टो नारदेन सुमेधाः प्राह वै ततः ॥
शृणु नारद ! वक्ष्यामि त्वत्पृष्टं तु सहेतुकम् ॥13॥

इस प्रकार नारद जी ने जो सन्देह मुनिसुमेधा के सामने व्यक्त किया था, उसे सुनकर सुमेधा बोले नारद जी ! उसे आप कारण सहित जो मूलरूप से कालधारा चलती है उसके आधार पर मैं आपको समझाता हूँ उसे सुनें ॥१३॥

लोके यज्जायते कार्यं सङ्कल्पाद्ब्रह्मणो हि तत् ॥
सङ्कल्प्य ब्रह्मणादौ तु तेनाज्ञप्तस्तु वै तथा ॥14॥

मूलक्रम इस सृष्टि में जो होता रहता उसमें है सृष्टि के एकमात्र मूलदेवता पितामह ब्रह्माजी हैं । उनके संकल्प से सृष्टि के कार्य सम्पादित होते हैं । उसी सङ्कल्पधारा में यह पद्धति आरब्ध हुई है। उसका क्रम इस प्रकार वर्णित हुआ है, संक्षेप में क्रम इस प्रकार है- सर्वप्रथम श्रीमहादेव ने विष्णु से, विष्णु ने ब्रह्मा से, मर्त्यलोक में श्री दत्तात्रेय ने परशुरामजी से कहा । उन्होंने मुझे जिज्ञासा करने पर कहा। इस ज्ञान को धारण करने की शक्ति मुझे विगतजन्म में भगवतीबाला के अनुग्रह से प्राप्त हो गई थी । जब मैंने परशुराम जी से दत्तात्रेय प्रोक्त अपूर्वपद्धति सुना, उसे आरम्भ में आपको सुनाया ॥१४॥

अतस्तृतीयखण्डोऽसौ चर्यात्माभूत्तृतीयकः ॥
आदौ श्रीदत्तगुरुणा शिष्याणां हितकाम्यया ॥15॥

इस कारण यह जो तृतीय "चर्याखण्ड" है यह चर्यात्मा है, और दैवीअनुग्रहबल से सुस्थिर हुआ है। अन्यथा यह तो हृदय में स्थिर ही नहीं हो रहा था । परन्तु श्रीगुरु के शक्तिपात से परशुराम जी ने सुना, उसे मैंने उनके श्रीमुख से सुना; जो सुना वह भगवती के अनुग्रह से पूर्णरूप से प्रकट हुआ है । अतः पूर्वोक्त चर्या में तथा इस चर्याखण्ड में प्रोक्तपद्धति में कोई भेद नहीं है॥१५॥

स्वनाम्ना संहितां चक्रे त्रिपुरोपास्तिपद्धतिम् ॥
अष्टादशसहस्राणि ग्रन्थतोऽभूच्च संहिता ॥16॥

श्रीगुरुप्रोक्त भगवतीत्रिपुरा की उपासनापद्धति को अपने नाम से ग्रथित किया । यह संहिता विधानादिकों के ग्रथन करने से अष्टादशसहस्रश्लोकों में पूर्ण हुई है ॥१६॥

अधीत्य तां जामदग्न्यो विस्तृताम् सागरोपमाम् ॥
गम्भीर गूढतात्पर्यां मन्दानां तत्र वै गतिम् ॥17॥

श्रीगुरुदत्तप्रोक्त त्रिपुरोपास्तिसंहिता का श्रीपरशुराम ने अध्ययन करके विचार किया, कि अथाहसागर जैसे गम्भीरअर्थ वाली यह दुर्लभ त्रिपुरोपास्तिपद्धति जिसका तात्पर्य अभिप्राय भी अत्यन्त गूढ है इसमें मन्दबुद्धि वालों का प्रवेश सम्भव नहीं है ॥१७॥

मत्वासुदुर्लभां भूयः संक्षिप्य महदाशयाम् ॥
निर्ममे सूत्रजालं वै पञ्चाशत्खण्डमण्डितम् ॥18॥

इस दैवीपद्धति को; जो अत्यन्त गम्भीर महान् भावों वाली है, उसे सुदुर्लभ मानकर पुनः उन्होंने श्रीपरशुराम जी ने पचास खण्डों में सुसज्जित सूत्रजाल का निर्माण किया ॥१८॥

तद्गुरोर्मे जामदग्न्यादधीतं सूत्रमण्डलम् ॥
अधीता संहिता चापि तत्पश्चाद्गुरुनामतः ॥19॥

मैंने उस सूत्रमण्डल का गुरु जामदग्न्य-परशुराम जी से अध्ययन किया । फिर बाद में मैंने गुरुनाम से प्रसिद्ध संहिता का भी अध्ययन किया ॥१९॥

सूत्रजालं संहितायाः प्रतिबिंबात्मकं भवेत् ॥
ग्रन्थतः षट्सहस्त्रंतु सूत्रं तदपि संस्थितम् ॥20॥

यह सूत्रों का समूह संहिता का प्रतिबिम्बात्मक है । संहिताग्रन्थ से छह हजार सूत्र लिया, वे भी इसमें संस्थित है । इसमें संहिता और सूत्र दोनों ही संस्थित है । आगे के श्लोक में -

संहितार्थस्य संक्षेपात्मकं सूत्रमुदाहृतम् ॥
संहितासूत्रयोः सारं संगृहीतं मया मुने ॥21॥

पूर्वनिर्मित संहिता का संक्षेपात्मक सूत्र कहा गया है । मैंने

संहिता और जामदग्न्य-सूत्रों का चिन्तन कर मुनिवर्य देवर्षे नारद जी ! सार संगृहीत किया है ॥२१॥

तद्दत्तरामसंवादात्मकमेव पुरा कृतम् ॥

तदद्य ते प्रवक्ष्यामि शृणु सम्यक् समाहितः ॥22॥

पहिले "दत्तरामसंवादात्मक ही सम्मिलितरूप था । आज मैं भगवती की कृपा से पूर्णरूप से चैतन्य हूँ, आज मैं वह दैवी विधान आपसे कहूंगा, आप अच्छी तरह सावधान होकर सुनें ॥२२॥

दीक्षां प्राप्यभार्गवोऽथ कदाचित् गुरुसन्निधौ ॥

दण्डवत्प्रणतो भक्त्याबद्धाञ्जलिपुटस्तथा ॥23॥

यहाँ से आगे के श्लोकों में सुमेधा हारितायन जी ने श्री नारदजी को वह त्रैपुरपद्धति जो "श्रीदत्तात्रेय-भार्गवसंवाद" रूप में थी, वही सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी के संकल्पानुसार ब्रह्माजी से प्रेरित श्रीदेवर्षि नारदजी को सुनाया । वह चर्या जो पूर्ववर्णित थी उसके अभिप्राय और सूत्रार्थों दोनों का समन्वय करके जो चर्यात्मक विवेचन किया, वही सनातन गुरुपरम्परा से वर्तमान में जिज्ञासुओं को प्राप्त हो रहा है- उसका वर्णन इस प्रकार है-यथा-

देवर्षे ! इसके अनन्तर भार्गव परशुराम जी कभी श्रीगुरु की सन्निधि में दण्डवत्प्रणत होते हुए भक्तिपूर्वक बद्धाञ्जलि होकर....॥२३॥

अथ दत्तगुरुः शिष्यमाशीर्भिरनुयोज्य वै ॥

प्राह प्रेम भरां वाचं रामं भक्ति सुनिर्मलम् ॥24॥

श्री परशुरामजी श्रीदत्तगुरु के सामने बद्धाञ्जलि होकर बैठे, तब गुरुभक्ति से निर्मलान्तःकरण परशुराम जी से श्रीदत्तगुरु प्रेमपूर्वकवाणी बोले ॥२४॥

जामदग्न्य किं तवेष्टं वद पृष्टो मयाधुना ॥

भक्तोऽसि तद् देयमेव सर्वं नास्त्यत्रसंशयः ॥25॥

श्री दत्तगुरु बोले जामदग्न्य क्या चाहते हो ? तुम्हारी कौन सी इच्छा है? मुझसे कहो, जो चाहते हो वह सभी देय होगी, इसमें संशय बिलकुल भी नहीं है ॥२५॥

अथराम प्रसन्नात्माकृताञ्जलिरुवाचतम् ॥

श्रीगुरो करुणासिन्धो त्वयि तुष्टे महेश्वरे ॥26॥

श्रीदत्तात्रेयजी की वात्सल्यमयीवाणी सुनकर प्रसन्नात्मा परशुराम बद्धाञ्जलि होकर बोले -हे करुणासिन्धो ! श्रीगुरो ! महेश्वररूप आपके सन्तुष्ट होने पर -: ॥२६॥

किमप्राप्यं भवेल्लोके सर्वं करतलस्थितम् ॥

उपासनाविधिं तद्वत् तत्फलं चाधिकारिताम् ॥27॥

इस संसार मैं कौन सी वस्तु अप्राप्य रह जाती है,सभी सुगमता से करतलगत हो जाता है ॥२७॥ उसी प्रकार की उपासनाविधि, उसका फल और उसका अधिकारी कौन हो ?

बूहि मह्यं सुकृपया संक्षेपात् सुव्यवस्थितम् ॥

इत्यापृष्टो दत्तगुरुः प्रसन्नः प्राह भार्गवम् ॥28॥

आप कृपापूर्ण हो संक्षेप में हृदयग्राह्य हो सके सभी के द्वारा ऐसा सुव्यवस्थित सार पूर्णविधान या कर्तव्य मुझे बतावें ॥२८॥

शृणु राम प्रवक्ष्यामि गुह्यमेतत् समाहितः ॥

उपासनं देवताया बहुधा सुव्यवस्थितम् ॥ 29।

हे राम ! मैं समाहितचित्त होकर वह सुगुप्त उपासना देवता से सम्बन्धित;जो सभी प्रकारों से सुव्यवस्थित है, निःसंदिग्ध है, सुगम है वह कहूंगा ॥२९॥

तत्र संक्षेपतो भेदास्त्रिधैव शृणु भार्गव ॥

वैदिकी तान्त्रिकी मिश्रा चेति सा स्यादुपासना ॥30॥

हे भार्गव ! उस उपासना के विषय में केवल तीन ही प्रकार हैं। एक वैदिकीउपासना, दूसरी तान्त्रिकीउपासना और तीसरी मिश्र (वैदिकी और तान्त्रिकी) उपासना है ॥३०॥

वैदिकी वेदसंप्रोक्तातंत्रोक्ता चापि तांत्रिकी ।
मिश्रा चोभय संमिश्रा तद्भेदं क्रमतः शृणु ॥31॥

वैदिकी-उपासना वेदों में कही गई है । तांत्रिकी-उपासना विभिन्न तन्त्रों में विभिन्न प्रकारों से कही गई है, और मिश्रउपासना वेद और तन्त्र दोनों का मिश्रितरूप है । इन तीनों के भेदों को क्रमशः सुनो -॥३१॥

वैदिकी तन्त्रसंस्पर्शहीनादीक्षा विवर्जिता ॥
केवलं वेदसम्प्रोक्तवर्त्मनोपासनं भवेत् ॥32॥

पूर्वोक्त तीन पद्धतियों में जो प्रथम वैदिकी-उपासना है, वह तन्त्रोक्त विधानों से रहित तथा उसमें दीक्षा की आवश्यकता नहीं रहती, केवल षोडशसंस्कारों के मध्य अधिकारानुसार तथा प्रत्येकवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की मुख्य, गौड आयुसीमा में गायत्र्युपदेश के अनन्तर वर्णानुसार विभिन्न ब्राह्मण भेदानुसार निश्चित वेद, शाखा, गृह्यसूत्र तथा परम्परानुसार वेदाध्ययन पुरस्सर इसकी साधना होती है यथा रुद्राष्टाध्यायी द्वारा अभिषेकादि महामृत्युञ्जयादि वेदमन्त्रों का अनुष्ठान उपनयन, वेदारंभ और समावर्तनसंस्कार ही इसमें अनिवार्य हैं । पूर्वोक्त इन क्रमों से की जाने वाली उपासना वैदिकउपासना कही गई है ॥३२॥

फलन्तु पुण्यलोकाप्तिस्तन्त्रे चाप्यधिकारिता ॥
द्विजस्तत्राधिकारी स्यात् कलुषस्वान्त एव हि ॥33॥

वैदिकी उपासना के परिणाम से पुण्यलोकों की प्राप्ति होती है, तन्त्र उपासनाओं में वैदिक का अधिकार भी होता है । इस

वैदिकोपासना में द्विज-अर्थात्-ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ही अधिकारी होते हैं यदि वे उपनयन संस्कार मुख्य या गौड आयुसीमा में विवाहसंस्कार के पूर्व गायत्र्युपदेश हो गया हो या इस मुख्य-गौड काल के असावधानी से अतिक्रमण हो जाने पर प्रायश्चित्तादि संस्कार कर दिये गये हों तो भी पात्रता मान्य होती है, किन्तु वैदिकी उपासनेच्छु का उसका अपना अन्तःकरण कलुषपूर्ण हो तो भी ! ॥३३॥

तांत्रिकी वेदसंस्पर्शहीना तंत्रैकसंश्रया ।
यथोक्तफलदा चान्त्य वर्णस्यैवाधिकारिता ॥34॥

दूसरी तांत्रिकी-उपासना में वैदिक विधान नहीं होते, वहाँ एक मात्र तांत्रिक-विधान ही प्रमुख होते हैं वे अनिवार्य होते हैं । और तांत्रिक पद्धतियों मे कहे गये फलों की प्राप्ति कराने वाली तथा इसमें अन्त्यवर्ण अर्थात् शूद्रवर्ण का ही अधिकार विहित है॥३४॥

मिश्रातु मिश्रिता ज्ञेया वेदतन्त्रानुरोधिनी ॥
महाफलदा तत्र द्विजानामधिकारिता ॥35॥

मिश्र उपासना (तीसरी) यह मिश्रित ही है अर्थात् इसके विधानों में तन्त्रोक्त एवं वेदोक्त विधानों का मिश्रित रूप रहता है जैसे श्रीविद्योपासना में तन्त्र और वेदमन्त्रों का प्रयोग होता है, यह मिश्रोपासना है यह महाफलदायिनी (भोग-मोक्ष) है वहाँ द्विजों का अधिकार है ॥३५॥

द्विजास्त्वपक्वचित्ता ये तेषां तन्त्रे कदापि न ॥
अधिकारो भवेत्तेषां तन्त्रस्पर्शादधोगतिः ॥36॥

तन्त्रोपासना में जो द्विज है; जिनका चित्त पूर्ण परिपक्व नहीं है अर्थात् जिनकी इन्द्रियाँ वश में न हो मन चंचल हो वश में न हो

बुद्धि में निर्णयक्षमताचलित हो, गुरु के वचनों,शास्त्रों में, इष्ट में दृढ़निष्ठा विचलित न हो तो अन्यथा साहस नहीं करें । ऐसे लोग (द्विज) तन्त्र में कभी भी प्रविष्ट न हों दुस्साहस एवं हट से अधोगति हो जाती है ॥३६॥

तेषां दीक्षा न कर्तव्यात्वन्यथा पतितो भवेत् ॥
मन्त्रोपदेशमात्रं तु केवलं पूजनादिकम् ॥37॥

ऐसे लोगों की दीक्षा गुरु न करें अन्यथा उनका भी मन्त्र तथा तन्त्र शाप से पतन हो जावेगा । केवल सामान्यरूप से मन्त्रोपदेशमात्र कर दें और सामान्य पूजनादि जो प्रचलित हैं । वे उपदिष्ट कर दें ॥३७॥

नोच्चार्या तत्पुरः क्वापितन्त्र पद्धतिरन्यथा ।
वक्ता श्रोता च नरकं प्राप्नुयान्नात्रसंशयः ॥38॥

वैदिकोपासक के सामने कहीं भी कभी भी तन्त्रपद्धति का उच्चारण या उल्लेख आदि न करे । अन्यथा बोलने वाला और सुनने वाला दोनों ही नरक प्राप्त करेंगे यहाँ संशय नहीं है॥३८॥

तैः कर्तव्यं वेदभववर्त्मना पूजनं जपः ॥
तान्त्रिकी केवला या तु वेदाचारविवर्जिता॥39॥

उन वैदिकमार्गी लोगों को वेदोक्तमार्ग से ही पूजन और जपादि करना चाहिये । तान्त्रिकी उपासना केवल वेदाचारों से विवर्जित है । यह नियम ध्यान में रखना चाहिये ॥ अपनी क्षमता तथा गायत्री की उपासना यदि समय पर योग्य विद्वान् से उपनयन संस्कार में प्राप्त हैं तथा समय पर सन्ध्योपासनादि वेदपाठ नियमित होता है तो उसमें तांत्रिकक्रियासांकर्य न करें ॥३९॥

शूद्राणां तत्र दीक्षादिसर्वं स्यात्तन्त्रवर्त्मना ॥
द्विजास्तत्र नाधिकृताः किन्तु सा शूद्रगोचरा ॥40॥

जो शूद्रवर्ण के साधक हैं उनका उपनयन-संस्कार नहीं होता, वे उपासना में तान्त्रिकमार्ग से दीक्षित होकर मन्त्रानुष्ठानादि करें । केवल तांत्रिकी-उपासना में द्विजवर्ग अधिकृत नहीं हैं ; क्योंकि वह तान्त्रिक-उपासना जन्मना शूद्रवर्ण के ही लिये कही गई है ।।४०।।

शुद्धचित्तद्विजानां तु भवेन्मिश्राधिकारिता ॥
सा तु श्रौतनित्यकर्म कृत्वाऽन्ते तान्त्रिकं कृतम् ॥41॥

शुद्धचित्त वाले अर्थात् शौच,आहार,विहार,व्यवहारादि क्षेत्रों में राग,द्वेष,ईर्ष्या,मद,जलन, घृणा आदि मानसिक,वाचिक तथा कायिक दोषों से रहितान्तःकरणवाले, जन्मना द्विजों का तो मिश्रोपासना में अधिकार है, उसमें भी क्रम है- यथा प्रथमतः श्रौतनित्यकर्म करके अन्त में तान्त्रिकविधानों गुरुप्रोक्तों को सम्पन्न करें ।।४१।।

तत्र दीक्षादिकं सर्वं यथोक्तं तान्त्रिकं भवेत् ॥
वैदिकानां तु तन्त्रोक्तफलं मुख्यं न विद्यते ॥ 42 ॥

तान्त्रिकोपासक के लिये समस्त दीक्षादि मन्त्र और उसका साधन तथा दिनचर्या सभी कुछ केवल तान्त्रिक विधानोक्त ही होंगी वैदिकोपासकों के लिये तो तन्त्रोक्तफल प्रमुख नहीं है ॥ ४२ ॥

मुख्यं फलमन्ययोस्तु द्वयोः स्यात्तारतम्यतः ॥
वैदिकस्य तारतम्यात् षड्ऋतूनां सलोकता ॥43॥

दोनों वैदिकों तथा तान्त्रिकों दोनों का मुख्यफल क्रम से ही होगा । उनमें जो वैदिकोपासक हैं उनका मुख्यफल छह ऋतुओं (वसन्त,ग्रीष्म,वर्षा, शरत्,हेमन्त तथा शिशिर) के तारतम्य से होगा।।४३।

(इस श्लोक का स्पष्टीकरण श्रीगुरुदत्तात्रेय अग्रिम ४४ वें श्लोक में कर रहे हैं ।

श्रीपुरे या षड्विधा तु प्राकारान्तर भूमिका ॥
ऋतूनां तत्र वसतिः वैदिकानां क्रमाद्भवेत् ॥44॥

श्रीपुर में जो छह प्रकारों की प्राकारान्तर भूमिका है अर्थात् जो छह प्रकार के प्राचीर हैं; उन प्राकारों में (पुष्परागरत्न, पद्मरागरत्न, गोमेधकरत्न, वज्ररत्न (हीरा), वैडूर्यरत्न, इन्द्रनीलरत्न, मुक्तारत्न, मरकतरत्न,विद्रुमरत्न,माणिक्यरत्न ये सभी प्राकार मन्दिरपूजा में पूजित होते हैं, इनमें छहों में छहऋतुओं का निवास है । इनमें वैदिकोपासकों का क्रमशः निवास होता है ॥४४॥

तान्त्रिकाणां मरकतप्राकारान्ता हि संस्थितिः ॥
मिश्राणां तारतम्येन महापद्मवनान्तकम् ॥45॥

तान्त्रिकोपासकों की मरकतरत्नप्राकार के मध्य ही स्थिति होती है मिश्रतान्त्रिकोपासकों की श्रीचक्र (श्रीपुर) में महापद्मवन (अकुलपद्म) के निकट तारतम्यक्रम से स्थिति होती है ॥४५॥

निवासः सिद्ध्यति तथा देवतात्मस्वरूपिणीम् ॥
विज्ञाय मुच्यते बन्धात् -तत्र नो विद्यते क्रमः ॥46॥

महापद्मवनान्तिकसंस्थिति मिश्रतान्त्रिकोपासकों की तथा वह वहाँ श्रीगुरुमुख से अपना और इष्ट के स्वरूप का ऐक्य-ध्यान (निदिध्यासन) करके अर्थात् देवता और आत्मस्वरूप ऐक्य जानकर मैं ही देवी हूँ और कोई अन्य नहीं हूँ (अहं देवी न चान्योऽस्मि) जानकर बन्ध से (जीवभाव से भेदबुद्धि से) से मुक्त हो जाता है । वहाँ कोई क्रम विद्यमान नहीं है ॥४६॥

वैदिकस्य नैतदस्ति यत्तस्यानधिकारिता ॥
तस्यापि क्रमतः स्याद्वै राम कैश्चनजन्मभिः॥47॥

वैदिकी उपासना में संलग्न वैदिकोपासकों की मुक्त होने में

अनधिकारिता नहीं है वे भी मुक्त ही होते हैं,परन्तु क्रमशः होते हैं। हे परशुराम ! किन्हीं अग्रिम जन्मों में पात्रता होते २ होती है । त्रिकाण्डवेद में जब ज्ञान-प्रतिपादक श्रुतियों से भेद नष्ट होता है मुक्ति का मार्ग क्रमशः पूर्ण होता जाता है ॥४७॥

सदाश्रयान्नास्ति पातः शुभकृच्छुभमाप्नुयात् ॥
पापकृद्दण्डमाप्नोति तस्मात्पापं परित्यजेत् ॥48॥

सद् आश्रय लेने से कभी भी पतन नहीं होता अभिप्राय यह है भौतिकक्षेत्र में भी यदि अनुभवी ज्ञानवृद्धजनों का सान्निध्य मिलता है तो निश्चयादि करने में मानसिक निश्चयों में संकट में भी बुद्धि विचलित नहीं होने देता, इसी प्रकार आध्यात्मिकक्षेत्र में जगत् समस्त जड़-चेतन भूतजात में आत्मदर्शन तथा आत्मा का मूल सर्वाधिष्ठान को अन्तिम लक्ष्य बनाकर मुमुक्षुत्व के परिपोषण के लिये सद्गुरु का समाश्रयण उनके अनुशासन में उनके शरणापन्न होने से उनकी शिक्षा से इष्ट का अनन्य भावों से समर्पणात्मक शरणागति सुदृढ़ होने से आध्यात्मिक मार्ग से पात नहीं हो सकता; क्योंकि शुभाचरण,शुभनिश्चय तथा शुभाश्रय से व्यक्ति, साधक,किंबहुना कुल,तथा समाज तथा विशाल-राष्ट्र भी आदर्श बन जाता है। तथा पाप करने वाला पापफल पाता है, दण्ड पाता है, इसलिये पापविचार,पापाचरण तथा पाप-प्रवृत्तियों को सावधान रहते हुए न करें ॥४८॥

आगे के श्लोक में उदाहरण द्वारा श्रीदत्तगुरु भार्गव से सुस्पष्ट निर्देश दे रहे हैं -

यथा लोके महाराज्ञः समीपस्थो दिवानिशम् ॥
अस्खलंस्तिष्ठति यतो महादण्डस्य सम्भवात् ॥49॥

जिस प्रकार लोक में महाराजा की सन्निधि में दिनरात रहने वाला भय से मर्यादित रहता है, परिणामतः उसका स्खलन नहीं होता क्योंकि उसे महादण्ड की सम्भावना बनी रहती है॥४९॥

बाह्यानां नात्र भीतिः स्यादेवमत्रापि भार्गव ॥
उपासकानां महती भीतिर्दण्डमहत्त्वतः ॥50॥

जो बाह्यक्षेत्र में रहने वाले मनुष्य हैं अर्थात् जिनकी प्रवृत्ति तथा स्वभाव ही भोगप्रधान हो, भोग ही जीवन का लक्ष्य हो,रजोगुण और तमोगुण प्रधान हो, उन्हें इस विषय में भय नहीं होता क्योंकि विचारशक्ति कुण्ठित हो जाती है । परन्तु जो उपासक हैं, उन्हें दण्ड का महत्त्व विदित रहता है, इसलिये वे बड़े भय की सम्भावना से मर्यादित रहते हैं ॥५०॥

तस्मादुपासकः सम्यक्सदाचरणतत्परः॥
भवेन्नो चेन्महद् दण्डभयं तस्य भवेद् ध्रुवम् ॥51॥

इस कारण जो उपासक हैं उन्हें अच्छी तरह सम्यक्रूप से मर्यादाओं का पालन करते हुए सदाचरण में तत्पर रहना चाहिये। यदि ऐसा नहीं हुआ उपेक्षा बनी रही,असावधानी बनी रही,और स्वयं पर तथा स्वकीय प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण न रहा, गुरुवचनों में दृढ़निष्ठा और श्रद्धा आदि न रही तो निश्चित ही उस अमर्यादित को बड़े ही दण्ड का भय बना रहेगा ॥५१॥

इति शुभम् ।

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे दत्तभार्गव, संवादे उपक्रमपूर्वकं दीक्षाविधानं उपासक-धर्मादि विधानं नाम -प्रथमोऽध्यायः

सम्पूर्तिमगात् -इतिशम् ॥

ॐ ओंकारनादसल्लीनं शङ्करञ्च्छ्रीजगद्गुरुम्
चन्दनचर्चितभालं काषायाम्बरवेष्टितम् ।।

श्रीमज्जगद्गुरवे नमः

अथ - द्वितीयोऽध्यायः

श्रुत्वैवं गुरुणा प्रोक्तं रामः पप्रच्छ वै गुरुम् ॥
भगवन् !श्रोतुमिच्छामि त्रिपुरासाधकस्य यत् ॥1॥

इस कथानक का श्रीगणेश महादेव के श्रीमुख से श्रीविष्णु को, श्रीविष्णु से ब्रह्माजी को और ब्रह्माजी की प्रार्थना पर श्रीविष्णुहयग्रीव से हारितायन को कालपरिणाम से श्रीपरशुरामजी को, श्रीसंवर्त की प्रेरणा से श्री दत्तगुरुवर्य द्वारा परशुराम जी को श्री परशुराम जी से हारितायन (सुमेधा) जी को पुनः श्री ब्रह्माजी की आज्ञा से आये हुए श्रीनारदजी को श्री सुमेधाजी वह अलौकिक श्रीत्रिपुरामाहात्म्य, एवं उस तत्त्व का लक्ष्यार्थज्ञान, तथा उसकी चर्या का प्रकार बता रहे हैं ।

संवादक्रम में प्रस्तुत चर्याखण्ड के प्रथमाध्याय में श्रीदत्तगुरु ने परशुराम जी को त्रिविध-उपासना (वैदिकी,तान्त्रिकी एवं मिश्रा) का विवेचन किया,तीनों का भेद बताने के बाद प्रत्येक का फल परिणाम बताया जो क्रमपुरस्सर साधक के सामने उपस्थित होता है अन्त में उन्होंने (श्रीदत्त) इस अपूर्व मिश्रोपासना की त्रिपुराचर्या में श्रीसद्गुरु द्वारा स्वयं उनके हृदय में स्फुरित इच्छा से प्राप्त जिज्ञासु शिष्य को दीक्षा मिल जाने के अनन्तर प्राप्तिमात्र से मुग्धमानस एवं प्रवृत्ति वाला होकर शिष्य मर्यादाओं का उल्लंघन न करे, अन्यथा अवहेलना से, प्रमाद से, उपेक्षा से होने वाले

अमर्यादित मानसजन्य, अमर्यादित वाचिकजन्य तथा अमर्यादित कायिकजन्यदोष इस श्रीविद्या की प्राप्ति में बाधक हैं । सर्वोत्कृष्ट इसकी चर्या भी है । इसमें असावधानी उतनी ही बड़ी होती है, महज्जनों से सम्बद्ध अपराध भी बड़ा होता है, तो उसका प्रायश्चित भी उतना ही बड़ा होता है यथा- चर्याखण्ड के प्रथमाध्याय में कहा गया है -

यथा लोके महाराज्ञः समीपस्थो दिवानिशम् ।।
अस्खलंस्तिष्ठति यतो महादण्डस्य सम्भवात्।।१/४९।।
बाह्यानां नात्र भीतिःस्यादेवमत्रापि भार्गव ।।
उपासकानां महती भीतिर्दण्डमहत्त्वतः ।।१/५०।।
तस्मादुपासकः सम्यक् सदाचरणतत्परः ।।
भवेन्नो चेन्महद्दण्डभयं तस्य भवेद् ध्रुवम् ।।१/५१।।

इस प्रकार गूढ़विधान को श्रीगुरुवर्य द्वारा सुनकर परशुराम जी ने उनसे आगे जानने के लिये प्रश्न किया,कि भगवन् । मैं सुनना चाहता हूँ, कि जो श्रीत्रिपुरा की आराधना करना चाहता है,तो उससे जो पाप हो जाये तो उस पाप का दण्ड कैसा और किस प्रकार का होगा ? इस जिज्ञासा से श्रीगुरु आगे के श्लोक में बोले यथा -

पापं भवेत्तत्र कथं दण्डो भवति तद्वद ॥
दण्डकर्ता यमो वाऽन्यः किं विधो दण्ड एव च ॥2॥

दीक्षित द्वारा प्रमाद से अपराध किसप्रकार का माना जायगा और वह किस स्थिति में होगा । तथा उस अपराध का दण्डदाता जो दण्डधर यम प्रसिद्ध हैं, वे हैं या और कोई है ? और वह दण्ड किस प्रकार का होगा ? ॥२॥

पापं महत्तरं किं वा चैतन्मे वद विस्तृतम् ॥
इत्यापृष्टो दत्तगुरुः प्राह रामं दयानिधिः ॥3॥

परशुराम जी ने प्रश्न किया, कि सबसे बड़े पाप का रूप क्या है ? इत्यादि कृपा करके हे दयानिधे ! श्रीगुरो! मुझे विस्तार से बताने की कृपा करें ॥३॥

शृणु राम प्रवक्ष्यामि रहस्यमिदमादरात् ॥
अन्यस्य यादृशे पापे यो दण्डःशमनात् भवेत् ॥4॥

परशुराम जी के प्रश्न पर उत्तर में श्रीदत्तगुरु ने कहा राम ! दण्ड का रहस्य हम तुमसे विस्तृतरूप में बताते हैं, तुम ध्यान से सुनो दीक्षा विरहित जन से जैसा पाप होगा वह शमनात्मक दण्ड से होगा ॥४॥

ततो शतगुणो दण्डस्तत्पापस्यास्य जायते ॥
तत्र यो वैदिको राम तस्य दण्डो यमाद्भवेत् ॥5॥

जो अन्य जन से जो पाप हुआ है, तो उसका दण्ड सौ गुना होगा जब वह पाप वैदिकोपासक से सम्बद्ध होगा, उसका विधान (शमन) धर्मराज के दण्डविधान से होगा ॥५॥

मिश्रस्य तान्त्रिकस्यापि दण्डदात्री तु दण्डिनी ॥
वैदिकोपासकानां च न बाह्ये यमलोकके ॥6॥

मिश्रोपासकों की और तान्त्रिकोपासकों की तो दण्डदात्री भगवती दण्डिनी (दण्डनाथा) ही हैं; किन्तु जो वैदिकोपासक है उनका भी दण्डविधान बाहरी जो यमलोक है; जिसमें सामान्य नर-नारियों का दण्डविधान होता है,वह नहीं । वैदिकोपासकों के लिये तो ॥६॥

अग्रिम-श्लोक में -

दण्डो भवेत् किन्तु मेरौ श्रीपुरं यत्पुरोदितम् ॥
तत्रत्ययमलोकेषु दण्डं तेषां महत्तरम् ॥7॥

वैदिकोपासकों को अपराध करने पर दण्ड तो होगा, किन्तु सामान्य प्राणियों के दण्डविधानों के दाता यमराज के नरकों में नहीं किन्तु सुमेरुपर्वत जहाँ श्री का निवास है, सुमेरु के मध्य शृङ्ग में स्थित है । (वाग्देवीकथित ललितासहस्रनाम का पचपनवां मन्त्र सुमेरुमध्यशृङ्गस्था) वहाँ पर जो दण्डविधान का स्थान वह अत्यन्त विशाल है।।७।।

कृत्वा भूयो दण्डं राज्ञे प्रयच्छति च तं यमः ॥
ततस्तत्रापि दण्डेन संशोध्य तदनन्तरम् ॥8॥

उस दण्डप्राप्त प्राणी को यमदण्ड द्वारा संशोधित कर पुनः वहाँ सुमेरुक्षेत्र में वहाँ भी दण्ड से दण्डित कर तदनन्तर - ॥८॥

उपासककुले शुद्धे संयोजयति तं नरम् ॥
तत्रोपास्त्याः क्रमेणाऽसौ मुच्यते जन्म बन्धनात् ॥9॥

पर्याप्त दण्डयातनाओं को भुगतने के अनन्तर शुद्धकुल में जन्म प्राप्तकर उस कुल में उपासना की सुविधा मिलने से वह निष्पाप होकर क्रमशः मुक्तिलाभ प्राप्त करता है- यह वैदिकोपासक से सम्बद्ध है । आगे के वर्णन में मिश्रोपासक और तान्त्रिकोपासकों के विषय में श्री गुरुदत्त परशुराम से कह रहे हैं - यथा -

तान्त्रिकं मिश्रमपि च मृतं बद्ध्वानयन्ति वै ॥
दण्डनाथाः शक्तिगणः स्वेलोके तत्र तं नरम् ॥10॥

तान्त्रिकोपासक को और मिश्रोपासक को मृत्यु के अनन्तर दण्ड नाथा भगवती की दण्डधरशक्तियों के गण उस नर को अपने लोक में ले जाते हैं ॥१०॥

दण्डेष्वत्युग्र रूपेषु पातयन्ति यथाक्रमम् ॥
संकर्षिणी कर्षिणी च कालसंकर्षिणी तथा ॥11॥

उन दोनों उपासकों मिश्रोपासक तथा तान्त्रिकोपासकों को दण्डनाथा के

उग्रदण्डधर शक्तिगण अपने लोक में ले जाकर उग्र रूप दण्डों में गिरा देते हैं । इस दण्डक्रम की विधायिका तीन शक्तियाँ हैं दण्डनाथा की। एक संकर्षिणी, दूसरी कर्षिणी तथा तीसरी कालसंकर्षिणी है ॥११॥

दण्डनाथाज्ञा कर्त्र्यस्तु मुख्यास्तिस्त्रो हिशक्तयः ॥
तासां सन्तिच प्रत्येकं शक्तयः कोटि कोटिशः ॥12॥

दण्डनाथा की आज्ञा का पालन करने वाली मुख्य रूप से तीन ही शक्तियाँ हैं संकर्षिणी, कर्षिणी और काल संकर्षिणी इन तीनों की प्रत्येक की करोड़ों की संख्या में शक्तियाँ हैं ॥१२॥

करालवक्त्रा भीमाङ्गा विकृतस्वरमण्डलाः ॥
उपास्तिमार्गसंमूढ़ानपराधपरान् जनान् ॥13॥

भगवती दण्डनाथा जो दण्डविधात्री हैं श्रीविद्याक्षेत्र में उन दण्डनाथा की पूर्वोक्त तीन प्रमुख शक्तियों (संकर्षिणी,कर्षिणी और कालसंकर्षिणी) की करोड़ों शक्तियाँ हैं, उन शक्तियों का करालमुख है, वे भयानक अंगों वाली हैं, उनका स्वरमण्डल विकृत है अर्थात् कर्णकटुस्वर बिजली सी कड़कती आवाज जैसी ध्वनिवाली हैं,वे शक्तियाँ उपासनामार्ग में संमूढ अर्थात् केवल पढ़कर या सुनकर या आराधकों को देखकर त्रिपुरामाहात्म्य सुनकर,पढ़कर निर्वाह का लक्ष्य बनाकर किसी प्रकार मंत्र प्राप्त करके उन नियमों का पालन न करने वाले तथा मनःकल्पित प्रेरणा से मनःकल्पित आस्था से अभिभावित होने वाले शिष्यम्मन्यों को - ॥१३॥

योजयन्त्युक्तदुःखेषु स्थानेषु परमातृकाः ॥
एवं दण्डेन संशोध्य ततः कर्मानुसारिणीम् ॥14॥

इस प्रकार छद्मशिष्यम्मन्यों को वे परमातृका अर्थात् योगिनियाँ दण्डविधात्री किरणरूपा अनेक कहे गए दुःखमय स्थानों में जोड़ देती हैं,

अर्थात् उन छद्म शिष्य-प्रायों को जीवनपद्धति में साधारण जनों जैसी विचारधारा प्रवृत्तियों में जोड़ देती हैं, तथा उनकी सुसंस्कृत दिनचर्या नहीं रहती है, वे केवल भोग विलासादि में, मोह-ममता आदि में पड़े रहकर अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्व, भारतभूमि में जन्म, उत्तमगुरु सम्प्राप्ति तथा अनेक जन्मपुण्यफल-परिणामभूत श्रीविद्यामन्त्र का वर्तमान जीवन में लाभ नहीं ले पाते, शरीरान्त बाद भी सद्गति से रहित रहे आते हैं, इस दण्डविधान से वे शक्तियाँ ऐसे प्राणियों को दण्डों द्वारा संशोधित कर कर्मानुसार गति में नियुक्त करती हैं ॥१४॥

योजयन्ति गतिं तेषु दण्डनाथाज्ञया पराः ॥
तस्मात्तदुक्तदण्डभीत्या यथोक्ताचरणोद्यतः ॥15॥

श्री दत्तगुरुवर्य ने परशुराम को भगवती त्रिपुरा की दण्डविधात्री भगवती दण्डनाथा जो भगवती की सेनानायिका हैं, उन दण्डनाथा के आदेश से उनकी कोटिशः पराशक्तियाँ दण्ड से शुद्ध हुए मिश्रोपासकों को उनकी योग्यता तथा उनके कर्मानुसार गति देती हैं । इस कारण हे भार्गव ! श्रीविद्योपासक को कहे गए दण्डों के भय से जो श्रीगुरु द्वारा नियम उपदिष्ट हों उनका आचरण करने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये,क्रियालोप नहीं होने देना चाहिए ॥१५॥

भक्तिश्रद्धासमोपेतः कुर्यादेतदुपासनम् ॥
यथोक्तोपासनपरान् देहपातादनन्तरम् ॥16॥

इसी लिये पतन के भय से तथा दण्ड के भय से और गुरुकृपा तथा इष्टकृपा एवं मन्त्र की कृपा का महत्त्व समझते हुए भक्ति एवं श्रद्धा से सम्यक् निस्संदिग्धरूप से सुदृढ़चित्त होकर इस उपासना को करे । (योगदर्शन में- सतुदीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः कहा गया है । वह साधक साधना करते हुए देहपात के अनन्तर उस

साधक को भगवती की सांचिव्य पद सम्भालने वाली शक्ति मन्त्रिणी श्यामलाम्बा की शक्तियाँ अपने नियन्त्रण में ले लेती हैं - यथा -

मन्त्रिणीशासनपराः शक्तयः स्वगणैर्युताः ॥
विविधेषु विमानेषु दिव्यदेहयुतांस्तु तान् ॥17॥

भगवती त्रिपुराललिताम्बा की सचिव (आप्तकार्यदर्शी) श्यामलाम्बा के शासनान्तर्गत रहने वाली शक्तियाँ जो सौम्य मधुर श्रीविग्रह वाली हैं,क्योंकि वे संगीतमातृका की शक्तियाँ हैं ।

दण्डविधान सौम्य नहीं होता,भय दण्ड से ही सम्बद्ध होता है और उक्ति भी है "बिनुभय होहि न प्रीति" दण्ड से शुद्ध साधक सौम्यक्षेत्र में जाता है वहाँ ये सौम्य शक्तियाँ उस दिव्यदेह प्राप्त साधक को विविध विमानों में बिठाकर श्रीपुर ले जाती हैं ॥१७॥- यथा -

सन्निवेश्य महाभोगैर्नयन्ति श्रीपुरं जवात् ॥
तान् पूजयन्ति मार्गेषु देवगन्धर्वकिन्नराः ॥18॥

भगवती श्यामलाम्बा की शक्तियाँ उस साधक को अलौकिक भोगों से सम्पन्न करके बाद में उसे श्रीपुर की ओर वेग से ले जाती हैं। मार्ग में उसका सम्मान पूजा आदि देव,गन्धर्व,किन्नरादि दिव्यशक्तियाँ करती हैं ॥ १८॥

सिद्धाद्याः स्तुतिभिर्नानाविधाभिः संस्तुत्य सर्वतः ॥
तदुपासनतुल्ये तत्स्थाने संवेशयन्त्यपि ॥19॥

सिद्धादि समस्त सिद्ध देवजातियाँ सभी ओर से उस साधक की अनेक प्रकारों से स्तुतियों से सम्मानित करके स्तुतियाँ करके उपचारों से पूजा करके फिर वे शक्तियाँ स्वामिनी के निर्देश से उस साधक की उपासना के स्तर के अनुसार यथोचित स्थान में अवस्थित कर देती हैं, आगे के श्लोकों में सुस्पष्ट श्री गुरु करेंगे- यथा -

त्रिपुरोपासककुले ये जाताः केवलं नराः ॥
उपासना विरहितास्तेऽपि तत्र प्रयान्ति वै ॥20॥

परशुराम! इस अमोघ सर्वोत्कृष्ट श्रीविद्या का सर्वातिशायी प्रभाव तुम ध्यान से सुनो मूलरहस्य यह है कि परमकारुणिका भगवती का अनुग्रह इतना है कि जिस त्रिपुरोपासक के कुल में जन्म लिया हुआ मनुष्य यदि त्रिपुरोपासना से विरहित भी हो जाय तो भी निश्चित ही वे शक्तियाँ उसे भी वहीं ले जाती हैं जहाँ उसका पूर्वज त्रिपुरोपासना करके गया हुआ है। इसमें अर्थवाद नहीं मानना चाहिये,क्योंकि यह शक्ति-त्रिपुरा है । यदि वह मनुष्य बहिमुर्खता में ओतप्रोत है,तो भी वह उसी विश्वरूपिणी तथा पिण्डव्यापिनीत्रिपुरा की अनुग्रह-सीमा से बाहर नहीं है, वह साक्षिरूपिणीशक्ति उस बहिर्मुखप्राणी के हृदय में स्थित है । भले ही वह न जाने परन्तु एक संकेत यहाँ भी है,कि जब उपासनाराहित्य में यह उपलब्धि भगवती की परमकरुणा से प्राप्त होती है,वह आब्रह्मकीटजननी-ल.स.२८५वां मंत्र, पंचकोशान्तरस्थितायैनमः ४२८, अष्टमूर्त्यै नमः-६६२, संसारपंकसमुद्धरणपण्डितायै नमः-८८० आदि इन नाममन्त्रों से भगवती की परमकारुणिकता "कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति" अनुभूतियाँ हैं,यदि आराधना कर ले तो स्वरूप-साक्षात्कार ही निश्चितरूप से हो जायगा यह इंगित श्रीदत्तगुरुवर्य इस पद्य में कर रहे हैं । यही है गुरु की परमकारुणिकता श्रीगुरु की समानता वाला त्रिलोक में भी नहीं मिल सकता ॥२०॥

प्रथमावरणे तेषां महाकालसमीपतः ॥
निवासो दशसाहस्त्रवर्षपर्यन्त कालिकः ॥21॥

जिन्होंने श्रीचक्र के प्रथमावरण अर्थात् भूपुर का आराधन किया

है; उनका महाकाल के क्षेत्र में वास होता है । उस भूपुर का विवरण इस प्रकार है । इसमें तीन चतुरस्र रेखाएँ हैं, चार गोपुर (द्वार) हैं ये आम्नायरूप हैं। तीन रेखाओं में दस अणिमादिशक्तियाँ हैं- ये संख्या में दश हैं- दिशा- चार और विदिशा चार तथा अधः, ऊद्‌र्ध्व भेद से -अणिमा (पश्चिम), लघिमा(उत्तर), महिमा-(पूर्व), ईशित्व (दक्षिण), वशित्व (वायव्य), प्राकाम्य (ईशान), भुक्ति(अग्नि) - इच्छा (नैऋत्य), प्राप्ति (नैऋत्य पश्चिममध्य - अधः), सर्वकामत्व (ईशपूर्व मध्य -ऊद्‌र्ध्व)॥ यह प्रथम रेखा शुक्ल वर्ण की ध्येया है ।

भूपुर की मध्यरेखा की अष्ट दिशाओं में पूर्वादि चार एवं ईशादि चार इनमें पश्चिमक्रम से ब्राह्म्यादि अष्टमातृकाओं का पूजन होता है, वे ब्राह्म्यादि मातृकाएँ इस प्रकार हैं - ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, महालक्ष्मी, ये मातृकाएँ - अक्षोभ्यादि चौंसठयोगिनियों के आठ-आठ अष्टक भेद से इन आठों मातृकाओं में संलग्न होते हैं । यह योगिनी हृदय-पूजा संकेत तृतीय भाग के (१९३-१/२) श्लोक की "अमृतानंद योगी की दीपिकानाम्नी टीका में सुस्पष्ट दिया है- यथा-"त्रैलोक्यमोहन चक्रनिवासिनीनां ब्राह्म्यादीनामंशभूता अक्षोभ्यादि-आद्यश्चतुःषष्टियोगिन्यः, तासां प्रत्येकमंशभूतानां कोटिसंख्याकानां महौजसां महाप्रभावशालिनीनां योगिनीमुक्तलक्षणानां मिलित्वा चतुषष्टिकोट्योयोगिनीनां महौजसाम्। चक्रमेतत्समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते । अष्टाष्टकं तु कर्तव्यं वित्तशाठ्यविवर्जितम् ॥ १९३-१/२ - त्वमेव तासां रूपेण क्रीडसे विश्वमोहिनी १/२-१९४) यह संवाद देवी भैरव-महाकाल का है । योगिनीहृदय ग्रन्थ में इसी वर्णन में श्रीभास्करराय ने सेतुबंध "टीका में लिखा है कि अष्टाष्टकं नाम मिथुन भोजनात्मकः" (इस उक्ति का

प्रमाण -सहस्त्रनाम त्रिशती स्तोत्र माहात्म्य में गूढ़ संकेत में दिया गया इसे श्री गुरुमुख से ही जानना चाहिये) । श्री परमहंसी आश्रम में तथा कोन्नगर-राजराजेश्वरी मन्दिर(हुगली-कोलकाता -पं.बं.) में पूज्य शंकराचार्यजी ने अक्षोभ्यादि चौंसठ-योगिनियों की स्थापना की है तथा उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठ (जोशीमठ) में भी स्थापना की है ।

अष्टमातृकाओं का दिशाक्रम इस प्रकार है । ब्राह्मीमातृका योगिनी प्रथम अष्टक और भैरव सहित पश्चिम में। माहेश्वरीमातृका द्वितीयाष्टक योगिनी और भैरव सहित उत्तर में । कौमारीमातृका तृतीयाष्टक योगिनी और भैरवसहित पूर्व में । वैष्णवीमातृका चतुर्थाष्टक योगिनी भैरवसहित दक्षिण में, वाराहीमातृका पञ्चमाष्टक योगिनी भैरव सहित वायव्यकोण में,माहेश्वरीमातृका षष्ठाष्टकयोगिनी और भैरवसहित ईशानकोण में । चामुण्डामातृका सप्तमाष्टकयोगिनी और भैरवसहित आग्नेयकोण में । महालक्ष्मीमातृका अष्टमाष्टक योगिनी और भैरवसहित नैऋत्यकोण में ।

भूपुर की तृतीयरेखा में प्रथमरेखा के समान दशों दिशाओं में दस मुद्राओं की पूजा-दशमुद्राओं के नाम इस प्रकार हैं - संक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणीमुद्रा, सर्ववशंकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहाङ्कुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीजा, सर्वयोनि,एवं सर्वत्रिखण्डा इनका पूजन, चिन्तन होता है ।

पूर्वोक्त श्लोकों में श्री दत्त गुरुवर्य ने परशुरामजी से उपदेश में कहा था कि दण्डनाथा की शक्तियों के दण्ड से शुद्धसाधकों को भगवती दण्डनाथा भगवती मन्त्रनाथा (मन्त्रिणी,श्यामलाम्बा) को सौंप देती हैं । भगवती मन्त्रिणी की शक्तियाँ उस साधक को जिसने पुनः गुरु के निर्देश से भगवती की त्रिपुरा की आराधना किया है; उसके कुल में उपासना से विरहितप्राणी भी उस क्षेत्र में

जाते हैं । उस क्षेत्र का परिचय गत बीसवें श्लोक में दिया है,कि त्रिपुरोपासक के उपासना विरहित की श्रीक्षेत्र श्रीचक्रनगर के प्रथम आरम्भ होने वाले आवरण में उन महाकाल (भैरव) के क्षेत्र में दस सहस्र वर्षों तक (यह कालसीमा मानववर्षों की नहीं अपितु श्री क्षेत्र की है, वहाँ निवास करता है॥२१॥

बालादिमन्त्रमात्रा ये दीक्षया रहिता जनाः ॥
स्वदेवतायाः स्थाने ते निवसन्त्युक्तकालतः ॥22॥

जिन्होंने बाला आदि के मन्त्रों की साधना की है परन्तु दीक्षा संस्कार से रहित है, वे भी अपनी-अपनी देवता के क्षेत्र (लोक) में दसहजार वर्षों तक निवास करते हैं ॥२२॥

तत्तद्दीक्षायुता ये तु यथोक्तोपासने रताः ॥
स्वदेवतासमीपे ते निवसन्त्युक्तकालतः ॥23॥

उन-उन देवों की दीक्षा से युक्त साधक दीक्षामन्त्रानुसार उपासना में संलग्न रहते हैं उन साधकों को अपने इष्टदेवता के निकट रहने का अर्थात् उनको उस देवता के सामीप्य नामक मोक्ष की प्राप्ति होती है - दस हजार वर्ष पर्यन्त ॥२३॥

त्रिपुरां तिथिवर्णां ये उपासन्ते यथाविधि ॥
आनन्दवापिकातीरे निवसन्त्युक्तकालतः ॥24॥

पञ्चदशी मन्त्रमयी त्रिपुरा भगवती के विधि के अनुसार विधि का अतिक्रमण मनमानी न करके जिन्होंने आराधना की है, वे श्रीचक्र नगर की आनन्दवापी (बावली) के किनारे दसहजार वर्षों तक निवास करते हैं ॥२४॥

ये दीक्षया युताः पञ्चदश्याः सम्यगुपासकाः ॥
शृङ्गारपरिखस्यान्तर्निवसन्त्युक्तकालतः ॥25॥

साधक पञ्चदशीमन्त्र की श्रीगुरुमुख से दीक्षा प्राप्त होने के पश्चात् पद्धति के नियमानुसार मर्यादितढंग से मनोयोग से दृढ़चित्त से उपासना करने के अनन्तर श्रीचक्रनगर की शृङ्गारपरिखा के भीतर दसहजार वर्षों तक निवास करते हैं ॥२५॥

ये षोडशीमनुप्राप्ता दीक्षोक्तेनैववर्त्मना ॥
महापद्मवने ते वै निवसन्त्युक्तकालतः ॥26॥

जिन सौभाग्यशाली साधकों ने श्रीगुरुवर्य से षोडशीमन्त्र की दीक्षा प्राप्त कर ली है और दीक्षा में निर्दिष्ट मार्गानुसार ही आराधना की है,तो वे निश्चित महापद्मवन के मध्य ही दसहजार वर्षों तक निवास करते हैं ॥२६॥

आम्नायदीक्षां ये प्राप्ताः षोडशी सहितां तु ते ॥
चिन्तामणिगृहप्रान्ते निवसन्त्युक्तकालतः ॥27॥

जिन साधकों ने षोडशीमहामन्त्र के साथ आम्नाय (षडाम्नाय) दीक्षा प्राप्त किया है श्री गुरुवर्य से वे चिन्तामणिगृह (भगवती का निवास) की परिधि के निकट दसहजार वर्षों तक निवास करते हैं॥२७॥

ये सङ्गताः पूर्णदीक्षां श्रीमहापादुकायुताम् ॥
महाश्रीषोडशीयुक्तां सर्वाम्नायसमन्विताम् ॥28॥

जो साधक भगवती के अनुग्रह से अनेक जन्मसंसाधित आराधना के कारण श्रीगुरु के परमसर्वकारणभूत करुणापूर्णअनुग्रह से वर्तमान जन्म में समस्त आम्नायों से (श्री विद्या में षडाम्नाय) समन्वित महाषोड़शीसंयुक्त श्रीमहापादुका से युक्त पूर्णदीक्षा (पूर्णाभिषेक दीक्षा) से संगत हैं - अर्थात् हृदय में और बाह्य चिन्तनादि आराधनाओं से संगत हैं ॥२८॥

ते यथेच्छं श्रीपुरे वै निवसन्ति स्वतन्त्रतः ॥
दीक्षावतां तदन्ते तु महागुरुभिरीरितम् ॥29॥

वे सौभाग्यशालीसाधक श्रीपुर में यथेच्छकाल तक निर्बन्ध होकर निवास करते हैं । उन साधकों को श्रीमहागुरु (सद्गुरु-तत्त्वदर्शी,-शक्तिपात क्षमतासम्पन्न) वर्य के द्वारा उपदिष्ट दीक्षा शक्ति को प्राप्त किए हुए वे अन्त में तो ॥३९॥ अग्रिम श्लोक में इसका सम्बन्ध है।-यथा-

ज्ञानं प्राप्य भवेन्मुक्तिः पुनरावृत्ति वर्जिता ॥
ये दीक्षया विहीनास्तु ते देहान्ते पुनर्भुवि ॥30॥

श्रीसद्गुरु भगवान् श्रीदत्तजी परशुरामजी से समस्तमन्त्रों के शिरोमणि महामन्त्र पञ्चदशी मूलविद्या के विभिन्न प्रकारों एवं श्रीचक्र के नवों आवरणों के विषय में बता रहे हैं, कि जो साधक अपनी स्वेच्छया गुरुवर्य से दीक्षित होकर भूपुर से लेकर अंतिम त्रिकोण तथा बिन्दुचक्र में किसी एक की आराधना करता है उसके फलस्वरूप मरकतादि प्राकारों के क्षेत्र में निवास करते हुए क्रमशः बोध के उदित होने पर योग्यता पात्रता के विकसित होने से क्रमान्मुक्तिक्रम से जब सर्वाम्नायसमन्वित महाश्रीषोडशीयुक्त श्री महापादुकायुत पूर्णदीक्षा से दीक्षित होकर परिणामतः स्वेच्छया बिना अवरोध तथा बिना बन्धन के निवास के पूर्व,वर्तमान-जन्म में उसके अन्तःकरण में अपरोक्षानुभूति ब्रह्मात्मैक्यात्मिका के उदित होने पर पुनरावृत्तिवर्जित अर्थात् पुनर्जन्म, मरण, भेदबुद्धि, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, देहात्मबुद्धि आदि सांसारिक असद्भावों का बाध हो जाता है । इसमें भी क्रमशः मुक्ति, विदेहमुक्ति या जीवन्मुक्ति प्राप्त हो जाती है; क्योंकि यह विद्या स्वरूपतः, तत्त्वतः लक्ष्यार्थात्मक है

"कामेश्वर-ब्रह्मविद्या" इस त्रिशती स्तोत्र-नाम-मन्त्र का शाङ्करभाष्य इस प्रकार है" -"**कामेश्वरस्य तत्त्वं पदार्थसाक्षात्कारभूतेत्यर्थः । यः साक्षाद-परोक्षाद्ब्रह्म**"(बृहदा० ३/४) इति श्रुतेः । अस्तु आगे श्री गुरुवर्य ने निराश न करते हुए कहा, कि जो किन्हीं ज्ञाताज्ञातकारणों से इस दीक्षा से विरहित होते हैं वे देहान्त के बाद पुनः जन्म लेकर मुक्तिलाभ प्राप्त करते हैं-इसका विवरण अग्रिमश्लोक में यथा -

उपासककुले भूत्वा दीक्षां प्राप्य यथाक्रमम् ॥
भवन्ति मुक्ताः प्रागुक्तमार्गेणैव भृगूद्वह ॥31॥

देहान्त के पूर्व वे मनुष्य त्रिपुरोपासककुल में रहकर भी दीक्षा रहित रह जाते हैं; उनका भी कल्याण भगवती की करुणा से हो जाता है। अग्रिमजन्म में भी अवसर मिलता है । (पूर्व श्लोक -२०वाँ) इसके आगे भगवती की परमकरुणा का परिचय श्रीसद्गुरु श्री दत्तजी ने दिया, कि वह मनुष्य यदि दीक्षा से विहीन रहता है, तो वह जिस कुल में जन्मा है, वहाँ तो भगवती की कृपा अदृश्यरूप से कुलपर्यन्त बनी रहती है । उसके प्रभाव से वह मनुष्य देहान्तर में उपासककुल में जन्म प्राप्त करके यथाक्रम दीक्षासंस्कार प्राप्त कर श्रीसद्गुरु के अनुग्रह से पूर्व में कहे गये मार्ग से ही मुक्त होता हैं ॥३१॥

दीक्षास्तु विविधाः प्रोक्तास्तन्त्रभेदेषु तत्र तु ॥
पूर्णदीक्षा प्रधाना तु नान्या तत्सदृशी भवेत् ॥32॥

अनेकविध तन्त्रशास्त्र हैं,इस विषय में श्रीदत्तभगवान ने कहा कि, उन-उन तन्त्रों में दीक्षा के प्रकार भी उन्हीं उन्हीं के अनुसार हैं । पूर्ण दीक्षा उन दीक्षाओं में प्रधान होती है । इसकी तुलना में अन्य दीक्षाएँ नहीं हो सकतीं ॥ स्मरणीय है कि -आचार्यों ने चतुःषष्टि तन्त्र भेदों का वर्णन किया है - इस विषय में श्री दत्त

गुरुवर्य ने जो संकेत किया है -"पूर्णदीक्षाप्रधाना तु नान्यातत्सदृशी भवेत् ०" इसी का संकेत पू. आद्य शं. जी ने सौ.ल. के ३१वें श्लोक में कहा है, कि "चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनम्", स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैःपशुपतिः।। पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिल-पुरुषार्थैकघटना, स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ।।३१।। इस पर श्री लक्ष्मीधर का व्याख्यान ....."अखिलपुरुषार्थैकघटनास्वतन्त्रं अखिलानां पुरुषार्थानां मुख्यत्वेन" इस विषय में एक अतिप्रसिद्ध उक्ति है - यत्रास्तिभोगो नहि तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः । श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।। कुलार्णव के १४ वें उल्लास में भेद बताये गये हैं -

इसके अतिरिक्त जो मन्त्रोपदेश में प्रारम्भिक रूप में जो यह कहा जाता है - दीक्षा के भेद क्रियावर्णकलास्पर्शवाग्दृङ्मानससंज्ञया। दीक्षामोक्षप्रदा देवि सप्तधा परिकीर्तिता ।।३९।। समयाख्या विशेषा च साधिका पुत्रिकाह्वया वेधका पूर्णसंज्ञाचार्चायानिर्वाणसंज्ञिका ।।४०।। पूर्णदीक्षा का रूप पिछले २८वें श्लोक में श्री दत्तगुरुवर्य ने दिया है ।।३२।।

सर्वस्मादुत्तमं तत्तु यत्प्रोक्तं श्री पुराभिधम् ।।
तत्रस्वतन्त्रवासोऽस्य भवेद्यावदिहेप्सितम् ।।33।।

श्री गुरुवर्य ने कहा था, कि पूर्णदीक्षा से दीक्षित साधक श्रीपुर में स्वतन्त्रता से रहता है, उसे कोई कालावधि नहीं रहती, यह जो हमने तुमसे कहा है, वही सर्वोत्तमा दीक्षा है, यह अनन्तकोटिजन्मार्जित पुण्य से प्राप्त सद्गुरु की हृदय में समुद्भूत करुणा कृपा से ही सम्भव है पर श्रीगुरु स्वयं ही अन्तःकरणप्रवृत्ति से पूर्णदीक्षा दे दें तब ।।३३।।

ऋतुप्राकारमारभ्य चिन्तामणिगृहावधि ॥
निवसेत् स्वातन्त्र्ययोगान्न रोधस्तस्य विद्यते ॥ 34॥

श्री गुरुवर्य ने जो पूर्व में कहा था, कि "ये सङ्गताः पूर्णदीक्षां श्रीमहापादुकायुताम् ॥ महाश्रीपादुकां युक्तां सर्वाम्नायसमन्विताम् ॥२८॥ इसका फल भी अगले श्लोक में उन्होंने सुस्पष्ट किया, तथा ज्ञानोदय हो जाने पर साधक की पुनरावृत्तिरहित मुक्ति होती है इसके आगे भी उस साधक का स्वरूप व्यक्त किया है - इस ३४वें श्लोक में वह साधक ऋतु प्राकारों से आरम्भकर बिन्दुचक्र तक चिन्ता मणिगृह की परिधिपर्यन्त तक स्वतन्त्रता से निर्बन्ध हो जब तक इच्छा हो निवास करता है इससे यह ध्वनित होता है, वह साधक कालोत्तीर्ण हो जाता है। भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरी की इच्छा शक्ति,ज्ञानशक्ति,क्रियाशक्ति सम्पन्न हो जाता है, अर्थात् तादात्म्यभाव से सामरस्यभाव में तल्लीन हो जाता है - भगवान् आद्यशङ्कराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी में जो कहा है - वे साधना में प्रेरक हैं यथा - विशेष संकेत यह स्फुरित होता है हृदय में कि- जो "चिन्तामणि गृहावधि" शब्द श्रीगुरुवर्य ने परशुरामजी को बताया वह इस पद्य में श्री मदाद्यशङ्कराचार्य प्रार्थना के माध्यम से कह रहे हैं- सुधासिन्धोर्मध्येसुरविटपिवाटीपरिवृते, मणिद्वीपेनीपोपवनवतिचिन्तामणिगृहे। शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां । भजन्तित्वां धन्याःकतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥ सौ.ल.८॥ इसी प्रकार त्रिशतीस्तोत्र में भगवान् हयग्रीव महाविष्णु ने अगस्त्यजी से माहात्म्य में कहा कि -

चतुर्भिश्शिवचक्रैश्चशक्तिचक्रैश्चपञ्चभिः । नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥ ७०॥ आगे भी उन्होंने कहा कि - त्रिकोणे वैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् । दशारयोः षोडशारं भूपुरं भुवनास्त्रके। शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम् ॥ ७३॥ अविनाभाव

सम्बन्धं यो जानाति सचक्रवित् ॥ त्रिकोणरूपिणी शक्तिर्बिन्दुरूपश्शिवः-स्मृतः ॥७४॥ भगवान् शिव ने भी भगवती पार्वतीजी से उनके द्वारा जिज्ञासा करने पर कहा, कि श्रीगुरोः पादुकामूर्ध्नि श्रीचक्रं हृदिदेवता । श्रीविद्या यस्य जिह्वाग्रे स साक्षात्परमः शिवः ॥१०४॥ और सहस्रारसुधाक्लृप्तषडम्भोरुहमण्डलः ॥ आचन्द्रतारकस्थायिनिज-वंशयशोज्ज्वलः ॥१०५॥ श्रीचक्रदेवी श्रीनाथस्वात्मनामैक्यमामृशन्। त्रैलोक्यमरुणं ध्यात्वा श्रीविद्यां यो जपेत्सुधीः ॥१०६। - स योगी कृतकृत्यश्च चराचरविभुर्भवेत् सृष्टिस्थितिलयादीनां कृत्याकृत्यविभञ्जकः॥१०७॥ जङ्गमस्थावरोद्भूत विषविद्रावकोविदः। दिव्यमङ्गलकल्याणगुणरत्नैर-लङ्कृतः ॥ ये सभी उक्तियाँ पूर्णदीक्षा साङ्गोपाङ्गरूप में श्रीगुरु द्वारा दीक्षित होने पर साधक पर चरितार्थ होती है ॥ ३४॥ परन्तु इसके लिये उन्होंने परशुरामजी से यह कहा कि-

तथापि योग्येषु च वै क्रममेतं प्रवर्तयेत् ॥
देहान्ते शिवसंस्कारसंस्कृतो वा भवेत्तु सः ॥35॥

श्रीदत्तगुरुवर्य ने योग्यता और संस्कार को अनिवार्य बताया उन्होंने कहा भार्गव! इतना अलौकिक लोकोत्तर प्रभाव श्रीचक्राराधन का बताया पर उन्होंने आगे यह कहा कि- तथापि -इतना परिणाम होता है, परन्तु योग्य-शिष्य साधकों में ही इस उपासनाक्रम का प्रवर्तन करना चाहिये अथवा देहान्त के बाद शिव-संस्कारों से वह संस्कृत हो तब श्रीचक्र का क्रम का प्रवर्तन करें- अन्यथा वह जो शास्त्रों में परिणाम कहे गये हैं, उनकी प्राप्ति नहीं होगी अपितु अनिष्ट होगा ॥३५॥

चक्रराजं स्थापयेद्वा दद्याद्वा विदुषे क्रमात् ॥
स वसेच्चक्रराजान्तर्गतगुरुमण्डलमध्यतः ॥36॥

श्रीचक्रराज की समाजहित की दृष्टि से मन्दिर में कुलपरम्परा की रक्षा के लिये घर में स्थापना करें अथवा सुयोग्य अधिकारी तथा चक्रराज के ज्ञात विद्वान् को चक्रराज की महत्ता को श्रीगुरुमुख से जानने वाला साधक विधिपूर्वक प्रदान करे - इसका सुस्पष्ट वर्णन त्रिशती-माहात्म्य के उत्तरार्ध में श्रीहयग्रीव द्वारा श्री अगस्त्यजी के सामने किया गया है ॥३६॥ यथा-

एवं विभागमज्ञात्वा श्रीचक्रं यस्समर्चयेत् ॥75॥
न तत्फलमवाप्नोति ललिताम्बा न तुष्यति ॥
ये च जानन्ति लोकेऽस्मिन् श्रीविद्याचक्रवेदिनः ॥76॥
सामान्यवेदिनस्ते वै विशेषज्ञोऽतिदुर्लभः ॥
स्वयं विद्या विशेषज्ञो विशेषज्ञं समर्चयेत् ॥77॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं श्रीविद्याचक्रवेदिना ॥
अन्धंतमः प्रविशन्ति ये ह्यविद्यामुपासते ॥78॥
इति श्रुतिरपाहैतानविद्योपासकान् पुनः ॥
विद्यानुपासकानेव निन्दत्यारुणिकी श्रुतिः ॥79॥

(इन श्लोकों का हिन्दी में अर्थ द्वारकामठ से प्रकाशित ललिता त्रिशती शाङ्करभाष्यम् में सुस्पष्टरूप से लिखा गया है, जिज्ञासा शान्ति के लिये पढ़ें) -

यस्त्वागमोक्तविज्ञानयुतः पूर्णाशयो महान् ॥
स भेदयति ब्रह्माण्डान्यनेकान्यपि सत्वरम् ॥37॥

भगवान् श्रीदत्त परशुरामजी से बोले जामदग्न्य! जो साधक सौभाग्य से श्रीगुरु की एवं माँ भगवती की करुणापूर्णकृपा से निगम के सारभूत आगमों में विशेषकर "स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्" इस श्रीतन्त्र के मिश्रविधानों से श्रीचक्र

की प्रतिष्ठा एवं नवावरण पूजा करने पूर्णदीक्षासौभाग्य से सौभाग्य सम्पन्न वह सर्वातिशयीसाधक शीघ्रतया एक ब्रह्माण्ड की क्या कथा, वह विभुभावभावित होकर अनेकों ब्रह्माण्डों का भी अतिक्रमण कर लेता है, क्योंकि उसका अनन्तकोटिब्रह्माण्डजननी से तादात्म्य हो गया है ॥३७॥

ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु श्रीपुरं विद्यते पृथक् ॥
सर्वत्रायं व्रजेन्नास्य प्रतिरोधो भवेत् क्वचित् ॥38॥

समस्त ब्रह्माण्डों में श्रीपुर की सत्ता सभी से अलग ही विद्यमान है । उस श्रीपुर में निवासार्थी बिन्दुसाधक को कहीं भी प्रतिरोध नहीं है । वह पञ्चकृत्यकारणकार्यों की सीमाओं को पार कर चुका है, वह सर्वत्र ब्रह्माण्डों के भीतर बाहर एक से दूसरे ब्रह्माण्ड में बिना बाधा के आ जा सकता है, कहीं भी उन-उन ब्रह्माण्डों की अनन्तशक्तियाँ उसका प्रतिरोध नहीं करेंगी ॥३८॥

ब्रह्माण्डानां बहिश्चोर्द्ध्वे यत्प्रोक्तं श्रीपुरं पुरा ॥
तत्राप्येष व्रजेदेव नास्त्यस्य गतिरोधनम् ॥39॥

समस्त ब्रह्माण्डों के बाहर अर्थात् सीमा से ऊपर श्रीपुर विद्यमान है, यह जो कहा वहाँ भी ब्रह्माण्डों के भीतर ब्रह्मलोक तक, पाताल से आरम्भ हुआ वह तत्त्व ब्रह्मलोक के (अन्तर्गत) तथा बहिर्गत स्थानों में भी निर्बाध जाता है, उसके लिये बाह्यक्षेत्र में भी देव शक्तियों की अन्तरिक्ष-बाधा का सामना नहीं करना पड़ेगा ॥३९॥

जलादितत्त्व संस्थानि यान्युक्तानि शिवागमे ॥
भुवनानि तेषु चायं व्रजेदप्रतिरोधनम् ॥40॥

शिवागम में कहे गये जितने भी जल,तेज,वायु आदि तत्त्व संस्था है,उनके जो भुवनादि हैं, उनमें भी यह साधक जावेगा तो

वहाँ भी प्रतिरोध नहीं होगा ॥४०॥

तं दृष्ट्वा विधिविष्णवाद्याआसनेभ्यश्चलन्ति वै ॥
बिन्दुचक्रस्योपरि च गन्तुमीष्टे स योगिराट् ॥41॥

श्रीभगवान् दत्तात्रेय परशुरामजी से श्रीविद्या की पूर्णदीक्षा सम्पन्न साधक की अव्याहतगति एवं उसके तेजस्वीमन्त्र सामर्थ्य के विषय में बता रहे हैं, कि उस साङ्गोपाङ्ग पूर्णदीक्षा सम्पन्न श्रीविद्योपासक को देखकर ब्रह्मा सृष्टिकर्ता के देवता तथा विष्णु स्थितिकृत्य के देवता आदि अर्थात् रुद्र संहृतिकृत्य के देवता तथा इन्द्रादिलोकपाल,दशदिग्पाल समस्तदेवतागण अपने-अपने आसन से उठ खड़े होते हैं उसका सम्मान करते हैं । वह योगिराट् श्रीविद्योपासक सर्वानन्दमयचक्र;जो त्रिकोण सर्वसिद्धिप्रदचक्र हैं उसके मध्यस्थित बिन्दुचक्र सर्वानन्दमयचक्र के ऊपर जाना चाहता है । यही भगवती का आसन है । सहस्रनाम में नाम आया है "बैन्दवासना" ९०५ बिन्दु के विषय में ज्ञानार्णव में बताया गया है कि -

बिन्दुसमूहं प्रवक्ष्यामि बीजरूपं वरानने । हकारं बिन्दुरूपेण ब्रह्माणं विद्धि पार्वति ॥ सकारं बिन्दुसर्गाभ्यां हरिश्चाहं सुरेश्वरि अविनाभावसम्बन्धो लोके हरिहराविति । अर्थात् वह योगिराट् बिन्दुचक्र के ऊपर उसमें अधिष्ठित होने की इच्छा रखता है ॥४१॥ इसके अभिप्राय और स्पष्टरूप में अगले श्लोक में -

स एव विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा स सदाशिवः ॥
साक्षात्कामेश्वरो वापि त्रिपुरा च भवेद्धि सः ॥42॥

वही बिन्दु आरुरुक्षु योगिराट् विष्णु अर्थात् स्थितिरूपकृत्य का अधिपति, संहृतिरूपकृत्य के शिवभाव में सृष्टिरूपकृत्याधिपतिब्रह्मैक्य-भाव में किंबहुना अनुग्रहात्मकभावाधिपति सदाशिवभाव में आरूढ़

हो जाता है निरन्तर स्थिति की चरमस्थिति में वह साक्षात्कामेश्वर शुद्धनिरुपाधिकब्रह्मप्रकाश और तद्विमर्शरागात्मिकाशक्तित्रिपुरारूप के सामरस्य में प्रतिष्ठित हो जाता है ॥४२॥ अग्रिमश्लोक में एक और कारण यह है कि आत्मा में कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं होता कर्तृत्व,भोक्तृत्व में परत्वधर्म ही होता है - सत्तार्थक होने से आत्मरूप ब्रह्मनिर्देश ही है, तथा इसमें परस्मैपद इसलिए भी नियुक्त है कि स्व-परभेद से है, अत:उपचार से भी परस्मैपद लिया है और स्थूलभौतिकदृष्टि से भी ।

न तस्य हीयते शक्तिः कदाचिद्वापि कुत्रचित् ॥
सर्वं स भवितुं शक्तः सार्वात्म्यं प्राप्तवान् यतः ॥43॥

हे परशुराम! उस पूर्णदीक्षित साधक की अप्रतिरुद्ध अव्याहत गति होने पर उस शक्ति का ह्रास नहीं होता कभी भी और कहीं भी शक्तिहीन नहीं होता, वह श्रीविद्योपासक सभीकुछ होने में समर्थ होता है यदि "भवितुं" शब्द की प्रकृति और प्रत्यय की दृष्टि से चिन्तन करें तो और भी अभिप्राय परिस्फुटित होता है वैयाकरण-पद्धति से पद-पदार्थ का अन्तर्गर्भ अर्थ चिन्तन करें तो कुछ-कुछ अर्थ खुलता है, वैयाकरणपारदृश्वा विद्वान् और भी शास्त्रीय दृष्टि से इस वर्तमानकालिक "भवितुम् " शब्द व्यक्त करा सकते हैं । यहाँ तो सामान्य दृष्टि से अभिप्राय खोजने का प्रयास कर रहे हैं । इस भवितुम् शब्द में "भू" सत्तायाम् धातु है । सत्ता शब्द में भाववाचक तल् प्रत्यय है शक्ति तत्त्व के अभिप्राय से स्त्र्यन्तर्थकलिङ्ग से "सतः भावः सत्ता "सत् " शब्द ब्रह्म का वाचक है । "ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधःस्मृतः" (गीता) सत्ताशब्द आत्मधारणम् का द्योतक है अर्थात् -स्वरूपेणावस्थानम् तात्पर्य है सत्ताशब्द का इस अर्थ में "भू" धातु है यह व्याहृति

भी है । शाब्दिक प्रयोग में यह धातु परस्मैपद में ही प्रयुक्त होती है आत्मनेपद में नहीं; क्योंकि यह कर्तृविवक्षा में ही प्रयुक्त होता है, इसलिये परस्मैपद ही में है । सुगुप्त निर्देश यह है कि सत्ताशब्द का आत्मधारण सत्ता माना जाता है । ब्रह्मवाचक कहने से उसमें "भू"धातु का प्रयोग भावार्थक होने से अन्तर्निष्ठ ब्रह्मसत्ता से संयुक्त होता है, इसमें जो तुमुन्-प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है इसका सूत्र है "कालसमयवेलासुतुमुन् " (३/३/१६७) इस सूत्र में कालार्थ उपपद में समय और वेला इन कालखण्डों में तुमुन् प्रत्यय होता है । यहाँ काल के विषय में चिन्तन करें तो कालशब्द व्यापक कालसीमा जो कालप्रलय से प्रलयपर्यन्त घटित होता रहता है, जिसमें कल्प, युग का संकेत मिलता है,उसमें यह प्रत्यय(तुमुन्) (दूसरा काल उपपद "समय") वह काल जो पृथिव्यादिपञ्चभूतों को उपचय और अपचय अर्थात् वृद्धि और क्षय स्थिति में लाता है। इस अर्थ में तुमुन् दूसरा काल उपपद "समय" यह मास तथा ऋतु परक भी है । अर्थात् मासान्तर्गत ऋतुएँ उनके भीतर ग्रहों का संचार विषुवरूप में तथा अयनरूप से परिणत होना वह समय उस अर्थ की तुमुन् । तथा वेला - समय के अन्तर्गत और अवान्तर भेद मुहूर्त, घड़ी आदि दिन-रात्रि के मध्य घटित कालांश या समयांश - वेला । यहाँ तक शब्द-लक्ष्य करके सामान्य चिन्तन प्रस्तुत हुआ है । इस शब्द के वाच्यार्थ को लेकर अर्थ यह है कि वह साधक अपनी स्वेच्छा में स्वतन्त्र होता है वह सभी कुछ होने में समर्थ होता है; क्योंकि वह सार्वात्म्यभाव में स्थित हो गया है, "सार्वात्म्य" शब्द की व्युत्पत्ति भी इस प्रकार होगी । "सर्वस्मिन्नात्मास्ति इति सर्वात्मा,सर्वात्मनोर्भावः "सार्वात्म्यम्"। यह सार्वात्म्य उसे तभी मिल जाता है जब वह

सामरस्यभाव में रसास्वादन करने लगता है भगवान् श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी भी सौन्दर्यलहरी में कहते हैं यथा -

सरस्वत्यालक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते ।
रतेः पतिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ॥
चिरं जीवन्नेव क्षपित पशुपाशव्यतिकरः ।
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् ॥99॥

यहाँ जो परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् यह उक्ति रहस्यात्मक है। इसकी परिज्ञप्ति श्रीगुरुमुख से ही हो सकती है । इसी से मिलती जुलती उक्ति आचार्य ने वेदपादस्तव में की है यथा-

त्वत्पादुकानुसन्धान प्राप्तसर्वात्मतादृशि ॥
पूर्णाहंकृतिमत्यस्मिन्नकर्मलिप्यते नरे ॥81॥
पुनश्च- तवानुग्रह निर्भिन्न हृदयग्रन्थिरद्रिजे ॥
स्वात्मत्वेन जगन्मत्वाततो न विजुगुप्सते ॥82॥

इस प्रकार श्रीदत्तगुरुवर्य ने समस्तशास्त्रों का तात्पर्य अन्य आचार्यों की उक्तियों को प्रमाण की पूर्ति करने वाली उक्तियाँ पूर्णदीक्षित के विषय में परशुरामजी से कहा - ॥४३॥

संकोचं सर्वतो हित्वा त्रिपुरारूपमास्थितः ॥
एवमेवज्ञानयोगी साक्षात्सा त्रिपुरैव हि ॥44॥

वह साधक सभी ओर से संकोच त्यागकर त्रिपुरारूप में सभी प्रकारों से स्थित हो जाता है । इस प्रकार वह ज्ञानयोगी साक्षात् त्रिपुरामय ही हो जाता है ।

एवमेतत्प्रसङ्गोक्तमथ पापं ब्रवीमिते ॥
उपासकानां यत्पापमुपास्त्यध्वसमुद्भवम् ॥45॥

भार्गव ! इस प्रकार से मैंने प्रसङ्गानुसार त्रिपुराभगवती एवं

उनके अतिदुर्लभ पञ्चदशीमन्त्र के अलौकिक प्रभाव का वर्णन किया, साथ ही उन भगवती की नियामिका शक्तियाँ दण्डनाथा एवं मन्त्रिणी भगवती के निर्देशानुसार किस प्रकार नियमन करती हैं, उसका वर्णन तुम्हारे सामने किया । अब इसके अनन्तर मैं उन पापों का वर्णन करता हूँ जिनसे उपासनामार्ग में विघ्न उत्पन्न होते हैं । मार्ग में साधनास्तर में उपस्थित होने वाले विघ्न जो प्रगति में बाधक हो जाते हैं, इधर जीवन सीमितकालिक होता है । बाल्यावस्था, मुग्धावस्था, वृद्धावस्था अशक्ति का रूप केवल साधनक्षमता युवावस्था में और उसमें भी वक्ष्यमाणपाप सामने आ जावें तो महतीहानि ही हो जाती है, लौकिकजीवन में भी भौतिकमार्गों में दुर्घटना स्थानों का निर्देश सूचनापट्टों से किया जाता है इसीप्रकार सूक्ष्म उपासनामार्ग में कौन-कौन सी सूक्ष्म बाधाएँ हैं उनसे सावधान रहना अत्यावश्यक है । इसे ही श्रीगुरुवर्य सावधान करते हुए व्यक्त करा रहे हैं ॥ ४५॥ -यथा-

तत्तेवदामि संक्षेपाद्यज्ज्ञात्वा न प्रवर्तते ॥
महापापमष्टविधं सर्वदा ह्यात्मनाशनम् ॥46॥

उन विघ्नरूप महापापों को संक्षेप में नाम संकेतरूप में तुम्हें परिचय दिया जा रहा है । उनका ज्ञान हो जाने पर उन भावों में परिचितसाधक प्रवृत्त नहीं होता,वे महापाप हैं उनकी संख्या आठ है। वे सर्वदा आत्मनाशक ही हैं उनसे सर्वदा सावधान रहना चाहिये अन्यथा दण्डनाथा के कठोरदण्ड का सामना करना पड़ता है ॥४६॥

आद्यं लोभेनासदृशे विद्यायाः प्रतिपादनम् ॥
तथाऽऽगमोक्तद्रव्यादेरिन्द्रियेष्वर्पणं परम् ॥47॥

प्रथम महापाप यह है -लोभ से असमान व्यक्ति में विद्या का

(पञ्चदशी मन्त्रादि का) प्रतिपादन करना । तथा आगमशास्त्र में द्रव्यादि पदार्थों का इन्द्रियों की तृप्त्यर्थ प्रयोग दूसरा महापाप है ॥ ४७॥

अयोग्ये तु तृतीयं स्याद्रहस्यानां प्रकाशनम् ॥
तुर्यं समर्थस्योपासाक्रमसंत्याग ईरितम् ॥48॥

जो अयोग्य है उसके सामने विद्या के रहस्यों को प्रकाशित करना तीसरा महापाप है। जो समर्थ है, वह उपासना के क्रमों का पूरीतरह त्याग करें, यह चतुर्थ महापाप है ॥४८॥

पञ्चमं स्त्रीष्वपकृतिर्गुरौ षष्ठमुदाहृतम् ।
सप्तमं देवतार्चादि प्रतिरोधमुदाहृतम् ॥49॥

पाँचवाँ महापाप स्त्रियों का अपकार और श्रीगुरु का अपकार छठवाँ सातवाँ देवता की अर्चादि में प्रतिरोध करना ॥४९॥

अष्टमं त्वन्यसमतादृष्टिरस्मिन् हि दर्शने ॥
इति प्रोक्तं महापापाष्टकं परमदारुणम् ॥50॥

आठवाँ महापाप वह है ; जो अन्यदर्शनों से इसकी समता करें तथा उनमें और इस दर्शन में कोई विशेषता न समझने का प्रयास करें । इस प्रकार हमने तुम्हारे सामने आठ महापापों का संक्षेप में नाम परिचय करा दिया, ये परमदारुण हैं । प्रथमदृष्टि में साधारण से समझ में आते हैं, पर इनका परिणाम अनपेक्षित सीमारहित होता है ॥५०॥

एकैकस्याप्यस्य कृते भोगस्यान्तो न विद्यते ॥
दण्डनाथा शक्तिगणैर्महादुःखेषु योजितः ॥51॥

इन पूर्वोक्त आठ महापातकों जो श्रीविद्यामन्त्रदीक्षा के मध्य महामन्त्र श्रीगुरु से उपदेश से ले लेने के बाद जो वैचारिक, मानसिक धारणाओं और आचरणों से असावधानी से होते हैं,

इन-उन आठ महापातकों के प्रशमन के लिये जो भोगविधान भगवतीदण्डनाथा के शक्तिगण करते हैं उस महापातकी को उन महादुःखों में संयुक्त कर देते हैं प्रायश्चित्त के लिये । पर उन महापातकों के परिणामस्वरूप उन महादुःखों की कोई सीमा नहीं है ॥५१॥

द्विपरार्धावसानेऽपि नैकस्मादपि मुच्यते ॥
तस्मादुपासको ह्येतत् - वर्जयेद् यत्नमास्थितः ॥52॥

इनकी दुःखभोगों की सीमा ब्रह्मा की दो परार्धों की आयुसीमा के समाप्त हो जाने पर भी एक भी महापातक से मुक्ति नहीं होती। यह श्रीदत्तगुरु ने विशेष चेतावनी दी । इसीलिये उन्होंने कहा कि दीक्षित श्रीविद्योपासक इनसे सावधान रहता हुआ,इन्हें समर्थन न दे। यत्नपूर्वक अपने मन को,वाणी को और चेष्टाओं को मर्यादित रखने के यत्न करते हुए स्थित रहे ॥५२॥

भक्तिश्रद्धामयो भूत्वा शक्त्योक्तं सर्वमाचरन् ॥
साधको न भयं क्वापि विन्देत्कामहतो यदि ॥53॥

इन पातकों से बचे रहने का उपाय उन्होंने बताया,कि परशुराम! दीक्षितसाधक निश्च्छल सुदृढ़भक्ति एवं श्रद्धा परिपूर्ण होकर श्रीगुरु निर्दिष्ट शक्ति द्वारा कहे गए विधानों का सभी का पालन करता हुआ स्थित रहे । यदि कामना पूर्ति न हो तो भी उसे कहीं भी वर्तमान जीवन में या देहान्तर में भी भय नहीं रहेगा । माँ भगवती की कृपा होगी ही। बस उसे प्रयत्न पूर्वक महापातकों से सर्वथा बचे रहना है ॥ ५३॥

यथोक्तोपासनपरः फलं महदवाप्नुयात् ।
सन्तिमार्गसहस्त्राणि देवतोपासनाविधौ ॥ 54।

श्रीगुरुवर्य के निर्देशानुसार तथा उनके द्वारा समर्थित शास्त्रोक्त उपासना पद्धति का निष्ठा से पालन करें तो महान् फल उसे प्राप्त

होगा। देवता की उपासनाविधि में सहस्रों मार्ग हैं । श्रीगुरूपदिष्ट तथा निर्दिष्टमार्ग में ही सुस्थिर रहता हुआ सफल हो सकता है ॥५४॥

देवतानां विभेदेन सम्प्रदायविभेदतः ॥

सर्वं पुण्यैकजननं न सन्देहोऽत्र विद्यते ॥55॥

उपासना पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न देवताओं के भेद से और उन-उन देवताओं की उपासनाविधि का प्रतिपादन करनेवाले गुरुशिष्य परम्परा से प्रकाशित विभिन्न सम्प्रदायों के भेद से अनेकता होने पर भी उन सभी देवों की सम्प्रदायविभिन्नता से अनेकता के विद्यमान रहने पर भी सभी पुण्य की निश्चित ही एकमात्रजनक हैं, इसमें सन्देह बिल्कुल नहीं है ॥ ५५॥

महाफलं यदमृतं भयलेशविवर्जितम् ॥

न स्याच्छ्रीत्रिपुरोपास्तिं हित्वाऽन्येन कदाचन ॥56॥

उपासना का जो अमृतात्मक महान् फल है; जिस फल के प्राप्त होने से भय का लेशमात्र नहीं रह जाता अर्थात् जो महाफल किञ्चिन्मात्र भय के लेश से रहित है

''न स्याच्छ्री त्रिपुरोपास्तिं -: वह फल श्रीत्रिपुरोपासना के त्याग से अन्योपाय से कभी भी नहीं मिलेगा ॥५६॥

अग्रिम श्लोकों में आचार्य विभिन्न देवता, विभिन्न पद्धतियाँ व्यक्त कर रहे हैं -

लोके प्रजापतिः श्रेष्ठो जगत्स्त्रष्टा पितामहः ॥

ततो नारायणः श्रेष्ठो लोकस्थितिविधौ स्थितः ॥57॥

''देवतानां विभेदेन'' इस उक्ति के विशेष अर्थ को सुस्पष्ट श्रीगुरुवर्य कर रहे हैं-यथा- संसार में प्रजापति श्रेष्ठ माने जाते हैं, वे हैं सृष्टि की रचना करनेवाले पितामह है, उससे श्रेष्ठ श्रीनारायण हैं,वे सृष्ट रचना के पोषक हैं (पालक) स्थिति रखने वाले हैं ॥५७॥

ततोऽपि रुद्रो भगवान् श्रेष्ठःसंहारकारकः ॥
न तस्मात्परतः कश्चिदस्ति यः श्रेष्ठतामियात् ॥58॥

ब्रह्मा (पितामह सृष्टिकारक), और विष्णु (स्थितिकारक) इनसे भी श्रेष्ठ भगवान् रुद्र हैं जो सृष्टि के संहार करने वाले हैं । उनसे बढ़कर और कोई नहीं है; जो श्रेष्ठ हो सके । अभिप्राय यह है कि सृष्टि,स्थिति और संहार,ये तीनकृत्य इस जगत् के कारण हैं अतः इनके देवता भी मुख्यकारण हैं । इन तीन कृत्यों में सम्पूर्ण दैवीशक्तियाँ सहायक रूप से उपयुक्त होती हैं अतः इन मूल कृत्यो के देवता सर्वोपरि ही हैं ॥५८॥

ईश्वरास्त्रितयात् श्रेष्ठो यदधीनास्त्रयस्त्विमे ॥
सदाशिवस्ततः श्रेष्ठः सदानुग्रहकारकः ॥59॥

निग्रहशक्ति प्रधान ईश्वर इन तीनों देवों से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ईश्वर के ही निग्रह से ये तीनों निग्रहीत होते हैं अर्थात् सृष्टि में नियन्त्रण,स्थिति में नियन्त्रण तथा संहार में नियन्त्रण होने से कृत्य मर्यादित रहेंगे । ईश्वर से भी श्रेष्ठ सदा अनुग्रह करने वाले सदाशिव हैं अर्थात् जब सभी कृत्य नियन्त्रित रहेंगे तो मूलशक्ति का अनुग्रह होगा । अनुग्रह यही है, कि जीवभाव में व्यष्टि तथा समष्टि में तीनकृत्य प्रमुख होते हैं उन तीनों की आवश्यकता से अधिक वृद्धि न हो तो निग्रह से नियंत्रण इसके बाद मूलतत्त्व की उपलब्धि अनुग्रह है ॥५९॥

न तस्मात्परतः कश्चिदस्ति यः श्रेष्ठतामियात् ॥
लोकनाथा इमे पूज्या नातोऽन्योऽस्ति महेश्वरः ॥
ब्रह्मपञ्चकमेतत्तु नातोऽस्ति परमः क्वचित् ॥60॥

पाँचवें सदाशिव अनुग्रहकारक हैं, उनसे बढ़कर कोई नहीं है; जो उनसे बढ़कर श्रेष्ठ हो सके । पञ्चकृत्यों में अनुग्रह ही अंतिम

स्थिति है पूर्णता के साक्षात्कार होने के लिये, पूर्ववर्णित ये लोकनाथ (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव) सम्पूर्ण विश्व में ये पाँचकृत्य ही हैं । रक्षणादिकार्यों में ये इन कृत्यों के एक मात्र अधिकारी हैं अतः इनसे अधिक कोई भी देवता महेश्वरत्व नहीं पा सकता अपितु इनकी सीमा के भीतर ही रहना पड़ता है। इन्हीं पाँचों को ब्रह्मपञ्चक कहा जाता है ललितासहस्रनाम में भगवती का एक नाम है - (पञ्च ब्रह्मासनस्थितायै नमः -५८) । इन पाँच ब्रह्मतत्त्वों से आगे कोई श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि ये ही विश्व के अंतिम मूलतत्त्व हैं ।।६०।।

वेदाः पुराणं स्मृतय इतिहासश्च पञ्चमम् ।।
एतावदाह नैतस्मादधिकं विद्यते क्वचित् ।।61।।

साङ्गोपाङ्ग, समस्तशाखाओं सहित चारों वेद, अष्टादश-पुराण और उपपुराण, चौबीस-स्मृत्यादि स्मृति, धर्मशास्त्र, इतिहास- महाभारत-आदिकाव्य रामायण और पाँचवाँ सम्पूर्ण आगमशास्त्र, (समस्त तन्त्रग्रन्थ) इन सभी में यही पाँचकृत्य और उनके पाँच ब्रह्म कहे गये हैं, इनसे अधिक छठाकृत्य कहीं भी नहीं कहा गया है ।।६१।।

ईशः सदाशिवश्चेति द्वयमागमसंस्थितम् ।।
पूज्या महेश्वरा एते देवदेवा न चेतरे ।।62।।

ईश्वर निग्रहकृत्य के अधिष्ठाता और सदाशिव अनुग्रहकृत्याधिष्ठाता ये दोनों ही आगम में संस्थित हैं, ये महेश्वर हैं, पूज्य हैं और इनके अतिरिक्त और कोई अन्य नहीं । देवों के भी ये देव हैं । इनके हीं अन्तर्गत अन्य शक्तियाँ हैं ।। ६२।।

एते पञ्चापि मञ्चत्वं गताः पादतले स्थिताः ।।
यस्यास्तु त्रिपुरादेव्याः सैतेषां स्यात्समा कथम् ।।63।।

ये पञ्चकृत्याधिदेवता - (ब्रह्मा-सृष्टि, विष्णु -स्थिति, रुद्र - संहति, ईश्वर-निग्रह और सदाशिव - अनुग्रह) भगवती के सिंहासन (मञ्च बन गए उनके चरणतल में स्थित हो गये अर्थात् उन भगवती त्रिपुरा के पादतल में स्थित हैं । वह शक्ति इन सभी की सर्वोपरि हैं । इनके द्वारा आराध्य हैं,इनके समान नहीं हो सकती। इन पाँचों से सर्वोपरि त्रिपुराशक्ति हैं, इसी कारण ये पञ्चदेव उनके मञ्च बने ॥६३॥

यस्याः पञ्चविधा शक्तिः संस्थिता तेषु पञ्चसु ॥
पञ्चकृत्यात्मना लोके प्रथिता सैव भार्गव ॥64॥

जिन शक्तिस्वरूपिणी भगवतीत्रिपुरा की पञ्चविधाशक्ति ही उन पञ्चकृत्याधिष्ठातृ देवताओं को विभक्त होकर मिली है । इस कारण हे भार्गव ! केवल वही त्रिपुराशक्ति ही पञ्चकृत्यात्मारूप से लोक में प्रसिद्ध हैं ॥६४॥

इस श्लोक में भगवान् श्रीदत्तात्रेय जी ने "पञ्चविधाशक्तिः तथा पञ्चकृत्यात्मना" दो शब्द समूहों का प्रयोग किया है, इन पर यदि विचार धारा की थाह पकड़ने की चेष्टा की जाय तो उन पाँचो में भगवती की ही शक्ति सन्निहित है । भगवान् श्री मदाद्यशङ्कराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी स्तोत्र के प्रथम श्लोक में "शिव" शब्द से मङ्गलस्मरण करते हुए वस्तु निर्देश में भगवती का प्रभाव अभिव्यक्त किया है -श्लोक है -:

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं, - न चेदेवं देवो न खलु कुशलःस्पन्दितुमपि।। अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चा-दिभिरपि, प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ।।१।।-

इस श्लोक में पाँचकृत्यों के अधिकारी तत्त्वों के नाम आ गये हैं। आरम्भ में "**शिवश्शक्त्यायुक्तः**" से शिवशब्द से सदाशिव तथा

साथ ही ईश्वर का ग्रहण हो सकता है श्लोक के तृतीयपाद में "हरिहरविरिञ्चादिभिरपि" शब्दसमूह है । हरि =विष्णु, हर =रुद्र, विरिञ्चि = ब्रह्मा, आदि शब्द से ईश्वर का संकेत हो रहा है जब ये मूलदेवता शक्ति से संवलित होंगे तभी सक्षम होंगे । शक्तिरहित होने पर प्रेतरूप हो जायेंगे इस विषय में ब्रह्मादि देवों ने प्रार्थना की कि हे माँ ! जब हमारा कार्य जो आपने दिया है आपकी इच्छा से पूरा हो जाय तो हम प्रेतभाव में आपकी सेवा करना चाहते हैं । भगवती ने स्वीकार किया, वे पाँचों ही प्रेतभाव से सिंहासन हो गये भगवती का नाम है **"पंचप्रेतासनासीना"** (ल.स. २४९) ये ही जब शक्तिसंयुक्त हो जाते हैं तब पञ्चब्रह्मसंज्ञक हो जाते हैं । **"पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी"** (ल.स.२५०) इन दो नामों में "आसनासीना, और दूसरे नाम में स्वरूपिणी" शब्द प्रयुक्त हुआ है । यहाँ आधार और आधेय स्फूर्त होता है। इन दोनों स्थितियों में जो तत्त्व इन दोनों (शब्दों) को सार्थक कर रहा । प्रपञ्चातीत परमशुद्धतत्त्व कामेश्वर हैं और वही प्रकाश से विमर्शक्षेत्र में आता है तो कामेश्वरीरूप से अभिव्यक्त होने लगता है उसीको परोक्षरूप से वाग्देवता ललितासहस्रनाम में इन दो शब्दों का प्रयोग कर रही हैं । "आसनासीना तथा ब्रह्मस्वरूपिणी" क्योंकि "परोक्षप्रिया हि देवाः" वेदोक्ति है ।

इनका प्रेततत्त्व ही है इस बात को इस उक्ति में कहा गया है- ब्रह्मा विष्णुश्च, रुद्रश्च, ईश्वरश्च सदाशिवः । पञ्चप्रेता वरारोहे निश्चला एव ते सदा ।। (ज्ञानार्णव) । तथा पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी का विवेचन इस प्रकार से है। यथा - त्वामेव हि विचिन्वन्ति योगिनस्सनकादयः।। सदसद्रूपां व्यक्ताव्यक्तोभयात्मिका । त्वामेव प्रशंसन्ति पञ्चब्रह्म स्वरूपिणी।। (ललितोपाख्यान)।

निर्विशेषमपि हि ब्रह्म स्वस्मिन् मायाविलासतः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। इत्याख्यावशतः पञ्चब्रह्मरूपेण संस्थितम्।। (त्रिपुरासिद्धान्त)

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी के २४वें श्लोक में सुस्पष्ट शब्दों में कहा है जगत्सूतेधाता हरिरवति रुद्रःक्षपयते, तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति । सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिवस्तवाज्ञामालब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ।।२४।। भगवान् श्रीदत्तात्रेय ने कहा "यस्याः पञ्चविधा शक्तिः संस्थिता तेषु पञ्चसु" इति ।।६४)वें श्लोक में जिसका अभिप्राय यथामति व्यक्त करने की चेष्टा की जा रही है उसी विषय का इसी सौन्दर्यलहरी के २४वें श्लोक की व्याख्या (डिण्डिमभाष्य) के आधार पर वर्णन प्रस्तुत हो रहा है - यथा - ब्रह्मादि देव पञ्चकों में जिसकी शक्ति संस्थित है शक्ति संस्थित के अर्थ को जानने के लिये जन्य जनक भाव का सहारा लेना पड़ेगा क्योंकि श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी ने इसी स्तोत्र के ४१वें श्लोक में तवाधारेमूलेसह समययालास्यपरया के चतुर्थ चरण में - सनाथाभ्यांजज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम् ।।४१।। जननी शब्द के आधार पर सहस्रनाम में "आब्रह्मकीटजननी" २८५ इस नाम में ब्रह्मा शब्द है, वह भगवती सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की जननी है ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त की जननी हैं, माँ शब्द व्यापकक्षेत्र वाला है पर जननी केवल उत्पादिका जन्मदात्री ही होती है इस विषय में आगे भी विचार हो सकता है, ब्रह्मा- की जननी, (उपलक्षण के आधार पर) विष्णुजननी, रुद्रजननी, (बह्वृचोपनिषद् में "तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत् , विष्णुरजीजनत् रुद्रोऽजीजनत् सर्वं शाक्तमजीजनत् अण्डजं स्वेदजमुदभिज्जं जरायुजं यत्किंचैतत्प्राणिस्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत् "--) सौभाग्यभास्कर

में ब्रह्मशब्द की व्याख्या "स्थूलतमहिरण्यगर्भ नामकोजीवः" इति । पुनः इसी श्लोक में जननीशब्द है तो डिण्डिमभाष्यकार रामसूरि ने वर्णन किया है कि"धाता ब्रह्मा भगवत्या दक्षिणनयनोत्पन्नः हरिर्वामलोचनात्,रुद्रोललाटलोचनात् (तृतीय ऊद्ध्वंलोचन), ईश्वरोनाभिकमलात् सदाशिवोहृदयसरसिजात्। इन पाँचों को अपने ही श्रीविग्रह से प्रकट कर उन्हें पाँचकृत्यों में नियुक्त किया अपने भोंहों के संकेत से । ब्रह्मा-सृष्टि, विष्णु-स्थिति,रुद्र-संहार, ईश-निग्रह (इस सृष्टिस्थिति और संहृतिकृत्यों को इदंतया देखने से जीवात्मा का निग्रह करके उसे आच्छादित करते हैं अन्यथा इन सृष्ट्यादिकृत्यों का क्रम बंद नहीं होगा । जो लक्ष्य नहीं है । इदंता का अपलाप एवं अहंता की उपलब्धि कराते हुए भगवती की प्रेरणा से अनुग्रहकारक सदाशिव जीव का कल्याण करते हैं इसका स्पष्टीकरण है विद्वानों के चिन्तन द्वारा संहारपर्यन्त तीनों कृत्यों में ओतप्रोत जगत् तदन्तर्गत समस्त भूतवर्ग इसे ईश्वरनिग्रह कृत्य द्वारा निगृहीत करके प्रलय कर देते हैं । यही ब्रह्माण्ड का प्रलय है । यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मादि तीन देवों से संचालित होता है, उसका प्रलय ईश्वर निग्रहशक्ति से करते हैं । इसके अनन्तर सदाशिव अर्थात् वे शिव जो शक्तिसंयुक्त हैं -३६ तत्त्वों के प्रथम तथा द्वितीय तत्त्व हैं, वे सदा,सर्वकाल,सृष्टिकाल में तथा प्रलयकाल में दयार्द्र रहते हैं, इसलिये उनसे सदा शब्द जुड़ा है जैसे सदातन अर्थात् सनातन् इसी प्रकार सनातन ही सदाशिव हैं वे ३६ तत्त्वों में एक तत्त्व भी है। अतः सदाशिव का प्रादुर्भाव भगवती के हृदयकमल से हुआ है । हृदयभावों का उद्गम है अनाहतनाद का आधार है, एवं मध्यमावाणी का स्थान भी है, वही भगवती की प्रेरणा से अनुग्रहशक्ति (कृत्य) द्वारा प्रलय सुषुप्त समस्तजीवों को जाग्रतकर

उस परमशक्ति का स्मरण, दर्शन पञ्चमुख (पञ्चाम्नाय-ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, तत्पुरुषरूप में) कल्याणात्मक अनुग्रह करते हैं वह भी भगवती की आज्ञा से (इसमें अधिक विवेचना विद्वानों ने किया है) -॥६४॥ - आगे श्लोकों में सुस्पष्ट हो रहा है -

चिदेवानुग्रहो राम तामृतेऽनुग्रहो न हि ॥
आनन्दस्तु तिरोधानं तिरोधानं यतः सुखे ॥65॥

पिछले ६४ वें श्लोक में पूज्य दत्तगुरुवर्य ने"पञ्चविधा शक्तिः"और"पञ्चकृत्यात्मना" दो शब्दों को सूत्रवत् किया था उन्हीं दो शब्द समूहों की व्याख्या ६५वें श्लोक से साररूप में परशुरामजी से उपदेश के रूप से स्पष्ट कर रहे हैं । "चिदेवानुग्रह" इति श्रीगुरुवर्य ने कहा राम ! सदाशिव जो भगवती के हृद्कमल से आविर्भूत हूए हैं, भगवती सच्चिदानन्दतत्त्व ही है उनका सहस्रनाम में चिन्मयी (ल.स.२५१) "चिदेकरसरुपिणी ३६४), चिच्छक्तिः ४१७, चिन्मयी,चिन्मयस्वरूप ही चित् है,चित्तत्व ही जिनका स्वरूप हैं । चिदेकरसरूपिणी = अर्थात् एकमात्र चित् ज्ञान ही जिनका रूप है चित्तत्त्व ही विशेषरूप से ज्ञान का कारण है, वही भगवती का रूप है । एकरस अर्थात् चित् से अभिन्न अवस्था । स्वयं से अभिन्नधर्मरूपिणी चिच्छक्ति = अर्थात् समस्त प्राणियों में चेतनारूप से विद्यमान । "चिच्छक्तिपरमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते" (संक्षेपशारीरक) "अविद्यानिवारक रूपं सामर्थ्यं चैतन्यापरपर्यायं वा चिच्छक्तिः"(सौभाग्यभास्करे) अतः चिदेवानुग्रहो राम ! चिद्रूपिणी-भगवती का चिद्रूप ही अनुग्रहवाचक है । और वह अनुग्रह बिना भगवती के सम्पन्न नहीं हो सकता चिद्-अनुग्रह के बाद तिरोधान है- तिरोधक तो आनन्द है तिरोधानभाव जिससे सुख में इच्छा जागृत होती है - आगे के श्लोक में (यहाँ तिरोधान शब्द आया

है भगवती के दिव्यसहस्रनाम में दो नाम आये हैं - एक नाम- तिरोधानकरी २७०, ईश्वरी २७१ । तिरोधान भगवती शक्ति है जो ब्रह्माविष्णुरुद्र तीन सृष्टिस्थित- संहृतिकृत्यों के देवता है, इन्हें वह शक्ति अपने अन्तर्गत करके सदाशिवतत्त्व में लय हो जाती है, इसे निग्रह कहा गया है उस निग्रह का कार्य ईश्वर करते हैं,अन्त में सदाशिव में अन्तर्हित हो जाते हैं यह प्रलयावस्था है । पुनः सदाशिव प्रसुप्तजीवों को मुक्तावस्था में लाने के लिये अवसर प्रदान करते हैं यहीं अनुग्रह है जिसका रूप श्रीगुरु द्वारा शिष्य के लिये उपदिष्ट होता है,कि "सदाशिवनाभिकमलसमुद्भूता" भगवती हैं, मूर्ति में सभी लोग दर्शन करते हैं ॥

पिछले श्लोक (६५) में तिरोधान यतः सुखे - अग्रिमश्लोक में श्री गुरुवर्य ने कहा- इच्छाया जायमानत्वात् इति

इच्छाया जायमानत्वात् सृष्टिरिच्छात्मिका मता ॥

सत्त्वेन जायमानत्वात् ज्ञानशक्तिमयी स्थितिः ॥66॥

तिरोधान से जब सुख की इच्छा उत्पन्न हुई तो यह रजोगुण का परिणाम है, पुनः सत्त्वगुण के होते हुए ज्ञानशक्तिमयी स्थिति समुद्भूत होती है ॥६६॥

संहारस्य क्रियामूलं क्रियाशक्तिमयस्ततः ॥

एतच्छक्तिविहीनत्वे शवास्ते पञ्चपुरुषाः ॥67॥

संहारक्रिया का मूल है संहार, क्रियाशक्तिमय है, ये पाँचोंपुरुष इस शक्ति से विहीन हो जाते हैं तब वे शवरूप में हो जाते हैं ॥६७॥

इन तीनों श्लोकों का -जिनमें इच्छा,ज्ञान,क्रियाशक्ति का उल्लेख है श्रीचक्र के त्रिकोण में इनका स्मरण किया गया है । सहस्रनाम में एक नाम आया है - इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तिस्वरूपिणी-

६५८ वामकेश्वरतन्त्र में भगवती का स्वरूप बताया गया है यथा

त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी ॥

ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये ॥

वह भगवती ब्रह्मा,विष्णु और रुद्ररूप से त्रिविध है। तथा ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और इच्छाशक्ति-आत्मिका है । भगवती का श्रीविग्रह जिसमें सिर इच्छाशक्ति है, कण्ठ से कटिपर्यन्तभाग ज्ञानशक्ति है तथा पादपर्यन्त भाग क्रियाशक्ति है (संकेत पद्धति) इच्छाशक्ति के उद्भव से इच्छात्मिका सृष्टिपादपर्यन्त गुण से उद्भूत होने से ज्ञानशक्तिरूपा संहति सम्पन्न होती हैं तथा क्रियाशक्ति से स्थिति सम्पन्न होती है । व्यष्टि में समष्टि में जो सृष्टि,स्थिति,संहति कृत्य होते हैं यह सभी कुछ भगवतीशक्ति से ही सम्पन्न होते हैं । जब इन कृत्यों के पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश तथा सदाशिव प्रेतत्वसम्पन्न हो जाते हैं इनके कार्यों से सन्तुष्ट भगवती इनकी प्रार्थना से इन्हें प्रेत (निष्क्रिय) होने पर भी सिंहासन में सायुज्यमोक्ष जैसे संयोजन की स्वीकृति दे देती है।

श्रीचक्रचिन्तन में (अन्तर्यागाङ्गभूत चिन्तन) श्रीचक्र का सर्वोपरि जो बिन्दु के बाद त्रिकोण है -इसके चिन्तन में भास्करराय का श्लोक स्मरणीय है -यथा -

अकथासनं हळक्षान्तरं समासाद्य मामकं ज्ञानम् ।।

मामकमेवानन्दं मह्यं ददतो जयन्ति गुरुचरणाः ।।

वरिवस्यारहस्ये।।(२/१६६)

तत्तत्त्वं प्रोच्यते शक्तिः शिवोब्रह्म सनातनम् ॥

वासुदेवः स भगवानादिनाथ इतीरणैः ॥68॥

वह तत्त्वशक्ति कहा जाता है और शिव, ब्रह्म, सनातन, वासुदेव,

भगवान् आदिनाथ इन्हीं नामों से उसे (ब्रह्मतत्व) कहा गया है ॥६८॥

द्वेकले तस्य नाथस्य कार्यता कर्तृतेति च ॥
कार्यता स्यात् षोडशधा कर्तृताचैकरूपिणी ॥69॥

पूर्वोक्त उस नाथ की दो कलाएँ हैं, एक- कार्यता और दूसरी कर्तृता । कार्यतानाम्नीकला सोलह प्रकारों की है, और कर्तृता-एकरूप है ॥६९॥

इन्द्रियाणां तु दशकं भूतानां पञ्चकं तथा ॥
अन्तःकरणमित्येवं कार्यता षोडशात्मिका ॥70॥

दस इन्द्रियाँ -पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ -कान,त्वक्,नेत्र रसना,नासिका। पाँच कर्मेन्द्रियाँ- हाथ, पैर, मुख, पायु और गुह्य । तथा पञ्च महाभूत - आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी । इस तरह ये पन्द्रह हुए और एक अन्तःकरण (मन-चित्त, बुद्धि- अहंकार) चार भेद एक अन्तःकरण माना जाता है। यह सोलह भेदों वाली कार्यता कही जाती है ॥७०॥

कर्तृता स्यात्सप्तदशी कला नित्या महेशितुः ।
सा कर्तृतैव त्रिपुरा स्वातन्त्र्यं शक्तिरुच्यते ॥71॥

कार्यता सोलह भेदों वाली गणना से किया, और कर्तृता सत्रहवीं उन महेश की नित्या कला मानी जाती है, वही कर्तृता ही त्रिपुरा की स्वातन्त्र्यशक्ति कही जाती है ॥७१॥

तत्तत्त्वं द्विविधं ह्येवं वस्तुतस्त्वेकमेव हि ॥
कामेश्वरः कार्यतांशस्त्रिपुरा कर्तृतामयी ॥72॥

वह ब्रह्म दो प्रकार का (कार्यता और कर्तृता भेद) कहा गया है, किन्तु वस्तुतः वह एक ही है । कामेश्वर कार्यतांशरूप है और त्रिपुराकर्तृतामयी ॥७२॥

कामेश्वरीति सम्प्रोक्ता त्वनादि मिथुनं त्विदम् ॥
तत्र सारशक्तिरेव त्रिपुरा परमेश्वरी ॥73॥

भगवती त्रिपुरा जो कर्तृतामयी हैं वे कामेश्वरी भगवती कही जाती हैं। इस मिथुन में साररूपशक्ति ही त्रिपुरा परमेश्वरी हैं ॥७३॥

पूजनं सर्वदेवानां पराशक्तेः प्रपूजनम् ॥
शक्तिं विना न पूजाया ग्रहणं सम्भवेत् क्वचित् ॥74॥

समस्त देवों का पूजन उस पराशक्ति का ही यथार्थ पूजन है, क्योंकि कहीं भी शक्ति के बिना पूजा का ग्रहण सम्भव नहीं है । अर्थात् वह पूजा निस्तत्त्व पूजा ही है ॥७४॥

तस्मात् पूजातु शक्तेः स्यात् सर्वात्र विहिताजनैः ॥
फलप्रदा न, शक्तिं तु विचार्यादौ विचक्षणः ॥75॥

इस कारण सभीजनों के द्वारा सर्वत्र शक्ति की ही पूजा की जाती है, शक्ति बिना जो पूजा है, वह फलदायिनी नहीं होती । बुद्धिमान सर्वप्रथम शक्ति का विचार कर परिचय प्राप्त कर मुख्य रूप से श्रीगुरु से समझकर प्रवृत्त हो ॥७५॥

इसी प्रकार की उक्ति भगवान् आद्यशङ्कराचार्य जी ने "सौन्दर्य लहरी" स्तोत्र के २५ वें श्लोक में कहा है -

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे -
भवेत्पूजा पूजा तवचरणयोर्या विरचिता ॥
तथाहि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे -
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरातंसमकुटाः ॥२५॥

पूजयन्ति पृथग् देवं फलं विन्दन्ति तत्तथा ॥
लोकेऽप्यशक्तः कुत्रापि न पूज्यः स्यात्तु भार्गव ॥76॥

जो लोग शक्तिरहित देव का पूजन करते हैं उन्हें उस तरह का;

जो फल मिलना चाहिये वह नहीं मिलता । हे भार्गव ! लोक में भी यह देखा जाता है कि, शक्तिरहित की कहीं भी पूजा नहीं होती, वह पूज्य नहीं होता ॥७६॥

आश्रयत्वाच्छिवमृते शक्तिर्नैव तु विद्यते ॥
इति चेन्निजसत्तात्मशक्तिहीनः शिवस्तथा ॥77॥

शिवशक्ति के आश्रय हैं, शिवरूप-आश्रय के बिना शक्ति स्थिर ही नहीं हो सकती। यदि ऐसा है, तो शिव भी अपनी सत्ता आत्मशक्ति से हीन वैसे शवरूप हो जायेंगे शिव-शक्ति में आधाराधेय भाव है । अर्थात् शक्ति बिना शिव शव है,तथा शक्ति को भी आश्रय चाहिये । रत्न-प्रभा,सूर्य में प्रकाशशक्ति, अग्नि में दाहकता शक्ति, चन्द्र में आह्लादकता आदि भगवती को कामेश्वराङ्कनिलया कहा जाता है । सीताराम,राधाकृष्ण,पार्वतीशिव,लक्ष्मीविष्णु जितनी भी उपास्य-देवता हैं, उनकी पूजा करने वाला भी सपत्नीक पूर्ण माना जाता है ॥७७॥

तस्मात्सारं शक्तिरेव सर्वत्र शृणु भार्गव ॥
चन्द्रेऽमृतांशुरिव सा सूर्ये चोष्णप्रभा इव ॥78॥

हे भार्गव! सर्वत्र शक्ति ही सर्वसार है, यह तुम सुनो । स्थिर होओ जैसे चन्द्र की किरणों में अमृत, वही शक्ति सूर्य में उष्ण प्रभा जैसी है ॥७८॥

समुद्रे तोयवत् सा हि आकाशे शून्यता इव ॥
तदभावे न किञ्चित् तद्वेवं शक्तिः शिवस्य हि ॥79॥

वह शक्ति समुद्र में जल जैसी, इसी शक्ति का रूप जल उसकी थाह अगम है, इसी प्रकार आकाश में शून्यता जैसी हे अर्थात् इसी शून्यता शक्ति के द्वारा आकाश का शब्द गुण है, जो नाद का ही

रूप है, और वह शक्ति नादरूपा है। शक्ति के प्रभाव में वह देव है, शक्ति नहीं होने से, शववत् है । इसी लिये शिव का शिवत्व वह शक्ति ही है, जो त्रिपुरा है; कामेश्वरी है। सभी का अंतिम लक्ष्य है ॥ ७९॥

सा भक्तवत्सला भक्तकुशला चैव सर्वथा ॥
विचित्राणि शरीराणि धारयत्यात्मवैभवात् ॥८०॥

जो शक्ति सर्वथा भक्तवत्सला है, भक्तकुशला है, वह भक्तों की समस्त इच्छाओं को पूरा करने के लिये आत्मवैभव से अनन्त रूपों को धारण कर भक्तों की समस्त कामनाओं को पूरा करती है । पुत्र के लिये माँ (वही दस महाविद्या है, वही नवदुर्गा है, वही ५१ शक्तिपीठों की विभिन्न रूपा है॥ वह माँ "भक्तसौभाग्यदायिनी" ल. स ११८) है ॥ भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसन्ततिः॥ ४०४ ल.स.) - अर्थात् वह माँ भोगपूर्ति के साथ-साथ प्रकाश विमर्श शक्ति से अनादिकाल से संचित अज्ञानान्धकार को सूर्य अन्धकारवत् दूर कर देती है अर्थात् भोग के बाद मोक्ष भी हस्तामलक हो जाता है ॥८०॥

तत्र मुख्यं दशविधं कुमार्यादेः परं वपुः ॥
तत्रापि मुख्यं कामेशवामाङ्कासनसंस्थितम् ॥८१॥

उन शक्ति के अनन्तरूपा होने में उनके दसप्रकार के शक्तिरूप दशमहाविद्या माने जाते हैं, तथा मुख्य हैं । वहाँ भी कुमारी आदि शक्तियों से परे श्रीविग्रह है, वहाँ भी सर्वोपरि परमसाररूप कर्मोपासना ज्ञान की चरमस्थिति में आधाररूप कामेश्वरी-कामेश्वराङ्कासन परमयौगिक निगमागमका परमतात्पर्यरूप है जो विमर्श से प्रकाशतत्त्व में स्थिर करता है ॥८१॥

देवशिल्पीस्वचातुर्यसर्वसारविनिर्मितम् ॥
नगरं महादेव्या भूषणं छत्र पादुके ॥८२॥

देवशिल्पी विश्वकर्मा ने आदेश पाकर अपने अलौकिक चातुर्य

से नव परकोटों, चार-द्वारों से निर्मित श्रीचक्रनगर का निर्माण किया । भगवती के आभूषण,अस्त्र,छत्र और पादुकाएँ निर्मित की यह विशदरूप में श्रीललितोपाख्यान में और श्रीविद्या सम्बन्धी ग्रन्थों में त्रिपुररहस्यादि में वर्णित हुआ है ॥८२॥

एवं रूपा हि सा देवी सर्वलोकोत्तमोत्तमा ॥
सर्वेशी सर्वजननी सर्वकारणकारणम् ॥83॥

पूर्व वर्णित भगवती के अपूर्व माहात्म्य वाली श्रीमाता त्रिपुरसुन्दरी आत्मरूपा समस्त लोकों में उत्तम से भी उत्तमा हैं । सभी की स्वामिनी, सभी की उत्पादयित्री जननी, समस्त कारणों की कारण हैं ॥८३॥

तामुपास्यैव सम्भाव्यं बुधैः परमकं फलम् ॥
नान्यथा सम्भवेन्मुख्यफलं कोटिसुसाधनैः ॥84॥

हे परशुराम! उन भगवती की श्रीगुरुमुख द्वारा प्राप्त मंत्र और उपासना पद्धति के अनुसार उपासना करके ही बुद्धिमान को परम फल की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं स्वयं पुस्तक पढ़कर दूसरों से सुनकर बिना गुरुमुख से प्राप्त किये, करोड़ों सुन्दर से सुन्दर वैभवपूर्ण पूजा का प्रदर्शन करके भी मुख्यफल पाया नहीं जा सकता ॥

सम्प्रदायप्राप्त मार्ग से ही विशुद्ध श्रद्धा-भक्ति से निष्ठापूर्वक आराधना करने से वह माँ कृपा करती है, वह ब्रह्मविद्या है, स्वरूपबोध करा ही देती है ॥८४॥

श्री त्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां तार्तीये चर्यानन्दाख्ये खण्डे महापातकादि नाना-विषय प्रमुखो द्वितीयोऽध्यायः पूर्तिमगात् ॥

ॐ देशिकञ्छिष्यकेतनं सौम्यं भवभीतिहरम् ।।
दण्डहस्तं वराभीतिदं तं स्मितपूर्वभाषिणम् ।।
श्रीमज्जगद्गुरवे नमः
३ये चर्याखण्डे

तृतीयोऽध्यायः

इति श्रुत्वा दत्तगुरुप्रोक्तं रामोऽथ भार्गवः ॥
हृष्टः पप्रच्छ भूयस्तं प्रसन्नं दीनवत्सलम् ॥1॥

पिछले द्वितीय-अध्याय के उपसंहार में श्रीदत्त ने कहा था कि,'' हे राम ! एवंरूपाहिसादेवी सर्वलोकोत्तमोत्तमा । सर्वेशी सर्वजननी सर्वकारणकारणम् ॥८३॥ तथा अध्यायान्त में - तामुपास्यैव सम्भाव्यं बुधैः परमकं फलम् । नान्यथा सम्भवेन्मुख्यफलं कोटिसुसाधनैः ॥८४॥

इस प्रकार इन शान्तिदायक श्री दत्तगुरुवर्य द्वारा कहे गए आश्वासन वाक्यों से भार्गवराम जामदग्न्य हर्षित हुए । पुनः उन्होंने प्रसन्न दीनवत्सल शिष्यप्रेमी उन अवधूत श्रीगुरुदत्तात्रेय जी से आगे की जिज्ञासा से प्रश्न किया ॥१॥

भगवन्! यत्प्राह भवान् त्रिपुरोपासनेन वै ॥
मिश्रेण प्राप्यते श्रेयो नान्यथेति निश्चयम् ॥2॥

श्री परशुराम जी ने जिज्ञासा से आगे प्रश्न किया, कि भगवन्! आपने जो उपसंहारक्रम में निश्चयपूर्वक कहा, कि भगवती त्रिपुरा की उपासना के द्वारा जो उपासनाशास्त्र में त्रिविध उपासना क्रमों में सर्वोत्तम मिश्रोपासना से श्रेयः प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा वास्तविक लक्ष्य की उपलब्धि नहीं हो सकती, यह निश्चित है भले

ही मनोहर करोड़ों साधनों का प्रयोग किया जाय, किन्तु मुख्य फल; जो मूलतात्पर्य है, सर्वविध अनेक प्रतिपादनों का वह प्राप्त नहीं हो सकेगा, अर्थात् स्वरूपोलब्धि नहीं हो सकेगी !!! ॥२॥

तच्चापि दीक्षापूर्वं स्यादिति प्रोक्तमतो वद ॥
दीक्षाकतिविधात्वत्र को गुरुः शिष्य एव च ॥3॥

पूज्यवर्य! आपने जो पिछले विवरण में कहा था, कि उपासना दीक्षानन्तर ही विहित है अतः कृपा करके यह बताने की कृपा करें कि, दीक्षा कितने प्रकार की है । दीक्षादाता गुरु कौन हो सकते हैं, एवं दीक्षाका सुपात्र शिष्य कैसा हो ? ॥३॥

कःकालः को विधिस्तत्र सर्वमेतत् क्रमाद्वद ॥
इत्यापृष्टः प्राह तदा शृणु राम ! वदामि ते ॥4॥

दीक्षा किस समय लेना चाहिये ; उसका निर्दोष समय कौन सा हो अर्थात् काल समय (ज्योतिष शास्त्र निर्णीत दीक्षा मुहूर्त) मास, नक्षत्र, लग्नादि का विवेचन फिर दीक्षा की विधि सामग्री आदि सभी आप क्रमशः बतावें । इस प्रकार पूछे जाने पर श्रीदत्तगुरु राम से बोले, हम सविवरण तुम्हें बता रहे हैं । तुम सुनो ॥४॥

दीयते परमो भावः क्षीयतेऽज्ञानसञ्चयः ॥
दीक्षा महामोक्षपुरीद्वारसोपान भूमिका ॥5॥

दीक्षा इस शब्द की वर्णशः व्युत्पत्ति श्रीगुरु ने बताया कि परशुराम! दीक्षापद में प्रथमाक्षर है "दी" क्रियाबोधक है । दीयते-असौ-परमो भावः अर्थात् जिसमें श्रीगुरु के द्वारा परीक्षित विनीत शिष्य को शुभसमय में परभाव (सर्वोपरि भाव) दिया जाय, वह "दी" है । तथा "क्षा" अर्थात् "क्षि" क्षयेधातु से क्षीयते "क्षीण हो जाय अनादि अज्ञानसंग्रहहृदय का जिसके द्वारा वह क्षा दी में

क्षा में दोनों में ही कर्मवाच्य व्युत्पत्ति है दीक्षा कर्मप्रधान है, व्युत्पत्तिलभ्य यह अर्थ है । यही दीक्षा महामोक्ष अर्थात् चरम मुक्ति= जन्म, मरण, कर्ता, भोक्ता, भेद, बुद्धि, इदंता, असदासक्ति आदि अनेक सांसारिक शरीर गत देहाभिमानादि से मुक्ति अर्थात् इनका असद्भावों के अपलाप होने के लिये यह सोपान क्रममुक्ति की आधारभूमि है ॥५॥

विनोपनयनं यद्वद् द्विजानां सर्वकर्मसु ॥
न योग्यता तथाऽत्रापि विना दीक्षां भृगूद्वह ॥6॥

भगवान् श्री दत्तात्रेय ने कहा भृगुवंशी भार्गव! जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यवर्णों का षोडशसंस्कारों में अत्यन्त प्रमुख अनिवार्य "उपनयन संस्कार के बिना सभी कर्मों में अधिकार नहीं स्थिर होता, ठीक इसी प्रकार इस दीक्षा-संस्कार के बिना मन्त्र तथा इष्ट साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त नहीं होती ॥ ६ ॥

"विशेष अवधेय" - वर्तमानकाल में जो मनमाने अप्रामाणिक एवं अनादिपरम्परा विरुद्धमत-मतान्तर प्रचलित हो रहे हैं, यथा - एक तो साधारणतया समाज में धारणा है कि शादी के ही अवसर में जनेऊ धारण करेंगे । शादी और जनेऊ में दोहरा खर्च नहीं करना है" जबकि शादी में वर्तमान में जितना खर्च ऊपरी चकाचौंध में खर्च किया जाता है, वह अकल्पनीय होता है । शादी में होने वाले अनेक दस्तूरों में एक "दुर्गा जनेऊ" होता है, वह संस्कार नहीं है वेदोक्ति और धर्मशास्त्रों में विधान है। "वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत" धर्मशास्त्र में विधान है गर्भादष्टमेवर्षे ब्राह्मणस्योपनायनम्" इत्यादि इन विधानों का विद्वान् व्याख्याकारों ने मुख्यकाल और गौणकाल उपनयन संस्कारकाल निर्दिष्ट किया है-यथा ब्राह्मण का मुख्यकाल अष्टमवर्ष, गौणकाल १६ वर्ष, क्षत्रिय उपनयन मुख्यकाल ग्यारह

वर्ष, गौणकाल २२ वर्ष, वैश्य का उपनयन मुख्यकाल १२ वर्ष गौणकाल २४ वर्ष यदि इन निर्दिष्ट समयों पर यह संस्कार न हो तो, ब्राह्मण पतितसावित्रीक हो जाता है । क्षत्रिय क्षात्रतेज रहित हो जाता है और वैश्य वाणिज्यतेज से रहित हो जाता है, इसी प्रकार इस दीक्षा में भी शास्त्रोक्त विधान से सम्पन्न दीक्षा के प्रभाव से शिष्य में मन्त्रशक्ति का शक्तिपात (अदृश्य आध्यात्मिक शक्ति) होता है, अन्यथा नहीं ।

भारतीय सनातन आध्यात्मिक जगत् में निर्धारित षोडश संस्कारो में उपनयन संस्कार जिसे यज्ञोपवीत संस्कार भी कहा जाता है । त्रैवर्णिक व्यवस्थाओं में उपलक्षणात्मक रूप से ब्राह्मण को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है, विधान है प्रसिद्ध उक्ति है -

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराद्-द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वमेतदब्राह्मण लक्षणम् ॥-

इस उक्ति को अमान्य करते हुए कर्मवादी सुधारक कहते हैं कि -

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वमेतद् ब्राह्मण लक्षणम् ॥

अर्थात् कर्मणा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है, जन्मना नहीं । यह धारणा शास्त्रों के एवं वांशिक आनुपूर्वी का अनदेखापन है ।

उपनयन एवं यज्ञोपवीत के अर्थ इसी अर्थ का संकेत करते हैं जो श्री परशुरामजी ने भगवान् दत्त से जिज्ञासा की गुरु कौन? कैसा हो? समय कौन सा हो ? इत्यादि । "उपनयन" का भी यही अर्थ है, कि निश्चित समय पर बालक संस्कारित हो उपनयन में गायत्री का उपदेश प्राप्त करे । श्रीगुरुद्वारा अतः उपनयन का अर्थ है, श्रीगुरु के निकट भावों से क्रिया से निकट पहुँचना, परिणाम यज्ञोपवीत =

अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ उसे सम्पन्न करने के लिये दीक्षित (वरण) होना, श्री विद्या के विषय में बताया गया है । श्रीविद्या बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग भेद से दो प्रकार की है- बहिरङ्ग श्रीविद्या- गायत्री मन्त्र और अन्तरङ्ग श्रीविद्या (पञ्चदशी) महामन्त्र है ।

उपनिषद् प्रमाणों से यदि समझें तो "सावित्र्युपनिषद्" में स्पष्ट हुआ है- "तस्या एव प्रथमः पादो "भू"स्तत्सवितुर्वरिण्यमित्यग्निर्वै वरेण्यमापो वरेण्य चन्द्रमा वरेण्यम् । तस्या एव द्वितीयः पादो भर्गमयोऽपो भुवः भर्गोदेवस्य धीमहि- इत्यग्निर्वै भर्ग आदित्यो वै भर्गश्चन्द्रमा वै भर्गः । तस्या एषतृतीयः पादः स्वर्धियो यो नः प्रचोदयादिति ।।- **"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ब्राह्मणउपनिषद्"** "महानारायणोपनिषद् के १५वें खण्ड में-आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसंमि-तम् । गायत्रीच्छन्दसां माता- इदं ब्रह्म जुषस्व नः"....(१)

बह्वृच्-उपनिषद् में .....सैषा षोडशी, श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, बालाम्बिकेति, बगलेति, वा मातङ्गीति, स्वयंवरा कल्याणीति भुवनेश्वरीति, चामुण्डेति, चण्डेति, वाराहीति, तिरस्करणीति, राजमातंगीति, वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेतिवा अश्वारुढेति वा, प्रत्यङ्गिरा, धूमावती, सावित्री गायत्री, सरस्वती ब्रह्मानन्दकलेति...।।६।।

अप्राप्य सद्गुरोर्दीक्षामज्ञात्वा गुरुपद्धतिम् ।।
स्वबुद्ध्या तु कृतं राम विधिना च समन्वितम् ।।7।।

सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त किये बिना, तथा गुरुपद्धति को बिना जाने अपनी अमर्यादित तथा बाह्य जगत् में फैलाई गईं पाखण्डी जनों की प्रचारित बातों से प्रभावित होकर जो पूजा, मूर्तिपूजा, मन्दिरों की व्यवस्था में विद्रोह पैदा कर अज्ञानी नर-नारियों को विद्रोही बनाकर व्यक्तिगत या समूहगत जो लोग उपासना पद्धति को बदलकर मनमाना करने का प्रयास करते रहते हैं , ऐसे लोगों

को भविष्य में उस दैवी जगत् के प्रकोप का भाजन होना पड़ता है, परिणाम यह होता है, दुर्भिक्ष, असमय में दुर्धटना से दुर्गति पूर्ण मरण, भौतिक प्राकृतिक प्रकोपों को सभी को भुगतना पड़ता है । हे परशुराम! क्या परिणाम होता है सुनो ॥७॥

तथापि साधकं शीघ्रं नाशयत्येव सर्वथा ॥
सेवितारं यथा हन्ति चापक्वं तु रसायनम् ॥8॥

उपासनामार्ग के विपरीत मनमानी करने वाले साधकम्मन्य तथा भक्तम्मन्य, किं वा उपासकम्मन्य सद्गुरु आचार्य से विरुद्धमार्गी लोक को वह अमर्यादित अशास्त्रीय उपासनाक्रम, मन्त्रादि देवतागण शीघ्र ही नष्ट ही कर देते हैं, जैसे अर्धपक्व रसायन का पुष्टिकारक औषध के भ्रम से सेवन करने वाले मनुष्य का नाश ही होता है, यह चेतावनी परशुराम जी को सद्गुरु श्री दत्तात्रेय ने दी ॥८॥

तस्माद्यथावत् सम्प्राप्य दीक्षां सद्गुरुपुङ्गवात् ॥
उपासनं प्रकुर्वीत तथा तेष्वप्यनुग्रहम् ॥9॥

इन्हीं पूर्वोक्त विधिरहस्यों के विद्यमान रहने से वास्तव में आत्मोपलब्धि की प्रबल उत्कण्ठा है, तो साधक,जिज्ञासु,श्रेष्ठ आचार्य,ज्ञानी,श्रोत्रिय,ब्रह्मनिष्ठ-सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त करें, उनके नियन्त्रण में यदि उपासना होती है तो, ऐसे मर्यादित सच्छिष्यों को श्रीगुरु का, मन्त्र का और देवता का तथा सम्पूर्ण दैवीजगत् का अनुग्रह प्राप्त होगा ॥ ९॥

बिना दीक्षां तु योऽन्यस्मै मन्त्रानुपदिशेत् क्वचित् ॥
स प्रयाति महाघोरान् नरकान् द्रोहहेतुतः ॥10॥

सद्गुरु से विधिवत दीक्षा लिये बिना शिष्य लोभ से ग्रस्त होकर दूसरे को पुस्तक में पढ़कर मन्त्रोपदेश करता है, तो वह मन्त्र शाप

से अभिशप्त होकर महाघोर नरकों में पड़ा रहता है, क्योंकि उसने गुरु की आवश्यकता नहीं समझा, गुरुद्रोह किया चेष्टा से प्रवृत्ति से, तथा मन्त्र को भी अपना दास समझा, इसलिये मन्त्र प्रभाव से परोक्ष द्रोह किया परिणाम नरकवास ॥ १०॥

आदौ गाणपतीं दीक्षां समासाद्य गणाधिपम् ॥
उपास्य विघ्नान् संशाम्य त्रिपुरां तदनन्तरम् ॥11॥

सर्वप्रथम जिज्ञासु साधक भगवान् गणपति की गणपति से सम्बन्ध पद्धति के अनुसार गणपति-मन्त्र की दीक्षा ले, तदनन्तर मन्त्रोपासना करके विघ्नों का प्रशमन करके तदनन्तर त्रिपुरोपासना में तत्पर हो ॥११॥

उपासीतान्यथा विघ्नैर्विहतः स्याद्धि सर्वथा ॥
केवलं वाप्युपासित्वा मन्त्रग्रहण पूर्वकम् ॥ 12॥

भगवान् विघ्ननिवारक गणपति के मन्त्र की दीक्षा लेकर उपासना करे,अन्यथा निश्चित ही विघ्नों से समाक्रान्त हो जायगा । मन्त्रग्रहण पूर्वक भी केवल सामान्यरूप से जप-पूजा आदि भी कर लेता है तो - ॥१२॥

निर्विघ्नोऽनन्तरां दीक्षां गुरोरासादयेत् क्रमात् ॥
एतच्च विघ्नयन्त्रस्य नाशनात् त्रिपुरा पुरा ॥13॥

भगवान् गणेश की दीक्षा प्राप्त मन्त्र का अनुष्ठान करके निर्विघ्न हो जावे, पुराकाल में भण्डयुद्ध के अवसर पर भण्ड सेनापति द्वारा विघ्न यन्त्र फेंक देने से उसका प्रभाव योगिनियों पर होने लगा था, तब भगवान् महागणेश भगवती के संकल्प से प्रकट हुए और विघ्नयन्त्र का ढुण्ढन किया, ढूण्ढकर नष्ट कर दिया, इससे माता त्रिपुरा ने महागणेश को विघ्ननाशक का वरदान दिया- (आगे के श्लोक में)- ॥१३॥

तुष्टा महागणेशाय ददावभिमतं वरम् ॥
अनुपास्यादितस्त्वां ये मदुपास्तिपरायणाः ॥14॥

भगवती की आज्ञा से भगवान् महागणेश ने भण्ड प्रेरित विघ्नयन्त्र को ढूंढकर (ढुढि अन्वेषणे) नष्ट कर दिया, अपितु उस यन्त्र को सूंड से पकड़कर पटक-पटक कर टुकड़े-टुकड़े कर भण्ड की ही सेना में उछाल दिया । यन्त्र का दुष्प्रपभाव भण्ड की सेना में होने लगा, भगवती ने सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर इच्छित वरदान दिया, कि "जो साधक सर्वप्रथम तुम्हारी उपासना किए बिना मेरी उपासना में संलग्न होंगे .....॥१४॥

ते विघ्नैरभिभूतास्तु भविष्यन्ति पदे पदे ॥१/२॥

वे पद-पद में अनगिनत क्रमिक और आकस्मिक शारीरिक, मानसिक, वैयक्तिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राजद्वारादि से होने वाले विघ्नों से घिरे रहेंगे ॥

(विशेष) -: भगवान् गणेश के विषय में दो पौराणिक घटनाएँ चिन्तन में आती हैं । त्रिपुरोपाख्यान में- वर्णन मिलता है, कि जब भण्ड सेनापति ने विशुक्र ने विघ्नयन्त्र एक शिला में बनाकर ज्वालामालिनी नित्या की ज्वालापरिधि के भीतर फेंक दिया, यंत्र के दुष्प्रभाव से समस्त शक्तियाँ दण्डनाथा और मन्त्रिणी के अनुशासन के विरुद्ध होकर आलस्यग्रस्त हो गई युद्ध से विरत होने लगी, इन दोनों देवियों ने दण्डनाथा और मन्त्रिणी ने भगवती के सामने जाकर इस विषमस्थिति का विवरण दिया यह सुनकर भगवती ने **महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयंत्रहर्षिता**"इस नाममंत्र के पूर्व **कामेश्वरमुखालोक-कल्पितश्रीगणेश्वरा** इसका विस्तृत विवेचन आगे है -

भगवान् कामेश्वर के श्रीमुख को देखा - वर्णन किया है, भगवान् हयग्रीव ने अगस्त्य जी से वे श्लोक इस प्रकार हैं -

ततः सा ललिता देवी कामेश्वरमुखं प्रति ॥
दत्तदृष्टिः समहसन्नाति व्यक्तरदावलिः ॥68॥
तस्याः स्मितप्रभापुञ्जान्कुञ्जराकृतिमान्मुखे ॥
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिद्देवोव्यजृम्भत ॥69॥
जपापाटलपाटल्यपाटच्चरवपुर्द्युतिः ॥
बीजापूरं गदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम् ॥70॥
अब्जपाशोत्पलं ब्रीहिमञ्जरीस्वरदाङ्किरान् ॥
रत्नकुम्भं च दशभिहस्तैः स्वीयैः समुद्वहन् ॥71॥
तुन्दिलश्चन्द्रचूडालो मदबृंहितनिस्वनः ॥
सिद्धलक्ष्म्या समाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीम् ॥72॥

(ललितोपाख्यानम् २३वां अध्याय)

ये महागणेश श्रीचक्र के नैऋत्यकोण में परिवारार्चन में सर्वप्रथम पूज्य होते हैं । श्रीपरमहंसी गङ्गा आश्रम में "नित्याप्राङ्गण में महागणेश की पूज्य शङ्कराचार्य महाराज जी ने विशालमूर्ति स्थापित की है । जिसके सर्वसुलभ दर्शन हो रहे हैं ।

पौराणिक आख्यानों में एवं कर्मकाण्डीय विधानों में गौरीगणेश की पूजा होती है, इन गणेश का प्राकट्य भगवती गौरी ने किया है । इनका एक नाम गणेश सहस्र नाम में आया है "उमाङ्गमल-सम्भूताय नमः" । ये चतुर्भुज हैं इनका प्रसिद्ध ध्यान श्लोक है -

गजाननं भूतगणादिसेवितं
कपित्थजम्बूफल चारु भक्षणम् ।।
उमासुतं शोक विनाशकारकं
नमामि विघ्नेश्वर पादपङ्कजम् ।।

ललिता सहस्रनामोक्त महागणेश के दो नामों तथा विशुक्र द्वारा

विघ्नयन्त्र साधक के जीवन में किस प्रकार सम्बन्ध रखते हैं उनके प्रशमनार्थ श्रीदत्तसद्गुरु ने जो संकेत किया है वह समझने योग्य है -यथा-

भण्ड के ये दोनों सेनानी विषङ्ग और विशुक्र इनके नामों की व्युत्पत्ति करें तो कुछ संकेत मिलेंगे । विषङ्ग - विरुद्धः संगः अथवा विषङ्गच्छति वा पौराणिक वर्णन में यह दैत्य हैं साधक के साधनयुद्ध में - यह विषङ्गदैत्य, विषयाभिलाषरूप अनावश्यक उपयोग से अधिक विषयवासना का विरुद्ध संग आसक्तिरूप है । भोगरूपविषय ही विषङ्ग है । "विषय" शब्द की भी यही व्युत्पत्ति हो सकती है । "विषं प्रति याति या विषं याति" अर्थात् जो प्रवृत्ति अमर्यादित रूप से विषयरूपी विष को प्राप्त करा दे । इस विषङ्ग का वध भगवती मन्त्रिणी ने किया । **"मन्त्रिण्यम्बाविरचित विषङ्गवधतोषिता** ल.स. ७५ भण्ड ने अपने वामस्कन्ध से विषङ्ग दैत्य को उत्पन्न किया था ॥

इसी प्रकार "विशुक्र" इसके विषय में नाम हैं - विशुक्र प्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दिता ल.स. ७६ भगवती दण्डनाथा ने इसका वध किया था पौराणिक वर्णन में भण्ड ने अपने दक्षिण स्कन्ध से इसे उत्पन्न किया था साधक के जीवनसंग्राम में - **"विशुक्र" शब्द की व्युत्पत्ति होगी - विरुद्धं - शुक्रं तेजो यस्य स"** सातधातुओं में शुक्र अंतिम धातु है, इसके संयम से तेज से ऊद्ध्वरितसत्व प्राप्त होने पर कुण्डलिनी सहजतया जागकर बिना प्राणाघात किये ऊद्ध्वगति होकर सहस्रार में पहुँचकर अमृत-वर्षण चक्रों में करती है । इसी कारण पाँच यमों में से एक ब्रह्मचर्य नामक यमकी सिद्धि होने पर योगदर्शन में सूत्र है- "ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां तत्स्सन्निधौ वीर्यलाभः" । वर्णाश्रम व्यवस्था में भी प्रथम

आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम है । साधक के जीवन में अनजाने यह विशुक्र रूप दानव चुपके से घुस जाता है । पौराणिक कथानक में भी विघ्नयन्त्र लेकर चुपके से घुसा था और विघ्न्यन्त्र रखा था - विघ्नयन्त्र कैसा था वर्णन आया है ।

यथा-: **गव्यूतिमात्रकायामे तत्समान प्रविस्तरे ।।**

शिलापट्टे सुमहति प्रालिखद्यन्त्रमुत्तमम् ।।२३/३७।।

आधायोजन एक गव्यूति एक गव्यूति दो कोस प्रचलित वर्तमान मार्गमाप ४मील तथा इसका डेढ़ गुना अर्थात् ६ किलोमीटर । भगवती ज्वालामालिनी का अग्निज्वालाव्यूह सौ योजन विस्तीर्ण था - लगभग चार सौ कोस = अर्थात् छह सौ किलोमीटर घेरे में था । यहाँ यह विघ्नयन्त्र ; जिसकी आठों दिशाविदिशाओं में संहार बीजाक्षरयुक्त आठशूलों जिनमे अलसा, कृपणा, दीना, निद्रा, तद्रा, प्रमीला, क्लीब, निरहंकारा ये आठ देवता न्यस्त थीं । इनसे उसने छागों (अज-बकरों) की बलि दी और अन्य बलियाँ दी यथा वर्णन-

अष्टदिक्ष्वष्टशूलेन संहाराक्षरमौलिना ।।
अष्टभिर्दैवतैश्चापि युक्तं यन्त्रं समालिखत् ।।३८।।
अलसा कृपणा दीना निद्रा तन्द्रा प्रमीलिका ।।
क्लीब च निरहंकारा इत्यष्टौ देवताः स्मृताः ।।३९।।
देवताष्टकमेतच्चशूलाष्टकपुटोपरि ।।
नियोज्य लिखितं यन्त्रं मायावी सममन्त्रयत् ।।४०।।
पूजां विधाय यन्त्रस्य बलिभिश्छागलादिभिः ।।
तद्यन्त्रं वैरिकटके प्राक्षिपत्समहासुरः ।।४१।।(२३/४१)ललितो०

शुक्रधातु का संरक्षण जीवन का संरक्षण है, इसका अनुचित अमर्यादित प्रयोग ही दैत्य है, जिसकी आठशक्तियाँ मनुष्य में छा जाती है, और मनुष्य को निर्वीर्य कर देती है । "उक्ति है

ब्रह्मचर्येण ते देवा मृत्युमपाघ्नत'' ''मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणात्'' साधक की साधना में यही दैत्य छा जाता है और साधक को लक्ष्यच्युत कर देता है । श्रीगणेश उस दैत्य के विघ्नयन्त्र को विदीर्ण कर देते हैं और विशुक्र को भगवती दण्डनाथा नष्ट कर देती हैं । दैत्यनाश से आनन्द अध्यात्म में चिदानन्द है। चिदात्मा गणेश ॥१४॥

बालायाश्चापि मन्त्रिण्या दण्डराज्ञ्या अपि क्रमात् ॥15॥

श्रीगणेशदीक्षा एवं उपासना के अनन्तर बालात्रिपुराम्बा मन्त्रिणी तथा दण्डनाथा के मन्त्रों की दीक्षानन्तर उपासना करे ॥१५॥

दीक्षामासाद्य तत्पश्चादुपासीत क्रमेण वै ॥
किञ्चित्कालमुपास्यैव क्रमादेता-अनन्तरम् ॥16॥

श्रीगणेश दीक्षानन्तर एवं उपासना के साथ ही साथ बालात्रिपुरा, मन्त्रिणी की, फिर दण्डनाथा की दीक्षानन्तर क्रमशः उपासना करे, इन उपासनाओं में पद्धतिकारों ने समय का भी निर्देश किया है जिसका स्मरण रखना आवश्यक है "ललिता प्राह्णे, ब्रह्ममुहूर्त से लेकर प्रथमप्रहर तक प्रातःसंध्या के बाद भगवती ललिता की इसमें बालाम्बा भी हैं उपासना करे । गणेश तर्पणादि सम्पन्न करे। **अपराह्णे श्यामलाम्बां स्मरेत् पूजयेत् रात्रौ वार्तालीं- दण्डनाथां, दिवान स्मरेद् वार्तालीम् ''** ।।

इस क्रम से कुछ समय पर्यन्त उपासना करके इसके अनन्तर....

यहाँ किञ्चित् कालमुपास्यैव का अभिप्राय क्या होना चाहिये? पद्धतिग्रन्थों में श्रीगुरु निर्दिष्ट मन्त्रानुष्ठान में इन मन्त्रों की पर्व कालों में उपासना करके श्रीगुरु से निवेदन करने के बाद उनके निर्देशानुसार आगे की उपासना में प्रवृत्त हो, किन्तु श्रीगुरु अनुग्रह

से उपासना के अन्तिम सोपान में आ जाने के बाद भी इन आरम्भिक शक्तियों के मन्त्रों को यथासम्भव निर्दिष्ट समयों में सम्पन्न करता रहे । यह संकेत श्रीविद्यासपर्या पद्धतियों में विहित है । उदाहरणार्थ - तिथि-नित्याओं का कृष्णपक्ष - शुक्लपक्ष के अनुसार महानित्यास्मरण के साथ अनुलोम-विलोम का है यह निर्देश श्रीगुरुवर्य से लेना आवश्यक है ॥१६॥

हाद्यां काद्यां वापि पञ्चदशीमासादयेद्गुरोः ॥
गणपेनैव चेताभिस्तुष्टा युद्धसुकर्मभिः ॥17॥

पञ्चदशीमहामन्त्र एक हादि है- हसकलह्रीं, हसकहल ह्रीं, सकल ह्रीं दूसरा- कादि है -यथा-कएईलह्रीं,हसकहलह्रीं,सकलह्रीं'' इन्हें श्रीगुरु की कृपा से गतसाधना सम्पन्नता के बाद प्राप्त करें । भगवान् श्रीगणपति से ही ये शक्तियाँ युद्ध में (संघर्ष में) तथा सुकर्मभिः अर्थात् श्रीगुरु निर्दिष्ट मार्गों से,इनके पालन से । पौराणिक ललितोपाख्यान में वर्णित प्रसङ्गानुसार श्रीगणेश ने जब माँ की आज्ञा से विघ्नयन्त्र विदीर्ण कर भण्डसेना में फेंक दिया । उस विघ्नयन्त्र के दुष्परिणाम से वे शक्तियाँ दण्डनाथा और मन्त्रिणी का ही तो विरोध कर रही थीं । विघ्नयंत्र जब श्रीगणेश द्वारा भग्न हो गया तब ये दोनों ही शक्तियाँ निश्चिन्त हुई थीं । इससे यही ध्वनित होता है कि श्रीगणेश के अनुग्रह से साधक के अन्तःकरण में प्रविष्ट शक्ति से विघ्नयन्त्र नष्ट होता है एवं मन्त्रिण्यम्बा एवं दण्डनाथाम्बा का अनुग्रह मिलता है। अर्थात् साधक दण्डनाथा के दण्डविधान की सीमा में नहीं आता एवं मन्त्रिण्यम्बा साधक को भगवती के श्रीचक्रनगर में नवावरणों में चिन्तामणिगृहप्रान्त में यथा साधनानुसार नियुक्त कर देती हैं । ललितासहस्रनाम में ''मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधुरा''अर्थात् - भगवती ने अपने अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-

शासनभारराज्य की धुरी भगवती श्यामला को सौंप दिया है भगवान् हयग्रीव ने श्रीअगस्त्य जी से वर्णन किया - यथा-सा हि संगीतविद्येशी श्रीदेव्यातिवल्लभा । नातिलंघयति क्वापितदुक्तं कार्यपद्धतिषु ॥९२॥ श्री देव्याः शक्तिसाम्राज्ये सर्वकर्माणि मन्त्रिणी । अकर्तुमन्यथा कर्तुं कर्तुं चैव प्रगल्भते ॥९३॥ तस्मात्सर्वेऽपि दिक्पालाः श्रीदेव्याः जयकाङ्क्षिणीः । तस्याः प्रधान भूतायाः सेवामेव वितन्वते॥९४॥ ललितो० १२अ.॥१७॥

त्रिपुरायास्ततः प्राप्तमेतदीप्सितसद्वरम् ॥

त्रिपुरा या कुमारी सा बालात्रिपुरसुन्दरी ॥18॥

श्रीगणेश ने भगवतीत्रिपुरा से यह श्रेष्ठवर जो अभीप्सित है वह प्राप्त किया है, वह जो भगवती त्रिपुरा हैं, वे ही कुमारी हैं वही बालात्रिपुरसुन्दरी हैं ।

प्रतिबिम्बात्मिका तस्या महाविभवसंयुता ॥

कामेशवामाङ्कगतां चक्रराजरथस्थिताम् ॥19॥

वह भगवती बालात्रिपुराम्बिका भगवतीत्रिपुरा की प्रतिबिम्बात्मिका हैं । पौराणिक वर्णन में भगवती त्रिपुरा की अष्टवर्षदेशीया कन्या कुमारी बालात्रिपुराम्बिका हैं जो महावैभवसंयुता हैं । वे भगवती त्रिपुरा भगवान् कामेश्वर के वामाङ्क में स्थित हैं जिनका चक्रराज है जिसमें वे विराजमान हैं । ४ चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृता श्रीपादुकां पूजयामि नमः (ल.सं.६८) ललितोपाख्यान के १२वें अध्याय में विस्तृत वर्णन है ॥१९॥

दृष्ट्वाम्बां त्रिपुरामवाप्तनवात्मसुवैभवाम् ॥

द्वेधा विभज्य चात्मानं द्विरूपा समजायत ॥20॥

भगवान् कामेश्वर के वामाङ्क में स्थित तथा चक्रराजरथसंस्थित

उन अम्बा त्रिपुरा को देखकर जो अम्बा के नवप्राकार जिनके महत्त्व को बताते हैं उस श्रीचक्र का वैभव अतुलनीय है । तथा उन भगवती ने स्वयं को दो रूपों में विभक्त किया ॥२०॥

अर्धात् कुमार कामेश अर्धात् स्वं रूपमास्थिता ॥
लघुचक्रस्थस्य वाममङ्कं सम्यक् समाश्रिता ॥21॥

आधे भाग से कुमार कामेश प्रकट हुए और आधे भाग से स्वयं अपने रूप में स्थित वहीं लघुचक्र में स्थित कामेश के वामाङ्क में समाश्रित हो गई । भगवती का एक नाम कामेश्वराङ्कनिलया महाकामेशमहिषी, कान्तार्धविग्रहा- भगवती त्रिपुरसुन्दरी हैं तो कामेश्वर भी त्रिपुरसुन्दर ही हैं, कामशब्द कमनीय अर्थ में है। कान्ति अर्थ में और काम इच्छा अर्थ में भी वेद में सोऽकामयत, एकोऽहं बहुस्याम्'' इत्यादि इन उक्तियों से काम प्रज्ञानार्थक भी है, महावाक्य है **प्रज्ञानंब्रह्म**। विद्वत्प्रतिपाद्य दर्शनवादों में जो भी अर्थ हो शब्द साम्य से यह समझ की थाह में जा सकता है,'' भावनोपनिषद् में दो सूत्र हैं - निरुपाधिकसंविदेव कामेश्वरः (२७) सदानन्दपूर्णः स्वात्मैवपरदेवताललिता'' (२८) ये सभी नाम भगवती के महावैभव के सूत्ररूप हैं॥२१॥

मन्त्रिणी मुख्य सचिव पदसंश्रयणी यतः ॥
द्वारभूत महादेव्या अत आराधयेत्तु ताम् ॥22॥

भगवती मन्त्रिणी, श्यामलाम्बा त्रिपुरा की मुख्य सचिवपद को सम्भालती हैं । वे ही भगवती के निकट जाने के लिये मुख्यद्वाररूपा हैं, अतः उनकी आराधना करनी चाहिये ॥ २२॥

स्खलनं स्याद्गच्छतां तु सर्वथा तत्र दण्डिनी ॥
दण्डयेत्क्रूरदण्डेन सदा क्रोधपरायणा ॥23॥

साधक का उपासनाकाल में गतिशील रहते हुए यदि स्खलन

हो जाय तो अर्थात् नियमभंग, मर्यादाभंग, अथवा वे आठ महापाप श्रीविद्याक्षेत्र में हो सकते हैं, वे क्षोभ में या असावधानी में भी हो जाय तो वहाँ वह दण्डिनी जिसका रूप क्रोधमय है वह क्रूरदण्ड से दीर्घकाल तक दण्डित करती है । अतः सावधान रहना चाहिये। यह सावधानी विशेष है ॥२३॥

आराधिता प्रशान्ता स्यादन्यथा दण्डपातनम् ॥
अतः सापि समाराध्या श्रेयोऽर्थी स्वात्मनो ध्रुवम् ॥24॥

वह भगवती अपने निर्दिष्ट समय में (रात्रि में) यदि आराधित होती है, तो आराधना में उपासना मर्यादा का पालन होगा ही, और विशुक्र जैसे दानव का अन्तःकरण में प्रवेश होगा नहीं तो वह शक्ति पूर्णशान्त रहेगी अन्यथा दण्ड विधान तो करेगी ही । अतः जो अपना अपनी आत्मा का सुनिश्चित श्रेयस् चाहता है तो उसे श्रीगुरु से प्राप्त मन्त्र का आराधन करना चाहिये ॥२४॥

पञ्चदश्यास्ततो दीक्षामासाद्य गुरुवर्यतः ॥
उपास्याधिकृतिं प्राप्य भक्ति श्रद्धासमन्वितः ॥25॥

श्री गुरुवर्य से पञ्चदशी मूलमन्त्र की दीक्षा लेकर भक्ति और श्रद्धाभावों से समन्वित होकर उपासना का अधिकार प्राप्त करके ॥-२५॥

षोडश्यास्तु ततः पश्चात् दीक्षामासादयेद् गुरोः ॥
एवं सम्प्राप्त दीक्षस्तु ज्ञातोपासनमार्गकः ॥26॥

पञ्चदशीमूलविद्या की दीक्षानन्तर साधना के पश्चात् श्रीगुरु की इच्छानुसार षोडशी महामंत्र की दीक्षा प्राप्त करे । इस प्रकार दीक्षा प्राप्त कर योग्य होकर उपासनामार्ग का सम्पूर्ण जानकार होवे ॥२६॥

सन्तोष्य सद्गुरुं सम्यग् भक्ति श्रद्धाधनादिभिः ॥
पूर्णां दीक्षां समादद्याद् येन पूर्णात्मता भवेत् ॥27॥

श्री षोडशीमहामन्त्र की दीक्षा के पश्चात् दीक्षा मुख्य संस्कार मन्त्रसाधना के लिये प्राप्त करे । श्री सद्गुरु को भक्ति,श्रद्धा एवं सर्वस्व समर्पण करके सन्तुष्ट करे । इस भौतिक समर्पण से जो भौतिकसम्पत्ति शिष्य को उसके प्रारब्धवश प्राप्त हुई है । उसे "त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेवसमर्पये०" इस अर्पण के फल स्वरूप अनादिजीवयात्रा में जो अतुलनीय सर्वस्व स्वस्वरूप असदज्ञान की आंधी से ओझल रहता था वह स्वरूपबोध जो आवृत्त था, उसे निरावृत्त श्रीसद्गुरु कर देते हैं । ऐसा करने से शिष्य की पूर्णात्मता सम्पन्न हो जाती है ॥२७॥

यहाँ सद्गुरु का वर्णन उपासनाशास्त्रों में किया है, माता, पिता,उपनेता,श्वसुर और शिक्षक और गुरु इन स्तरों से और ऊपर का स्तर सद्गुरु का होता है । उसके लक्षण बताए गए हैं यथा सटीक प्रपञ्चसार ग्रन्थ के ३३ वें पटल में -:

इष्टदोऽनिष्टसंहर्ता दृष्टादृष्टसुखावहः ।।
इतोऽविरतमर्चासु परं पुरमुरद्विषोः ।।२६।।
दाता दान्तः शान्तमना नितान्तं कान्तविग्रहः।।
स्वदुःखकारणेनापि परं परसुखोद्यतः ।।२७।।
ऊहापोहविदव्यग्रोलोभमोहविवर्जितः ।।
अज्ञानुकम्प्यविज्ञातज्ञानो ज्ञातपरेङ्गितः ।।२८।।
निरंशसांशवित् सर्वसंशयच्छिदसंशयः ।।
नयविद् विनयोपेतो विनीतो न चिरात्मवान् ।।२९।।

कुलार्णवादिग्रन्थों में भी लक्षण दिये गये हैं -

दीपदर्शनमात्रेण प्रणश्यति तमो यथा ।।
सद्गुरोर्दर्शनाद्देवि! तथाज्ञानं विलीयते ।।कुलार्णवे १२/११६
सर्वलक्षणसम्पन्नो वेदशास्त्रविधानवित् ।।
सर्वोपायविधानज्ञस्त तत्त्वज्ञानी गुरुः स हि ।। वि.१३/१६

अग्रेऽपि - :

प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा ।।
शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः ।। कु.१३/१२८
पञ्चैते कार्यभूताः स्युः कारणं बोधको भवेत् ।।
पूर्णाभिषेककर्ता यो गुरुस्तस्यैव पादुका ।। कु.१३/१२९
चक्रसङ्केतकं मन्त्रपूजासङ्केतकं तथा ।
त्रितयं यो विजानाति स गुरुः परमोमतः ।।कु.१३/८१
आणवं कार्मणञ्चैव मायिकं च मलत्रयम् ।
यो विशोधयितुं शक्तः स गुरुः परमोमतः।। कु.१३/८३
आरक्तशुक्लमिश्राख्यचरणत्रयवासनाम् ।
यो जानाति महादेवि ! सगुरुः परमोमतः ।। कु.१३/८४
शिवादिक्षितिपर्य्यन्तं षट्त्रिंशत्तत्त्वनिर्णयम् ।
यो विजानाति तत्त्वेन स गुरुः परमोमतः।। कु.१३/८६
अन्तर्यागं बहिर्यागं कालज्ञानं स्थितं प्रिये ।
त्रिविधानं च यो वेत्ति सगुरुः परमोमतः।। कु.१३/८७
पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं स्थितिं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
शिरास्थिरोमसंख्यादि सगुरुर्नापरःप्रिये ।। कु.१३/८८
मूलादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं सप्ताम्भोजं कुलेषु यः।
जीवाचार फलं वेत्ति सगुरुर्नापरःप्रिये ।। कु.१३/९४
शिवादिगुरुपर्यन्तं पारम्पर्य क्रमेण यः।
अवाप्ततत्त्वसम्भारः स गुरुः परमो मतः।। कु.१३/९५
येन वा दर्शिते तत्त्वे तत्क्षणात्तन्मयो भवेत् ।
धन्यं तदुक्तमखिलं स गुरुः परमोमतः।। कु.१३/९६
ये दत्त्वा सहजानंदं हरन्तीन्द्रियजं सुखम् ।
सेव्यास्ते गुरवःशिष्यैरन्ये त्याज्याःप्रतारका।। कु.१३/९७

यः प्रसन्नः क्षणार्द्धेन मोक्षरत्नं प्रयच्छति ।
दुर्लभं तं विजानीयाद्भवसागरतारकम् ।। कु.१३/९८
यःक्षणेनात्मसामर्थ्यं स्वशिष्याय ददाति हि ।
क्रियायासादिरहितः स गुरुर्देवदुर्लभः ।। कु.१३/१००

अनेकों विवेचन श्रीगुरुविषयक हैं, शिष्य के भी लक्षण शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं । सर्वतोभावेन कालसीमा पर ध्यान न देकर सर्वात्मना समर्पणवृत्ति ही शिष्य है, इसलिये वह अनुशास्तुं योग्यः शिष्यः तत्परश्शिष्यः'' ॥२७॥

गुरुः सम्यक् परीक्ष्यैव शिष्यं सर्वगुणान्वितम् ॥
पूर्णदीक्षां प्रकुर्वीत नान्यथा तु कदाचन ॥28॥

गुरु भी अच्छी तरह परीक्षा करके ही सर्वगुणसम्पन्न शिष्य की पूर्णाभिषेक नाम्नी अन्तिम दीक्षा सम्पन्न करे, अन्यथा कभी भी संकोच से या भावुकता से मनोभावों से प्रेरित, प्रभावित होकर भी सुस्थिर रहे । शिष्य परीक्षण के उदाहरण हयग्रीव के सामने अगस्त्य एवं संवर्त तथा श्रीदत्तात्रेय के सामने परशुरामजी परीक्ष्य थे वे अपनी निष्ठा से सफल हुए और अगस्त्य नैगमिक प्रतिष्ठा के बाद आगमिक प्रतिष्ठा में मान्य हुए । पत्नी लोपामुद्रा ने भी जोकि अगस्त्य की पत्नी थीं फिर भी हयग्रीव की शरण में जाने का संकेत किया था । परशुरामजी भी श्रीरामभद्र के सामने आये तो परशुरामजी में आविष्ट भगवद्भाव श्रीराम के श्रीपूर्णविग्रह में विलीन हो गया । श्रीहत होकर परशुराम इन्हीं गुरु दत्तात्रेय की शरण में आये तभी पुनः श्रीमाता की परमकरुणामय कृपा से आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए । यह पूर्णाभिषेक-दीक्षा का महत्त्व एवं प्रभाव है जिसे श्री दत्तगुरु बार-बार संकेतित कर रहे हैं ॥२८॥

लोभात् प्रमादाद् भीत्या वा हीने कृत्वा त्विमां पराम् ॥
दीक्षां महापातकी स्याद् देवताशापमाप्नुयात् ॥29॥

यदि गुरु भावुकतावश मनोवेगों को नियन्त्रित न कर सकने के कारण लोभग्रस्त होकर,या असावधानी से परीक्षा किए बिना,या भय आदि बाध्यताओं से विचारशून्य,आचारहीन,उद्धत-स्वभाव तथा आचरण वाले मन पर नियन्त्रण न किये हुए आदि दोषों के रहने पर शिष्यवृद्धि से योगक्षेम निर्वाह होगा आदि धारणाओं से अगर हीन शिष्यों को वह पराशक्ति की दीक्षा दे देते हैं, तो वे महापातकी हो जाते हैं और देवता का शाप भी प्राप्त करते हैं ॥२९॥

राज्यं देयं शिरोदेयं देयं सर्वस्वमप्युत ॥
अन्यायेन न देया स्यान्महाश्रीषोडशाक्षरी ॥30॥

मन्त्र की, दीक्षा की चरम दुर्लभता श्रीगुरुदत्तात्रेय परशुरामजी कह रहे हैं जो आज भी ध्यान देने योग्य हैं, पालन करने योग्य हैं, वे कह रहे हैं राज्य दे दे अर्थात् समाज में अद्वितीय निर्विरोध प्रभाव व्याप्त हो तो भी दीक्षा देने में सावधान गुरु रहे और शिरो देयम् अर्थात् प्राणों का भी उतना महत्त्व नहीं है आत्मरूप होने से अदेय है भले ही प्राणव्यय हो जाय अर्थात् शिरोहानि हो जाय, पर दीक्षा देने में सावधान रहे,तथा सर्वस्व सभी कुछ सम्पत्ति के नाम जमीन, धन, (सर्वविध) शरीर,प्राण आदि सभी कुछ चला जाय पर दीक्षा देने में सावधान रहे । अन्याय से उपासना शास्त्रविरुद्ध गुरुमर्यादा के विरुद्ध श्री महाषोडशाक्षरी महामन्त्र का प्रक्षेप न करे॥३०॥

यत्राम्नायास्त्वशेषेण महाश्रीपादुकाऽपि च ॥
महाश्रीषोडशी चापि महावाक्यचतुष्टयम् ॥31॥

जिस पूर्णादीक्षा मे सम्पूर्णरूप में षडाम्नाय, श्रीमहापादुका भी साथ

ही महाश्रीषोडशी महामन्त्र भी और चार वेदों के चार आम्नाय पीठों के चार महावाक्य - प्रज्ञानं ब्रह्म (ऋग्वेद) पूर्वाम्नाय, अहं ब्रह्मास्मि (यजुर्वेद) दक्षिणाम्नाय, तत्त्वमसि (सामवेद) पश्चिमाम्नाय और चतुर्थ अयमात्मा ब्रह्म (अथर्ववेद) उत्तराम्नाय इन सभी की - ॥ ३१॥

स्वात्मनः पादुका चापि दीयते यत्र सा परा ॥
दीक्षा सर्वोत्तमा पूर्णा न देयाऽन्यायतः क्वचित् ॥३2॥

अपनी स्वयं की पादुका भी - जिस दीक्षा में उस परा शक्ति की पादुका दी जाती है, वही दीक्षा परा है, सर्वोत्तमा है, और पूर्णा है उसे अन्याय से कहीं भी नहीं देना चाहिये ॥३२॥

पादुका के स्वरूप का परिचय उपासनातत्त्व में बड़ा ही रहस्यात्मक एवं रोमाञ्चक दिया गया है । श्रीगुरुकृपा से जितना उपलब्ध हुआ है, वह श्रीगुरुवर्य के श्री चरणों में पाठ सुनाने जैसा है-ः

श्रीललितोपाख्यान- ३९-५८वाँ श्लोक यथा-ः

कोटिकोटिमहादानात् - कोटिकोटिमहाव्रतात् ।
कोटिकोटियज्ञात्परा श्रीपादुका स्मृतिः।।

(१) **सर्वप्रसिद्ध प्रार्थना है -**

ऐंकार ह्रींकाररहस्ययुक्त, श्रींकारगूढार्थमहाविभूत्या ।।
ओंकारमर्मप्रतिपादिनीभ्यां नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।।

(२) **महार्थमञ्जरी में - परापरात्मनः स्वात्मनः परानन्दमयी स्वव्यतिरेककवलनोद्युक्तापराशक्तिः पादुकेति गीयते ।।**

(३) **तेजोमयीं महाविद्यां शेखराञ्चित मस्तकाम् ।**
रक्तां चतुर्भुजां वन्दे श्रीविद्यागुरुपादुकाम् ।।

(४) **स्वप्रकाशशिवमूर्त्तिरेकिका तद्विमर्शतनुरेकिका तयोः ।**
सामरस्यवपुरिष्यते परा परशिवात्मनो गुरोः ।।

(स्वच्छन्द तंत्र।।)

कुलार्णवे १२ श उल्लासे शिवोक्तिः देवीं प्रति -: यथा -:

वाग्भवामूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृताः ।
एवं कुलार्णवे ज्ञानं पादुकायां प्रतिष्ठितम् ।। कु.१२/३
कोटिकोटिमहादानात्, कोटिकोटिमहाव्रतात् ।।
कोटिकोटिमहायज्ञात् पराश्रीपादुकास्मृतिः ।।कु.१२/४
कोटिकोटि मन्त्रजापात् कोटितीर्थावगाहनात् ।।
कोटिदेवार्चनाद्देवि परा श्री पादुका स्मृतिः ।। कु.१२/५
महारोगे महोत्पाते महादोषे महाभये ।।
महापदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका ।। कु.१२/६
दुराचारे दुरालापे दुःसङ्गे दुष्परिग्रहे ।।
दुराचारे च दुर्बुद्धौ स्मृता रक्षति पादुका ।। कु.१२/७
तेनाधीतं स्मृतं ज्ञातं, इष्टं दत्तञ्च पूजितम् ।।
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य सदा श्रीपादुकास्मृतिः ।। कु.१२/८
सकृत् श्रीपादुकां देवि ! यो वाजपति भक्तितः ।।
स सर्वपापरहितः प्राप्नोति परमां गतिम् ।। कु.१२/९
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि भक्त्या स्मरति पादुकाम् ।।
अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षान् लभते सः ।। कु.१२/१०

श्रीमहादेव-देवी संवाद में वर्णित दिव्यमङ्गलाध्यान में भी **अनेकजन्मसंसिद्धसुकृताराध्य पादुकाम् - १/२(५६) और भी श्रीगुरोः पादुकामूर्ध्नि श्रीचक्रं हृदिदेवता । श्रीविद्या यस्य जिह्वाग्रे स साक्षात्परमः शिवः ।। १०४ ।।**

अनन्तजन्मसंसिद्ध्या प्राप्यते नान्यथा क्वचित् ।।
गुरुः परशिवाकारः सर्वलक्षणसंयुतः ।। 33 ।।

श्रीगुरु का अनुग्रह,पादुका और पूर्णादीक्षा अनन्तजन्मों की संसिद्धिवशात् यह प्राप्ति होती है,बिना इसके कहीं भी नहीं । मूल

तत्त्व श्रीगुरु हैं जो सभी लक्षणों से संयुत हैं वे परशिवाकार हैं।३३। कुलार्णव तन्त्र में १३दशवें उल्लास में - अग्रिम श्लोक में गुरुलक्षण में-

तृष्णाहीनो दयायुक्तस्तन्त्रविद् गुरुरुत्तमः ॥
द्विजेष्वाद्यो हि सुश्रेष्ठः समानो वा गुरुर्भवेत् ॥ 34 ॥

भगवान् दत्तात्रेय सद्गुरु जो गुरु ही हैं वे गुरु का रूप बता रहे हैं, कि कैसा गुरु हो उनके द्वारा कहे गये लक्षण सर्वशास्त्र प्रतिपादित हैं । उन्होंने कहा भार्गव ! जो तृष्णाहीन हो, दयायुक्त हो,तन्त्र,मन्त्र,यन्त्र के तत्त्वों के अनुभव से रहस्यविद् हो ऐसा गुरु उत्तम है,द्विजों में आद्य ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है । अथवा समान स्तर का गुरु हो ।।३४।।

कुलार्णव के १३वें उल्लास में विस्तार से गुरुलक्षण भगवान् शिव द्वारा कहे गये हैं ।

सर्वाहम्भावसन्तुष्टो निर्द्वन्द्वो नियतव्रतः ।। कु.१३/४८
अलोलुपो ह्यसङ्गश्चापक्षपाती विचक्षणः ।। कु.१३/४९
सद्भक्तवत्सलो धीरः कृपालुः स्मितपूर्णवाक् ।। कु.१३/४४
भक्तप्रियः सदोदारो गम्भीरः शिष्टसाधकः ।। कु.१३/४५
शिवोऽहमाकृतिर्देवि नर दृग्गोचरो न हि ।
तस्मात् श्रीगुरुरूपेण शिष्यान् रक्षति धार्मिकान्।। कु.१३/५३
अत्रिनेत्रशिवः साक्षादचतुर्बाहुरच्युतः ।
अचतुर्वदनो ब्रह्मा, श्रीगुरुः कथितः प्रिये ।।कु.१३/५७
सर्वानुग्रहकर्तृत्वादीश्वरः करुणानिधिः ।।
आचार्यरूपमास्थाय दीक्षया मोक्षयेत् पशून् ।। कु.१३/६३
(इति अतिविस्तृत वर्णन शास्त्रों में किया गया है ।)

गृहस्थः प्रथमाच्छ्रेष्ठो वनस्थश्च तथोत्तमः ॥
यतिः सर्वोत्तमोज्ञेयः तस्माद्दीक्षा महाफला ॥35॥

ब्रह्मचारी से गृहस्थ-उत्तम है, ब्रह्मचारी से वानप्रस्थी उत्तम है । इनमें यति (सन्यासी) सर्वोत्तम है,वर्णों में और आश्रमों में इसलिये दीक्षा यदि परिव्राट् सन्यासी से प्राप्त दीक्षा हो तो महाफलवती होती है ॥३५ ॥

इति श्रुत्वा गुरुवचो रामः पप्रच्छ संश्रयात् ॥
भगवन्नाथ पश्यामि यतिः स्याद्वै गुरु कथम् ॥36॥

श्रीगुरु द्वारा यति से प्राप्त दीक्षा श्रेष्ठ है, यह सुनकर राम ने नम्रता से प्रश्न किया । भगवन् ! यति को मैं देखता हूँ वह गुरु कैसे हो सकता है?यह समझ में नहीं आ रहा है; क्योंकि वह ॥३६॥

येन त्यक्तो वेदराशिः गायत्री चाश्रमक्रिया ॥
उपासनाऽपित्यक्तातो गुरुः सोऽत्रकथं भवेत् ॥37॥

भगवन् ! जिस यति ने वेदराशि का त्याग किया हो,और सर्वस्वरूपागायत्री को त्याग दिया हो तथा आश्रम के मर्यादा के विधानों को त्याग दिया हो, कोई भी उपासना का त्याग कर रहा हो, अतः वह इस दीक्षाप्रदान में किस प्रकार गुरु हो सकता है ॥३७॥

इति श्रुत्वा पुनः प्राह दत्तात्रेयो भृगूद्वहम् ॥
उपासनेयं न त्याज्या सर्वैरपि शुभार्थिभिः ॥ 38 ॥

परशुराम जी का प्रश्न सुनकर भार्गव परशुराम से पुनः बोले, कि सर्वत्यागी होने पर भी इस षोडशी उपासना का त्याग नहीं करना चाहिये सभी वर्ण और सभी आश्रमी जो शुभ चाहते हैं वे संन्यासी ही क्यों न हों ॥३८॥

यतिर्वाप्यातुरो वापि नोपास्तिं संत्यजेत् क्वचित् ॥
यथाशक्त्यातु कर्तव्यं न्यास पूजा जपादिकम् ॥ 39॥

यति सर्वत्यागी संन्यासी या आतुर हो किसी भी अवस्था में हो वह कभी भी कहीं भी उपासना का त्याग न करे । उन लोगों को यथाशक्तिन्यास, पूजा,जपादि करना ही चाहिये । यह इस उपासना की मर्यादा है ॥ ३९ ॥

मूलविद्या जपो वापि कर्तव्यः शक्तितः खलु ॥
अज्ञानान्मोहतो वापि विद्योपास्तिं त्यजेत्तु यः ॥40॥

सभी को दीक्षितों को किसी भी वर्ण या आश्रम के हों उन्हें शक्तिभर मूलविद्या का जप करना ही चाहिए । जो अज्ञान से अर्थात् पद्धति को न जानने से अथवा मोहग्रस्त होकर मूलविद्या की उपासना का त्याग करता है ॥ ४० ॥

स विशेदन्धतामिस्रं न तस्यास्ति पुनर्गतिः ॥
संन्यासिनापि त्यक्तव्यं सर्वं बन्धात्मना स्थितम् ॥41॥

वह अन्धतामिस्र नरक में पड़ा रहता है, उसका पुनः उद्धार नहीं होता जो संन्यासी है सर्वत्यागी है, उसे भी त्याग नहीं करना है । इस उपासना के मोक्षप्रद होने से इसका त्याग नहीं वास्तव में इसके अतिरिक्त सभी बन्धात्मक ही है ॥ ४१ ॥

इदं मोक्षात्मकं राम श्रीविद्योपासनंतु यत् ॥
न तत् त्यक्तुं समुचितं ब्राह्मण्यमिव वै यतः ॥ 42 ॥

हे परशुराम! परन्तु यह श्री विद्योपासन मोक्षात्मक है, इसका त्याग सर्वथा उचित नहीं चाहे वह सर्वत्यागी संन्यासी ही क्यों न हो जैसे ब्राह्मण्यभाव तदनुसार कर्म कभी त्याज्य नहीं होते वैसे ही यह भी ॥४२॥

तस्माद्यतिर्वाप्यन्यो वा न विद्यां तु परित्यजेत् ॥
तस्माद्गुरुः श्रेष्ठतमो यतिर्विद्याविशारदः ॥43॥

इसलिये यति हो या और कोई भी हो यह मूलविद्या त्याज्य नहीं है । इस कारण इस विद्या में विशारद,तत्त्वदर्शी, यति सर्वश्रेष्ठ गुरु है ॥ यह अनुपम मोक्षविद्या है,उपासनाओं में श्रेष्ठतमा है॥ अनन्तजन्मों के सुकृतों से सम्प्राप्त सद्गुरु से प्राप्त होती है ॥४३॥

त्रिपुरातत्त्वविज्ञानी तत्राप्युत्तम उच्यते ॥
शिष्यो हि कुशलो भक्ति श्रद्धायुक्तो दृढो भवेत् ॥44॥

श्री विद्याविशारद,यति श्रेष्ठतम गुरु है, परन्तु त्रिपुरातत्त्वविज्ञान से परिपूर्ण कोई भी हो वह सर्वोपरि तत्त्वविद् ही है, जो शिष्य रूप में उसके निकट जावे, तो कुशल (सेवा में उपदेश ग्रहण करने आदि में) तथा भक्ति-श्रद्धाभावों से सम्पन्न होकर दृढ़निश्चयी होना चाहिये । इस विषय में भगवान् हयग्रीव जी भी अगस्त्यजी से त्रिशतीस्तोत्रमाहात्म्य (उत्तरार्ध) में स्पष्ट कह रहे हैं - ...

ये च जानन्ति लोकेऽस्मिन् श्री विद्याचक्रवेदिनः ।।१/२।।
सामान्यवेदिनस्ते वै विशेषज्ञोऽतिदुर्लभः ।।
स्वयं विद्याविशेषज्ञो विशेषज्ञं समर्चयेत् ।। ७७ ।।
तस्मैदेयं ततो ग्राह्यं श्रीविद्या चक्रवेदिना ।।१/२।।

भगवान् आद्यशङ्कराचार्य जी "विस्तृतमानसपूजा में अपने वेद प्रतिपाद्य अद्वैतसिद्धान्त प्रतिपादन की भावभूमि में उपासनाक्षेत्र में भी उसी अद्वैततत्त्व को ज्ञान प्रपूरित प्रतिपादनों के मध्य माँ भगवती से निवेदन कर रहे हैं, साथ ही स्निग्ध-शिष्यों को भी किये गए सनातन बैदिकतत्त्व का मुख्य लक्ष्य कौन सा है सुस्पष्ट

संकेत कर रहे हैं । जो भगवान्दत्त जिस भाव को निश्चितरूप से स्वयं पर सुप्रतिष्ठित करने की अनिवार्यता बता रहे हैं । "भक्ति श्रद्धायुक्तोदृढोभवेत्" श्री मदाद्यशङ्कराचार्य जी उक्ति यथा -

यस्त्वां पश्यति पार्वति ! प्रतिदिनं ध्यानेन तेजोमयीम् , -
मन्ये सुन्दरि ! तत्त्वमेतदखिलं वेदेषु निष्ठां गतम् ।।
यस्तस्मिन् समये तवार्चन विधावानन्दसान्द्राशयो -
यातोऽहं तदभिन्नतां परशिवे ! सोऽयं प्रसादस्तव ।।११७।।

इस उपासना का परिणाम भौतिक और आध्यात्मिक आन्तर जगत् में कैसे-कैसे भाव उमड़ते हैं, वे भी स्वयं में प्रतिष्ठापनीय हैं । "जो " श्रेष्ठतम "तथा" त्रिपुरातत्त्व विज्ञानी कहा उसे श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी ने कहा है -

यथा-:

परमामृतमत्तसुन्दरीगणमध्यस्थितमर्कभासुरम् ।।
परमामृतघूर्णितेक्षणं किमपि ज्योतिरूपास्महे परम् ।।११३।।
दृश्यते तव मुखाम्बुजं शिवे ! श्रूयते स्फुटमनाहतध्वनिः ।।
अर्चने तव गिरामगोचरे, न प्रयाति विषयान्तरं मनः ।।११४।।
त्वन्मुखाम्बुज विलोकनोल्लसत् प्रेमनिश्चल विलोचनद्वयीम् ।।
उन्मनीमुपगतां सभामिमां भावयामि परमेशि तावकीम् ।।११५।।

उनकी कामना सर्वग्राह्य त्रिपुरोपासना में कैसी होनी चाहिये - यथा -

चक्षुः पश्यतु नेह किञ्चन परं घ्राणं न वा जिघ्रतु,
श्रोत्रं हन्त शृणोतु न त्वगपिन स्पर्शं समालम्बताम् ।।
जिह्वा वेत्तु न वा रसं मम परं युष्मत्स्वरूपामृते,
नित्यानन्द विघूर्णमान नयने नित्यं मनो मज्जतु ।।११६।।

सौन्दर्य लहरी के ९९ वें पद्य में -

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नोविहरते,
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ।।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाश व्यतिकरः ।।
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद् भजनवान् ।।९९।।

श्रद्धाभक्तिविहीनस्तु सर्वथा नहिएव सः ॥
श्रद्धालुर्भक्तिसंयुक्तः - आलस्यपरिवर्जितः॥45॥

वह साधक नामधारी, शिष्य का अभिनय करने वाला श्रद्धा भक्ति से सम्पूर्ण रूप से विहीन किसी भी प्रकार उपदेश योग्य नहीं हे । जो आलस्य, प्रमादादि से दोषों से पूर्णरहित है, तथा श्रद्धाभक्ति से संयुक्त है - वह योग्य है - आगे के श्लोक में - ॥४५॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि विद्यार्हो भार्गवेरितः ॥
कालस्तु शुभवेलाख्यो दोषेण परिवर्जितः ॥46॥

हे भार्गव! जो श्रद्धालु है, भक्ति से (इष्ट में, गुरु में तथा मन्त्र में तथा - पद्धति में) संयुक्त है आलस्यादि दोषों से पूर्णतया रहित है यदि उसमें और लक्षण न भी हों तो भी हे भार्गव ! वह श्रद्धा, भक्ति के कारण इस श्रीविद्या के योग्य है । ऐसे साधक के लिये शुभवेलायुक्तकालनिश्चय, दोष से पूर्णरहित हो ऐसा निश्चित करें ॥४६॥

विषुवायनमुख्यं वा पर्वागमनिरूपितम् ॥
अथवा श्रीगुरुस्तुष्टो यदा कालः स उत्तमः ॥ 47 ॥

दीक्षा के उपयुक्त काल व्यापकरूप से जो काल ज्योतिष में है, तथा मन्त्र जैसी आध्यात्मिक-ऊर्जा के प्राप्त करने का काल है, जिसे आगम स्वीकार करता है, उसे भी दत्तगुरु बता रहे हैं - यह काल समस्तविश्व में व्याप्त रहता है, वह विषुव संक्रान्ति - इसकी

परिभाषा शास्त्रों में "प्राणात्ममनसां संयोगो विषुवम् " यह व्यष्टि गत और समष्टिगत होता है । इसी प्रकार व्यापक विषुवसंयोग में कालान्तर्गत संख्यासीमितकाल में व्यष्टि और समष्टि दोनों में अयन संक्रान्ति" होती है । तथा अयनसंक्रान्ति के कर्क,और मकर दो रूप हैं ।

विषुवसंक्रान्ति ज्योतिष निर्देश से दो हैं - एक "मेष संक्रान्ति" दक्षविषुव संक्रान्ति है क्योंकि "मेष" से चतुर्थ राशि कर्क है; जो दक्षिणायन-संक्रान्ति है तथा दूसरी विषुव-संक्रान्ति जो "तुला" संक्रान्ति है, यह उत्तरायण-संक्रान्ति है, जिसमें तुला से चतुर्थ राशि "मकर" राशि जो अयनसंक्रान्ति में उत्तरायण है, यह काल सन्धि विश्वव्यापी है तथा व्यक्ति के जीवन में भी असर डालती है विषुव-संक्रान्ति के मासों (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ आषाढ़) में वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं का समय इन मासों के नियम इनके अनुसार इनमें समूहगत और व्यक्तिगत आचार-दिनचर्या आदि के निर्देश धर्मशास्त्रों और ज्योतिषशास्त्र में दीर्घकाल से चले आ रहे हैं। इन नियमों का पालन विश्व में भारतवर्ष में सामाजिक,व्यक्तिगतरूप से पीढ़ियों से चला आ रहा है जिसमें मुहूर्त चिन्तन द्वारा मास,नक्षत्र तथा लग्न के निश्चयगर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक किये जाते हैं । वैसे ही भवन,मंदिरों,कूप,तालाब आदि में तथा प्रतिष्ठा एवं दीक्षा आदि में निश्चित किये जाते हैं, यही श्रीदत्तगुरु ने निर्देश किया । फिर सामान्य-विधान से विशेष-विधान प्रमुख होता है, उस आधार पर उन्होंने कहा कि इनके विधानानुसार अथवा **श्रीगुरु** के शिष्य के आचरण से सन्तुष्ट होने पर भगवती की अन्तःप्रेरणा से जैसी प्रेरणा कालमुहूर्त निरपेक्ष उदित हो तो वह काल उत्तम माना जाता है, उसमें दीक्षित होने पर कृतकृत्यता का श्रीगणेश

आरम्भ हो जाता है । इस विधान में सर्वप्रमुख ध्येय श्रीगुरु ही होते हैं, उद्वासना (पूर्तिपर्यन्त) होते तक ॥ ४७॥

तत्तद्यन्त्रेषु कलशं संस्थाप्य जलपूरितम् ॥
वस्त्रपल्लवरत्नाढ्यं तत्तद् यन्त्रसुशोभितम् ॥48॥

पूर्ण दीक्षा के लिये श्रीगुरुवर्य ने कहा उन उन विहित यन्त्रों में कलश की प्रतिष्ठा करे उसे पञ्चपल्लव, वस्त्रादि से वेष्टित करे ॥४८॥

(विशेष-यह पूर्णाभिषेकविधि- उन-उन तन्त्रग्रन्थों में उन-उन देवताओं के लिये वर्णित मिलती है । श्रीविद्यादीक्षा में "श्री विद्यार्णव" "तन्त्रराज" आदि ग्रन्थों में विस्तृतरूपेण मिलती है । इन ग्रन्थों से परिचय पाया जा सकता है । पूज्य शङ्कराचार्य जी इसी पद्धति के ही अनुसार भगवती की अन्तःप्रेरणा से सुपात्र शिष्यों को दीक्षित करते हैं ॥)

देवतां सपरिवारामावाह्य तत्र पूजयेत् ॥
तत्तद्यन्त्रेषु सम्पूज्य देवतायुक्तवर्त्मना ॥ 49 ॥

उस कलश में सपरिवार इष्टदेवता का आवाहन करके पूजन करें । पहिले से जो-जो यन्त्रों में स्थापित कलशों में आवाहित देवताओं (परिवारके) का दीक्षा-पद्धति में कहे गये मार्ग से विधि पूर्वक पूजन आचार्य करे ॥४९॥

गुरुः प्रसन्नहृदय उल्लासोल्लसितान्तरः ॥
शिष्यमाहूय संस्नाप्य सिद्धान्तं विनिवेद्य च ॥50॥

गुरु जब भगवती से तादात्म्य होने से अन्तर्जगत् के मन्त्र से समुद्भूत उल्लास से उल्लसित हो गए हों, तब प्रसन्नहृदय से शिष्य को बुलाकर उसे पद्धति में निर्दिष्ट विशिष्टस्नान द्वारा स्नान करवाकर और देवता से सम्बद्ध सिद्धान्त का उपदेश करके - ॥५०॥

साङ्गान् मन्त्रानुपदिशेत सम्प्रदायं प्रवर्तयेत् ॥
दृष्टिबन्धनपूर्वं तु मुख्यमन्त्रं निरूपयेत् ॥51॥

सभी आवाहित परिवार देवताओं सहित सर्वतोभद्रमण्डलादि में आवाहित देवों का पूजन,हवनादि सम्पन्न करके देवता के अङ्गदेवों के मन्त्रों का उपदेश षडाम्नाय के मन्त्रों का उपदेश करके सम्प्रदायत्रय में (श्रीविद्या में तीन सम्प्रदाय हैं १ दक्षिणामूर्ति, २ आनन्दभैरव, ३ हयग्रीव) जिस सम्प्रदाय में श्रीगुरु है, उसका परिचय शिष्य को दें। फिर शिष्य के नेत्रों में पट्टीबांध कर -उसके सामने मुख्यमन्त्र (पञ्चदशी) मूलविद्या का निरूपण करें।) शिष्य के कल्याण एवं उसके आध्यात्मिक-शरीर में सशक्तिक आविष्ट होने की भगवती से प्रार्थना करें॥ ५१॥

पूर्णदीक्षाक्रमेनैव मन्त्रे कार्या भृगूद्वह ॥
अन्यमन्त्रं केवलं चाप्यशक्ते समुपादिशेत् ॥52॥

हे भार्गव ! पूर्णदीक्षा का क्रम जो पद्धतियों में है,और उसका पालन गुरु करते हैं,तो गुरु भी उसी क्रम से मन्त्र में पूर्णदीक्षा विधान से ही सम्पन्न करे। अन्य अङ्गोंपाङ्ग तथा परिवार देवताओं के मन्त्र केवल जो अशक्त हैं,सामान्यवृत्ति का है, उसे उपदिष्ट करें॥ ५२॥ पूर्णदीक्षा में जो-जो मन्त्र हैं उन्हें षोडशी के साथ ही दे यह भाव है।

न षोडशी कदाचिद्वा केवलमुपदेशयेत् ॥
दीक्षां विना यस्तु गुरुः षोडशीं पादुकां तथा ॥53॥

कभी भी केवल षोडशीमन्त्र मात्र का उपदेश न करें। बिना पूर्णदीक्षा के क्रम के बिना यदि कर्मकाण्डविधि में हवनादि कार्य तथा शिष्य-शोधन कार्य किये बिना,षडध्वशोधन किये बिना षडाम्नायादि के उपदेश के बिना केवल षोडशी तथा पादुका का उपदेश जो गुरु करता है, वह ॥५४॥

महावाक्यान्यपि तथा शिष्यायोपदिशेत् क्वचित् ॥
स याति नरकान् घोरान् तेनशिष्येण संयुतः ॥ 54॥

तथा चारों वेदोक्त महावाक्यों को भी बिना पूर्ण दीक्षाविधान सम्पन्न किये ही कहीं भी कभी भी शिष्य को सामान्य समझकर स्वयं सर्वसमर्थ समझता हुआ जो गुरु ऐसा करता है,तो घोर नरकों में उसी शिष्य के साथ संयुक्त होकर जाता है । और दीर्घकाल तक वहीं पड़ा-पड़ा यातनाएँ भोगता रहता है । उपासना में, साधना में अवहेलना स्वप्न में भी न करे यही श्रीदत्तगुरु सुस्पष्ट निर्देश दे रहे हैं । इससे इस पूर्णदीक्षा की षोडशी मन्त्रादि की दुर्लभ महत्ता प्रकट होती है ॥५४ ॥

एतत्त्रयं समानार्थमात्मबन्धविनाशनम् ॥
या षोडशी सैव महा, पादुका सम्प्रकीर्तिता ॥55॥

पूर्णदीक्षा में महावाक्य षोडशीमहामन्त्र और तीसरी- महापादुका ये तीन अत्यन्त दुर्लभ आत्मरूपतत्त्व पूर्णतया एक हैं, नाम तीन हैं । रूप भी तीन हैं परन्तु इनका सत्,चिद्,आनन्दमय आत्मत्व एक ही है । ये एक दूसरे के पूरक हैं और अभेदरूप से एकसाथ प्राप्त होते हैं, इन्हें नामरूप बहिर्दृष्टि से अलग-अलग करने वाला आत्मघाती होता है, जो षोडशीमहामन्त्र है,वही महापादुका कही गई है - ये तीनों ही आत्मा के अनादि बन्धन के विनाशक हैं ॥५५॥

या पादुका सैव महावाक्यानीत्यवधारय ॥
प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्राद्यमहं ब्रह्मास्मितत्परम् ॥ 56 ॥

जो महापादुका है,वही चार वैदिक महावाक्य हैं,यह तो सुनिश्चित ही जानो । वे महावाक्य ये हैं - "प्रज्ञानं ब्रह्म" ऋग्वेद पूर्वाम्नाय, यह प्रथम है, दूसरा-"अहं ब्रह्मास्मि" यजुर्वेद, दक्षिणाम्नाय,-॥५६॥

तृतीयं तत्त्वमस्यन्ते ऽ यमात्मा ब्रह्म कीर्तितम् ॥
एतन्महावाक्यमुक्तं चतुर्वेदसमुद्भवम् ॥57॥

तीसरा महावाक्य है "तत्त्वमसि" सामवेद, पश्चिमाम्नाय, तथा अन्तिम महावाक्य है- अयमात्मा ब्रह्म" अथर्ववेद उत्तराम्नाय, ये चार वेदोक्त महावाक्य कहे गये हैं ; जिनका वाच्यार्थ जगत् आत्मा एवं परमात्मा का विचार तथा लक्ष्यार्थ आत्मपरमात्म ऐक्य है, यही षोडशीमहाविद्या का सामरस्य है । तथा इसका ही साधन पूर्णदीक्षा के द्वारा श्रीगुरु के अनुशासन में किया जाता है। "साशाम्भवीस्फुरतु कापिममाप्यवस्था, यस्यां गुरोश्चरण-पङ्कजमेवलभ्यम् !

एतद्योगेन दीक्षाऽपि चतुर्वेदमयी भवेत् ॥
अतएव पूर्णदीक्षा भवेत् सर्वोत्तमोत्तमा ॥ 58 ॥

इन चारों महावाक्यों के योग से यह पूर्णदीक्षा चतुर्वेदमयी है- यहाँ (मयी=मयट्)प्रत्यय प्रचुरता के अभिप्राय से है, अर्थात् जैसे वेद का मुख्य प्रतिपाद्य लक्ष्य "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"नेह नानास्ति किञ्चन है, इसलिये यह पूर्णदीक्षा सभी दीक्षारूपों में सर्वोत्तम से भी सर्व उत्तम है, इससे आगे कोई भी नहीं है ॥ ५८ ॥

तस्मादेवं क्रमाद् दीक्षामासाद्योपासनं चरेत् ॥
अदीक्षयोपासनं च महापापाय वैभवेत् ॥ 59 ॥

इन्हीं सभी आन्तरिक स्थितियों के कारण परशुराम ! पूर्णदीक्षा श्रीसद्गुरु से प्राप्तकर उन्हीं गुरु की अन्तःप्रेरणा से ही तदनन्तर उपासना आरम्भ करे । बिना दीक्षा के यदि अमर्यादित मनोल्लास से प्रेरित होकर कोई भी उपासना करने लगेगा, वह केवल उपासनाभास होगा, यथार्थ नहीं तथा महापाप के लिये ही वह उपासनानाम्नी क्रिया होगी । यह सावधानी रखना चाहिये ॥५९॥

एवं दीक्षां समासाद्योपासनत्याग उच्यते ॥
तस्माद्दीक्षां समासाद्य प्रमादान्मोहतोऽपि वा ॥६०॥

इस प्रकार पूर्णाभिषेकदीक्षा जो सर्वाम्नायमयी, चतुर्वेदमहावाक्यमयी है एवं श्री षोडशीमहामन्त्रमयी है, शिवशक्तिसामरस्यमयी है । फलस्वरूप श्रीगुरु से ऐक्यमयी है ऐसी उपासना में तन्मय शिष्य भी तद्रूप हो जाता है । देवदुर्लभ अनन्तजन्मसम्पादित पुण्यफलस्वरूप प्राप्त तत्त्व की उपासना का महत्त्व न समझने की असावधानी और घर कार्यों से सामाजिक जिम्मेदारी होने से समयाभावात्मक मोहादि उच्चाटनों से दीक्षा प्राप्त करके भी जो उपासना त्याग किए रहते हैं तथा हमें मन्त्र मिल ही गया है, अब कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है, इत्यादि उपेक्षापूर्ण भावों से, सामाजिक कार्यों को ही सम्पन्न करना कर्म ही पूजा है, इत्यादि प्रकारों के मनःप्रिय अज्ञानपूर्ण, अदूरदर्शीधारणाग्रस्तान्तःकरण से उपासनोपेक्षा - करने का परिणाम महाअनर्थ-कारी है ॥ ६० ॥

उपासनं परित्यज्य महापापमवाप्नुयात् ॥
इति ते राम सम्प्रोक्तं यत्पृष्टं तत्क्रमेण वै ॥ ६१ ॥

ऐसी उपासना का परित्याग करके दीक्षित होकर भी साधक नामधारी मनुष्य महा-पाप को ही प्राप्त होकर अधोगति प्राप्त करता है । इस प्रकार हे परशुराम ! तुमने जो जिज्ञासा हमसे की थी उसका हमने क्रमपूर्वक विवेचन किया, तथा आवश्यककर्तव्यता का भी विवेचन किया !!! - ॥ ६१ ॥

श्री त्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे दीक्षाप्रतिपादनं, महापाप विवेचनं नाम तृतीयोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

।। श्रीमज्जगद्गुरवे नमः ।।

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

ॐ ललिता/त्रिपुरार्चान्तेऽहर्निशंल्लोकजागरशङ्खध्माम् ॥
स्मारं स्मारं गुरोर्मूर्तिंध्याये तत्पादपङ्कजम् ॥
इति श्रुत्वाऽत्रितनयभाषितं भृगुनन्दनः ॥
प्रणम्यभूयः पप्रच्छ जामदग्न्यः प्रसन्नधीः ॥1॥

भृगुनन्दन, भार्गव, जामदग्न्य-परशुराम ने श्रीअत्रि-अनसूयानन्दन श्रीदत्तात्रेय सद्गुरु से पूर्णदीक्षा, महाषोडशी, महावाक्य, षडाम्नाय और श्रीगुरुपादुका का अलौकिक माहात्म्य एवं साधक के लिये चरमउपलब्धि का प्रतिपादन सुन-सुनकर पुनः उन्होंने प्रणाम करके प्रसन्नान्तःकरण एवं प्रसन्नबुद्धि से प्रेरित होकर आगे की जिज्ञासा की ॥१॥

भगवन् ! भवता प्रोक्तं संश्रुतं तत्र सर्वथा ॥
सन्देहो मे महान् जातो दुःशङ्कं स्यादुपासनम् ॥2॥

हे भगवन् ! आपके द्वारा विस्तृतरूप से तन्त्रमार्ग के गंभीर रहस्यों का विवरण सुना, पूर्णतया हृदयङ्गम हुआ, पर सुनकर मुझे बड़ा सन्देह हो गया है, कि यह उपासना, किस आधारतन्त्र के आश्रय को लेकर हो, क्योंकि अनेकों प्रकार हैं ॥२॥

अनेकत्वात्तु तन्त्राणां कर्मानुष्ठान भेदनात् ॥
तत्तत्कर्माननुष्ठान प्रत्यवायश्रुतेरपि ॥ 3 ॥

तन्त्र अनेकों हैं, उन तन्त्रों में कहे गये कर्मानुष्ठान भी अनेकों हैं और उन-उन तन्त्रों को अत्यावश्यक भी बताया गया है यदि उनका अनुष्ठान न किया जाय तो प्रत्यवाय भी होता है, ऐसा कथन है । आचार्यगण कहते भी हैं ? ॥३॥

सर्वार्थस्योपसंक्षेपो मन्दबुद्धेः कथं भवेत् ॥
क्वचित्तन्त्रेषु विस्तारः क्वचिदत्यन्तसंग्रहः ॥ 4 ॥

सभी तन्त्रोक्त विधानों का संक्षिप्तरूप मन्दबुद्धि से किस प्रकार हो सकेगा, क्योंकि कहीं-कहीं तन्त्रों में बड़े विस्तार हैं कहीं तन्त्रों में अत्यन्त संक्षेप हैं, कौन ग्राह्य है?कौन सा अग्राह्य है ? ॥४॥

कथमेकेन तत्सर्वंकर्तुं शक्यं भवेद्वद ॥
उपासनैक्ये चाङ्गानामुपक्षेपो हि युज्यते ॥ 5॥

किस प्रकार एक विधान और सभी कुछ तन्त्रविधानों का समन्वय शक्य होगा, इस विषय में बतावें । उपासना की एकता में उसके अङ्गोपाङ्गों का संयोग जोड़ा जा सकता है ॥५॥

दैवतेक्ये ह्युपास्त्यैक्यं न सन्देहोऽत्र विद्यते ॥
मन्त्रभेदेऽपि नो भेदः, क्वचिद्भेदो निरूपितः ॥6॥

देवता एक है तो उपासना की एकता में इस विषय में सन्देह नहीं है । मन्त्र में भेद होने पर भी उसमें भेद नहीं है क्योंकि देवता एक ही है । परन्तु कहीं भेद का भी निरूपण किया गया है ॥६॥

कथमत्र प्रकर्तव्यमशक्यं भाति मे गुरो ॥
पुंभेदेनापि तर्कस्य भेदाज्ज्ञातुं न शक्यते ॥ 7 ॥

हे गुरुवर्य! किस प्रकार इस विषय में तन्त्रों एवं विधानों में एकता है ऐसा समझ में नहीं आता है । पुरुषभेद पर भी तर्क किया जाय तो भेदों के रहते जाना नहीं जा सकता ॥७॥

तस्मादेतन्ममाचक्ष्व प्रविविच्यातिसंस्फुटम् ॥
इत्यापृष्टो दत्तगुरुर्गूढ प्रश्नेन तोषितः ॥ 8 ॥

इस कारण भगवन् ! आप मुझे समझावें, अत्यन्त सुस्पष्टरूप से,विशेषरूप से पूरा विवेचन कर दें । इस प्रकार परशुरामजी द्वारा पूछे जाने पर वे दत्तगुरु इस गूढप्रश्न से सन्तुष्ट हुए ॥८॥

प्राह रामं जामदग्न्यं संश्लाध्य प्रश्नमादितः ॥
रामसम्यक् त्वया पृष्टमेतत्सर्वार्थसाधनम् ॥ 9 ॥

वे भगवान् दत्तात्रेय जमदग्निपुत्र परशुराम के प्रश्न की प्रशंसा कर बोले - राम! तुमने सभी के सम्भावित सन्देहों के समाधानार्थ जो प्रश्न किया है वह सभी का समाधान करने वाला है ॥ ९ ॥

लोकानामुपकाराय तव प्रश्नो भविष्यति ॥
अत्र मुह्यन्ति बहवोऽप्यागमार्थसुवेदिनः ॥ 10 ॥

तुमने जो प्रश्न किया है, वह लोक में अनेकों का उपकार करेगा ; क्योंकि इस विषय में अनेकों लोग आगमों के अर्थ उनका अभिप्राय जानने वाले भी मोहित हो जाते हैं, तात्पर्य को समझ नहीं पाते हैं ॥ १० ॥

नैतत्सर्वत्र सम्प्रोक्तमागमेषु भृगूद्वह ॥
अतिगोप्यमतस्तेऽद्य प्रवक्ष्यामि महाशय!! 11 ॥

हे भृगूद्वह! यह विषय सभी जगह तन्त्रों में नहीं कहा गया है। क्योंकि यह अत्यन्त ही गूढ़ है,गोपनीय है, इस कारण हे गम्भीर अन्तःकरण वाले ! मैं वह तुमसे विस्तार से कहूँगा ॥११॥

अत्यशक्ते संग्रहोक्तिरन्येषां विततता भवेत् ॥
न शक्तः संग्रह परं तन्त्रं समभिसंश्रयेत् ॥ 12 ॥

जो अत्यन्त ही असमर्थ है,उसे संग्रह करने की उक्ति कही गई है तथा दूसरों के लिये विस्तृत होगी, अर्थात् जो असमर्थ नहीं हैं उनके लिये यह उक्ति नहीं है । जो समर्थ नहीं है, धारण करने में असमर्थ है वह तन्त्रविधानों के संग्रह करने में तन्त्र का आश्रय न ले ॥१२॥

अशक्तार्थं तु सम्प्रोक्तं शिवेनकृपया खलु ॥
अशक्तः संक्षेपपरो गुरुर्यदि भृगूद्वह ॥ 13 ॥

भगवान् शिव ने कृपा करके जो अशक्त हैं, असमर्थ हैं, उनके लिये संक्षेपपरक विधान कहा है, निश्चितरूप से इसलिये हे भृगूद्वह! यदि शिष्य अशक्त हो तो गुरु संक्षेपपरक ही विधान निर्दिष्ट करें ॥१३॥

स्वयंशक्ताय शिष्याय स्वतन्त्राद् वान्यतन्त्रतः ॥
निरूपयेद् विस्तृतं वै न संक्षेपं कदाचन ॥ 14 ॥

गुरुशिष्य की क्षमताओं का गहराई से अध्ययन कर,अर्थात् उसके स्वभाव,उसके ज्ञान,और ग्राहक बुद्धि का,उसके आसपास के वातावरण का और भी अन्य कारणों से उसकी क्षमताओं की शक्ति का निश्चय करके उसे स्वतन्त्र अर्थात् जिसका पालन गुरु करते हों उससे अथवा अन्य तन्त्रों के सुगम या विशद तन्त्र विधानों का निरूपण करें, संक्षिप्त विधानों का नहीं। जो अशक्त हो उसके लिये विशद और कष्ट साध्य विधान नहीं ॥१४॥

अन्यथा कर्मलोपस्य दोषेण लिप्यते गुरुः ॥
तत्तेव्यवस्थां वक्ष्यामि शृणु राम समाहितः ॥ 15 ॥

यदि ऐसा नहीं होगा तो अर्थात् सशक्त को तदनुसार विधान निर्दिष्ट नहीं होगा तो गुरु को कर्मलोप (क्रियालोप) का दोष लगेगा । इस कारण तुम्हारे समाधान के लिये मैं वह व्यवस्था कहूँगा हे राम! तुम सावधान होकर सुनो ॥ १५ ॥

शक्तोऽत्यन्तसंग्रहात्मतन्त्रं त्यक्त्वा प्रयत्नतः ॥
एकं तन्त्रं समाश्रित्य सम्यक् कुर्यादुपासनम् ॥16॥

जो शक्त है, वह अत्यन्तसंग्रहात्मकतन्त्र का त्याग करके प्रयत्न पूर्वक, एक तन्त्रोक्त विधान का आश्रय लेकर अर्थात् एक ही तन्त्र को आधार बनाकर उसमें कहे गये विधान से उपासना करें ॥१६॥

एकं तन्त्रं समाश्रित्य सम्यक् कर्म कृते तथा ॥
सर्वं तेन कृतं राम! तच्च श्रीगुरुमार्गतः ॥ 17 ॥

हे राम् यदि एक तन्त्र का आधार लेकर सम्यक् रूप से वैसे कर्म करता है, तो उसने सभी विधान कर लिया, वह भी श्री गुरुमार्ग से अनुमोदित हो तो ॥ १७ ॥

तन्त्रानुक्तं सूचितं तु तथा ऽन्येष्वतिदूषितम् ॥
अकृतं यत्कर्म राम! विकल्पेन विवर्जितम् ॥ 18 ॥

हे परशुराम! तन्त्र में जो नहीं कहा गया है, तथा अन्य तन्त्रों में अतिदूषित माना गया है, जो कर्म नहीं किया है, वह विकल्प से वर्जित किया है ॥१८॥

तदन्यस्मादुपादेयमेव शास्त्रस्य निर्णयः ॥
स्वपरम्परया प्राप्तं तन्त्रोक्तं तु समाचरेत् ॥ 19॥

वह विधान जो अन्य है, वह दूसरे तन्त्र में ही उपादेय होगा यह शास्त्र का निर्णय है। किन्तु अपनी परम्परा से प्राप्त तन्त्रोक्त विधान का पालन करे ॥ १९॥

अनुक्तमन्यतो ग्राह्यं समर्थेनाप्रयोजकम् ॥
सर्वथा न परित्याज्यं स्वतन्त्रं गुरुणोदितम् ॥20॥

जो विधान स्वीकृत तन्त्र में नहीं मिलता तो अन्य स्थल से ले लेना चाहिये जो समर्थ है, दूसरों के लिये वह अप्रयोजनीय है । श्रीगुरुवर्य द्वारा कहे गये स्वकीयतन्त्र का ही पालन करे सभी तरह से विधानों का परित्याग न करे, साधक ॥ २० ॥

गुरुद्रोहो ऽन्यथा तु स्यादतस्तन्न परित्यजेत् ॥
विस्तारस्त्वन्यतो ग्राह्यः स्वतन्त्रे त्वतिसंग्रहे ॥21॥

श्रीगुरूक्त स्वतन्त्र विधानों का पालन करे, अन्यथा गुरुद्रोह का भी भागी हो सकता है । जो स्वतन्त्र है अर्थात् अपने निजी स्वीकृत तन्त्र में अतिसंग्रह हो तो अन्य तन्त्र से अनुकूल विधान

गृहीत हो सकता है ॥ २१ ॥

न तत्रोक्तं परित्याज्यमीषदप्यन्यथा पतेत् ॥
स्वतन्त्रोक्तं परित्यज्य योऽन्यतन्त्रं समाश्रयेत् ॥22॥

परन्तु स्वकीयतन्त्र में जो कहा गया है, उसे किंचिद् भी त्यागना नहीं चाहिये अन्यथा पतन होगा; जो स्वकीयतन्त्रोक्त विधान का त्याग करके अन्य परतन्त्र का आश्रय लेता है तो । अतः किंचिद् भाग भी स्वकीयतन्त्र का त्याज्य नहीं है,यह सावधानी रखना आवश्यक है ॥२२॥

स सम्प्रदायद्रोहीस्यात् देवताशापमाप्नुयात् ॥
यश्चशक्तः प्रमादेन मोहेनालस्यतोऽपि वा ॥ 23 ॥

यदि साधक स्व तन्त्र का किंचिद्भाग भी त्याग देता है तो वह सम्प्रदाय का द्रोही होगा तथा देवता का शाप भी मिलेगा, इसलिये जो समर्थ है, वह असावधानी से मोह से तथा आलस्य से भी स्वकीयतन्त्र के विधान का एवं श्रीगुरुनिर्दिष्ट विधान का त्याग न करे ॥ २३ ॥

संक्षेपतन्त्रोक्तपरः स नष्टः पुण्यलोकतः ॥
गुरूक्ततन्त्रं न त्याज्यं यदि तत्संग्रहात्मकम् ॥ 24 ॥

जो साधक तन्त्र में संक्षेपविधि की कल्पना में तत्पर रहता है, वह पुण्यलोक से नष्ट हो जाता है । श्रीगुरुप्रोक्ततन्त्र यदि वह संग्रहात्मक हो तो उसका त्याग नहीं किया जा सकता , तथा संक्षेप करने की प्रवृत्ति भी नहीं रखना चाहिये ॥ २४ ॥

उपसंगृह्य तन्त्रान्तरोक्ताङ्गान्यविरोधतः ॥
उपासीत विस्तरेण न संक्षेपपरो भवेत् ॥ 25 ॥

साधक को अन्य तन्त्रों में कहे गये विधानाङ्गों को जो विरुद्धांश

वाले न हों, या उनसे स्वयं की धारणाओं से विरोध न होता हो तो उन विधानाङ्गों का सहायकरूप संग्रह करके भले ही विस्तार हो पर वैसे ही उपासना करें संक्षेपपरक न हो ॥ २५ ॥

विस्तृते स्वीयतन्त्रेऽपि तदुक्तं न परित्यजन् ॥
अन्यस्मादविरुद्धांश यदि शक्तः समाचरेत् ॥ 26 ॥

अपने तन्त्र में उसके विस्तृत होने पर भी उसमें जो कहा गया है उसका त्याग न करे, साथ ही यदि समर्थ हो तो अन्य तन्त्र से अविरुद्ध अंश को ले सकता है ॥ २६ ॥

न हीयते किन्तु फलाधिक्यमेव समाप्नुयात् ॥
आगमः शिववक्त्रोत्थः प्रमाणं सर्वतोऽधिकम् ॥27॥

यदि स्वकीय तन्त्रोक्त विधान के साथ-साथ अन्य तन्त्र से अविरुद्धांश समर्थता में ले लेता है, तो हानि तो कुछ नहीं है किन्तु फलाधिक्य ही प्राप्त होगा । फिर भी सर्वतोऽधिक प्रामाण्य उसी का है, शिवमुखोक्तआगम का होगा, स्वयं निर्णीत विधान तथा विधान संक्षिप्तता का नहीं । यह सावधानी रखना अत्यावश्यक है ॥२७॥

न तं विकल्पयेदन्यत्प्रमाणं स्वाश्रयात् क्वचित् ॥
न्यायो व्याकरणं वापि न तस्य प्रतिरोधकम् ॥ 28॥

अपने द्वारा स्वीकृत तन्त्र से अन्य प्रमाण, कहीं भी अन्य प्रमाण को विकल्प न बनावे, वहाँ न्यायविधि और व्याकरण के शाब्दिक विधान भी उसके (स्वीकृत विधान के) प्रतिरोधक नहीं होंगे । अर्थात् वह सर्वशास्त्रसम्मत होगा ॥ २८॥

तस्मात्तन्त्रानुरोधेन नेयमन्यत् प्रमाणकम् ॥
नान्य प्रमाणानुरोधात् तन्त्रं नेयं कदाचन ॥ 29 ॥

पिछले समाधान का सार निष्कर्ष यह है, कि स्वीयतन्त्र के निर्देशानुसार अन्य तन्त्रोक्त विधान को प्रमाण कोटि में लेना चाहिये अन्य प्रमाण के अनुरोधानुसार स्वीयतन्त्र को नहीं ले जाना चाहिये । स्वीयतन्त्र सर्वतोऽधिक प्रमाण है, अन्य समर्थक हो सकते हैं अन्यों के द्वारा समर्थितरूप से स्वीयतन्त्र को प्रमाणित नहीं होना चाहिये यह सुनिश्चित सार है ॥ २९ ॥

यथा स्वाम्यनुरोधेन भृत्यागच्छन्ति नान्यथा ॥
योऽन्यप्रमाणानुरोधे तन्त्रं नयति मूढधीः ॥ 30 ॥

लोक में प्रचलित व्यवहार भी यही है, कि अपने स्वामी (मालिक) के आदेश का पालन भृत्यवर्ग (नौकर) कार्यों में संलग्न होकर करते हैं, दूसरे आदेश से नहीं । ऐसी स्थिति में जो भृत्य दूसरे के आदेश में लगता है वह बहिष्कृत हो जाता है,तथा स्वामीं का कृतघ्न माना जाता है । इसी प्रकार जो साधक अन्य प्रमाणों के अनुरोध से तन्त्र को ले जाता है, वह मूढधी माना जाता है ॥३०॥

तन्त्रभेदे विरोधस्य परिहारं शिवोदितम् ॥
स भवेद्देवताद्रोही शिववाक्यावहेलनात् ॥ 31 ॥

तन्त्रों में भेद होने पर जो विरोध सामने आता है,उसका परिहार भगवान् के कथन से होता है । इसलिये जो शिवोक्त परिहार की अवहेलना,उपेक्षा आदि करता है,वह देवता का द्रोही होता है,उसकी अधोगति होती है, वह असफल ही रहता है ॥३१॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं जामदग्न्यातिसुस्फुटम् ॥
तन्त्रभेदे विरोधस्य परिहारं शिवोदितम् ॥ 32 ॥

यह सभी पूर्वोक्त समाधान सम्पूर्णरूप में स्फुटरूप से जामदग्न्य! हमने तुमसे पूछने पर बताया है । सार रूप में फिर वही उक्ति है-

''तन्त्रभेदे विरोधस्य परिहारं शिवोदितम्'' यही अन्तिम साररूप परिहार है । तुम्हें ध्यान रखना चाहिये ॥ ३२ ॥

श्री त्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे दत्तभार्गव संवादे सर्वतन्त्र समन्वयात्मकनामा चतुर्थोऽध्याय

॥ सम्पूर्णः ॥

ज्योतिर्द्वारकाशारदा च पीठद्वयाधीश्वरम् ।।
सरस्वती योगपट्टं स्वरूपानन्दाख्यं नुमः ।।
श्रीमज्जगद्गुरवे नमः।।

श्री चर्याखण्डे तार्तीयके -

एकादशोध्यायः

एवं दीक्षां समासाद्य राम! साधकपुङ्गवः ।।
मुक्तनिद्रा समुत्थाय चोषःकाले दृढासनः ।। 1 ।।

हे परशुराम! इस प्रकार पूर्ण दीक्षा प्राप्त करके वह साधकश्रेष्ठ निद्रा से मुक्त होकर उषःकाल में उठकर, दृढ़ आसन में बैठकर ।।१।।

ध्यायेन्निजे ब्रह्मरन्ध्रे सहस्त्रदलपङ्कजम् ।।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं विशदं विकसच्छदम् ।। 2 ।।

साधक अपने ब्रह्मरन्ध्र में सहस्त्रदलकमल है; जो कोटिचन्द्रों जैसा शीतलतादायक है, विस्तृत है और उसके दल पूर्ण खिले हुए हैं उसका ध्यान करें ।। २ ।।

अधोमुखं तदुदरे द्वादशान्त सरोरुहम् ।।
श्वेतमष्टदलं तच्च राजत्पूर्णेन्दुसन्निभम् ।। 3 ।।

वह सहस्त्रदलकमल अधोमुख है, उसके मध्य में द्वादशान्तपद्म (द्वादशान्तपद्म ललाट के उत्तरभाग में कहा गया है) है, जो श्वेतवर्ण का है, उसके आठदल हैं,और वह दीप्तिमान पूर्णचन्द्र जैसा है ।।३।।

ऊद्ध्वास्यं तत्कर्णिकायां पूर्णेन्दुसदृशाकृतिम् ।।
गुरुं ध्यायेच्चन्द्रनिभं पङ्कजासनसंस्थितम् ।।4।।

उस द्वादशान्तकमल में जो ऊद्ध्वमुख है उसकी कर्णिका (कोष) में पूर्णचन्द्र के समान मुखाकृति वाले श्रीगुरु का चिन्तन (ध्यान) करे वे गुरु चन्द्र जैसे हैं पद्मासन में विराजमान हैं ।।४।।

चित्पुस्तिकाभीतिकारकरंमुक्ताविभूषणम् ॥

बालेन्दुशेखरं नेत्रत्रयशोभिमुखाम्बुजम् ॥ 5 ॥

गुरु के चित् (ज्ञान) पुस्तिका एवं अभय मुद्रायुक्त हाथ हैं, मुक्ताविभूषणों से विभूषित हैं । मस्तक में निष्कलंक द्वितीया तिथि के चन्द्रमा की कला शोभा दे रही है । तीन नेत्रों से संशोभित मुखकमल वाले हैं ॥ ५ ॥

ध्यात्वैवं पूर्णचन्द्रात्मकर्णिकामध्यसंगतम् ॥

ध्यायेदधो रक्तनिभं सहस्त्रच्छदपङ्कजम् ॥ 6 ॥

इस प्रकार ब्रह्मरन्ध्र में गुरु का ध्यान जो पूर्णचन्द्रात्म कर्णिका के मध्यस्थित हैं, इस प्रकार ध्यान करके नीचे रक्ताभसहस्त्रदल कमल का ध्यान करे ॥ ६ ॥

ऊद्ध्वास्यं तत्कर्णिकायां कुलकुण्डसमाश्रयाम् ॥

तडित्कोटिनिभां कुण्डलिनीं तन्तुतनीयसीम् ॥7॥

ऊद्ध्वमुख उस रक्तकमल की कर्णिका में (कोष) कुलकुण्ड में आश्रय ली हुई करोड़ों विद्युत् जैसी कमलनाल के एक सूक्ष्मतन्तु जैसी सूक्ष्मशरीर वाली कुण्डलिनी जो ॥ ७ ॥

ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां प्रसुप्तभुजगाकृतिम् ॥

सार्धत्रिवलयोपेतां वायुनोत्थाप्य सत्वरम् ॥ 8॥

जलते हुए अग्नि जैसी सोये हुए सर्प जैसी साढ़े तीन घेरे में स्थित ऐसी कुण्डलिनी शक्ति को प्राणवायु से शीघ्रता से उठाकर -- ॥८॥

चक्रभेदनमार्गेण नीत्वोद्ध्वं गुरुमण्डले ॥

चन्द्रबिम्बे विलाप्याथतन्निर्गतसुधारसैः ॥9॥

उस सर्पिणी जैसी कुण्डलिनीशक्ति को प्राणापान संयोग से कन्द में साढ़े तीन घेरे में लिपटी हुई, को शीघ्रता से "हुं" मन्त्र

से हठात् उठाकर चक्रभेदन मार्ग (सुषुम्णा) से अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, तथा (लम्बिका के ऊपर)- आज्ञा चक्र का भेदन कर ऊद्‌र्ध्वभाग में सहस्रार में स्थित गुरुमण्डल में जो चन्द्रबिम्ब है, उसमें कुण्डलिनी को विलीन करे । वह वहाँ दंश करती है तो जो अमृतरस है, वह नीचे आता हुआ सभी चक्रस्थलों को तृप्त करता है ॥९ ॥

इसी विषय में भगवान् श्री मदाद्यशङ्कराचार्य जी ने सौ. ल. के १०वें श्लोक में कहा है,

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः,
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः ।।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयम्,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ।।१०।।(सौ.ल.)

संक्षाल्य स्वतनुं चाथ गुरुविद्यां प्रजप्य च ॥
सम्पूज्य स्तुतिभिः स्तुत्वा हृदि कुण्डलिनीं पुनः॥10॥

उषःकाल में उठकर कुण्डलिनीशक्ति का स्मरण करते हुए अपने शरीर को प्रक्षालित करे, फिर गुरुविद्या (मन्त्र) का जप करे, अन्त में स्थित अपनी कुण्डलिनीशक्ति का मानसोपचारों से पूजन एवं पद्धति में कहे गए कुण्डलिनी का ध्यान एवं स्तुति करे॥१०॥

आनीय देवतारूपां ध्यात्वा सम्पूज्य मानसैः ॥
प्रजप्य स्तुतिभिः स्तुत्वानद्यादौ स्नानमाचरेत् ॥ 11॥

कुण्डलिनीशक्ति को देवतारूप में हृदय में लाकर उसका मानस उपचारों (लमित्यादि पञ्चपूजा) से पूजन करे स्तुति करने के बाद नदी आदि जलाशयों में स्नान बिधि सम्पन्न करें॥११॥

त्रिकोणमण्डले तोये ध्यात्वा देवीं यथाविधि ॥
तत्र तीर्थं समावाह्य सूर्यमण्डलमध्यतः ॥ 12॥

नदीजल में मण्डल (▽) बनावे, फिर उस जल में देवी का ध्यान करें, यथा विधि। फिर सूर्यमण्डल के मध्य तीर्थ का आवाहन करें (ब्रह्माण्डोदर तीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे! तेन सत्येन मे देव! तीर्थं देहि दिवाकर ॥१२॥

तेनाभिषिञ्च्य कुम्भाख्यमुद्रया मूर्ध्नि सप्तधा ॥
ध्यात्वा तीर्थं देवतात्ममयं तत्रावगाह्य च ॥ 13 ॥

उस तीर्थजल में जो अभिमन्त्रित है, उससे मूर्धा में कुम्भमुद्रा से अभिषिञ्चन करे और तीर्थदेवता का आत्ममय ध्यान करके फिर स्नान करे ॥ १३ ॥

परिधायांशुकं भालेकृत्वा भस्म त्रिपुण्ड्रकम् ॥
कुर्यात् सन्ध्योपासनं तु प्राङ्मुखः शुद्धमानसः ॥14॥

शुद्ध धौत निश्छिद्र वस्त्रों को धारण करे तदनन्तर भाल में भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करें, फिर सन्ध्योपासन पूर्वाभिमुख हो शुद्ध मन से करें ॥१४॥

आदावाचमनं कुर्यात् स्वाहान्तैस्तत्त्वनामभिः ॥
आत्म, विद्या शिवाख्यातं तत्त्वत्रितयमुच्यते ॥ 15॥

भगवती की सपर्या पद्धति में- तत्त्वाचमन का प्रयोग इस प्रकार है, यथा-ः ४ कादिकूट- आत्मतत्त्वं (प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राण वाक्पाणिपादपायूपस्थ- शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाश-वायुवह्निसलिलभूम्यात्मना) आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा (संक्षेप में ऐं कादि आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा) । इसी तरह ४ क्लीं हादिकूट विद्यातत्त्वं - (मायाकला ऽविद्यारागकालनियति पुरुषात्मना) शोधयामि स्वाहा । आगे ४ सौः सादिकूट शिवतत्वं (शिवशक्ति सदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मना) शोधयामि स्वाहा । ये ३६ तत्त्वों के

तीन तत्त्व कहे गये हैं । अन्त में ४ ऐं कादिकूट, क्लीं हादिकूट, सौः सकलह्रीं सर्वतत्त्वं शोधयामि - स्वाहा ॥ १५॥

सर्वान्ते सर्वतत्त्वं स्याच्चतुर्धाचमनं स्मृतम् ॥
स्नानसन्ध्यापूजनादौ तथा नैमित्तिकादिषु ॥ 16 ॥

तीन तत्त्वाचमनों के अन्त में सर्वतत्त्वात्मक चौथा आचमन कहा गया है- यथा- ४ सौः कूटत्रय - सर्वतत्त्वं (शिवशक्तिसदाशिवेश्वर-शुद्धविद्यामायाअविद्याकलारागकालनियतिजीव- प्रकृतिमनःबुद्धि - अहङ्कारश्रोत्र त्वक् चक्षुः जिह्वाघ्राणवाक् पाणिपादपायूपस्थशब्द-स्पर्शरूपरसगन्धा- काशवायुतेजोजलभूमि-) शोधयामि स्वाहा । यह चतुर्धा तत्त्वाचमन श्री विद्या सपर्या में - पूजनाङ्गरूप में - स्नान, सन्ध्या पूजनादि कर्माङ्गों में नित्यकर्म में नैमित्तिककर्मों में काम्यकर्मों में विहित है ॥ १६ ॥

पादप्रक्षालनान्ते च छिक्कोद्गाराद्यधःसृतौ ॥
उच्छिष्टस्पर्शने चैव कुर्यादाचमनं बुधः ॥17॥

पाद धोने के बाद शरीर प्रवृत्तिवश छींक,जमुहाई,डकार, अपाननिःसरण होने पर तथा,जूठे मुँह स्पर्श पर या उच्छिष्ट और अशुद्ध व्यक्ति के स्पर्श हो जाने पर बुद्धिमान् बिना आलस्य के यह तत्त्वाचमन करे ॥ १७ ॥

श्रोत्राचमनमेवस्याच्छिक्कादिषु च भार्गव ॥
विधानं शृणु तस्यैवं दक्षश्रोत्रं सकृत् स्पृशन् ॥ 18 ॥

भार्गव! यदि बारबार या एकबार भी यदि यह शरीरबाधा आ जाती है तो श्रोत्राचमन भी किया जा सकता है,उसका विधानरूप क्या है ? उसका प्रकार क्या है? एकबार ही इनके एक-एक के आने पर अपने दांएँ कान का दांए हाथ से स्पर्श करते हुए-॥१८॥

स्वस्वमूलसमावृत्त्या श्रोत्राचमनमीरितम् ॥
मोहादनाचम्य तु वै सः कुर्यात् पूजनादिकम् ॥19॥

अपने अपने मूल की समावृत्ति के बाद (छिक्कादिप्रवृत्ति) श्रोत्राचमन कहा गया है इसका पालन यदि नहीं किया गया, आलस्यवश या उपेक्षा से श्रोत्राचमन नहीं किया, तो इन सभी शारीरिक प्रवृत्तियों के होने पर श्रोत्राचमन के न करने से ॥१९॥

तस्य सर्वं फलं घ्नन्ति दैत्याः -उच्छिष्टभोजनाः ॥
प्राणायामं ततः कुर्यात् प्राणमाकृष्य शक्तितः ॥20॥

मुख्याचमन या श्रोत्राचमन न किये हुए साधक के स्नान से लेकर पूजनान्त समस्त कर्मनिष्फल एवं उनके सभी फलों को उच्छिष्ट भोजन करने वाले दैत्य नष्ट कर देते हैं ।

आचमनादि के बाद पूजक शक्तिभर प्राण को खींचकर प्राणायाम करे ॥२०॥

त्रिर्मूलं समनुस्मृत्य त्यजेदितरमार्गतः ॥
ततः सङ्कल्पयेत् कर्मकालं देशमनुच्चरन् ॥ 21 ॥

प्राण को दांए नासिकाछिद्र से पूरक द्वारा खीचे, खींचते हुए मूलमन्त्र का कुम्भक में (वायु के स्तम्भन काल) तीन बार स्मरण करता हुआ रेचक द्वारा बांए नासिकाछिद्र से छोड़ें। पुनः बांए स्वर से पूरक, फिर कुम्भक फिर दांए से रेचक यह एक प्राणायाम है। इसके बाद कर्म और काल तथा देश का उच्चारण करते हुए सङ्कल्प करे ॥२१॥

एतावत् सर्वकर्मादौ कर्तव्यं फलहेतवे ॥
ततो मूलस्य ऋष्यादि न्यासं कुर्याद्यथाविधि ॥ 22॥

प्राणायामादि, कृत्य पर्यन्तफल के लिये करना चाहिये। इसके अनन्तर मूलमंत्र का विधि के अनुसार सर्वप्रथम ऋष्यादिन्यास करे ॥२२॥

मूलविद्यामविन्यस्य स्वाङ्गे साधकपुङ्गवः ॥
न फलं प्राप्नुयात् सम्यक् कृतस्यापि कर्मणः ॥23॥

मूलविद्या का न्यास अपने अंग में यदि वह साधक नहीं करता तो बिना न्यास के आगे के किये गए पूजाङ्ग कर्मों का फल कर्म करने के बाद भी नहीं मिलेगा ॥ २३ ॥

ऋष्यादिराद्यस्तत्र स्याद्बीजद्यास्तु द्वितीयकः ॥
करन्यासस्तृतीयः स्यादङ्गन्यासश्चतुर्थकः ॥ 24 ॥

संकल्प के बाद पूजा में सर्वप्रथम ऋष्यादिन्यास करे,दूसरा बीजादि का न्यास है,तीसरा करन्यास,इसके बाद चतुर्थ न्यास अङ्गन्यास है ॥ २४ ॥

एवं चतुर्विधो न्यासः सर्वमन्त्रेषु वै भवेत् ॥
आद्य द्रष्टा तु मन्त्राणामृषिस्तत्र पृथक् पृथक् ॥25॥

इस प्रकार चारों प्रकारों का न्यास आवश्यकरूप से सभी मन्त्रों में विहित है । ऋष्यादिन्यास में मन्त्रों का दृष्टा ऋषि होता है। वह भिन्न-भिन्न मन्त्रों में भिन्न-भिन्न होता है॥२५॥

गुरुत्वान्मूर्ध्नि तत्स्थानं मन्त्रवर्णाधिदेवताः ॥
छन्दःस्थानं मुखं योग्याद्देवता हृदि संस्थिता ॥ 26 ॥

ऋषि गुरु होने के कारण मूर्धा में न्यास किये जाते हैं, क्योंकि मन्त्रवर्णों के अधिदेवतारूप हैं,ऋषि होने के कारण । मन्त्र के छन्द का स्थान मुख में है, वहाँ न्यास किया जाता है । और देवता का न्यास हृदय में होता है ॥ २६ ॥

मन्त्रवाच्यात्मिका तेन देवता हृदि विन्यसेत् ॥
बीजवर्णात्मना दृष्टा पूर्वं मन्त्रा महर्षिभिः ॥ 27 ॥

मन्त्र की देवता मन्त्र की वाच्या है, अर्थात् मन्त्र का अर्थ ही

देवता है, इस लिये देवता का न्यास हृदय में होता है । महर्षियों ने पहिले मन्त्र को बीजवर्णात्मकरूप में देखा ॥ २७॥

तेन कारण भूतेन मन्त्रा दृष्टा अनन्तरम् ॥

तस्मात्तन्मन्त्रबीजं वै मन्त्रकारणभावतः ॥ 28 ॥

उन महर्षियों ने पवित्रतपःपूतान्तःकरण में बुद्धिप्रकाश में उन मन्त्रों के बीजवर्णों को देखा । तदनन्तर मन्त्र का रूप प्रकट हुआ इस कारण उस मन्त्र का वह बीज निश्चित ही भाव से बीज ही मन्त्र का कारण है,कारण को ही बीज (हेतु) कहा जाता है ॥ (श्रीदत्तगुरुवर्य के इस प्रतिपादन से एक रहस्य सुस्पष्ट होता है, कि वेद में चारो वेदों शाखाओं सहित) जितनी उक्तियाँ हैं, उन्हें सूक्त और मन्त्र ही कहा जाता है । श्लोक या पद्य नहीं कहा जाता है जो मन्त्र को "श्लोक या पद्य" कहकर व्यवहार करते हैं यह अज्ञान ही है,प्रमाद है,तथा वेद का आन्तरिक मर्म उन्होंने समझने का प्रयास नहीं किया, तथा उन्होंने सामान्य लौकिक लेखक की कृति माना । इस पूर्वोक्त श्रीदत्त के प्रतिपादन से वेद समस्त शाखाओं सहित मन्त्र और ब्राह्मण (उपनिषद् -आरण्यक) वेद ही हैं और "पौरुषेय न होकर अपौरुषेय ही हैं, इसकारण "यस्य निःश्वसितं वेदाः" यह भारतीयोक्ति सदैव स्मरणीय है, वर्तमान में जो यह अविचारित अबोध बालकोक्ति जैसे कहा जाता है भौतिक वादी पाश्चात्य विद्वानों तथा उनका अन्धानुकरण करने वाले पण्डितम्मन्य भारतीयतत्त्व की अश्रद्धा से परम्परा की उपेक्षा करने वाले पाश्चात्यशिक्षा, तदनुरूप विचारों आचरणों से अभिभूतान्तःकरण वाले अर्वाचीन विद्वानों की यह धारणा, कि पाषाणकाल के बाद वैदिककाल में वेद, उपनिषद् हैं, आदिऋग्वेद पाँच हजार साल पुराना सबसे पुराना ग्रन्थ है, इत्यादि भ्रामक अविचारित अटकलों

को समालोचनाका भूत उससे आविष्ट लोग सनातन भारतीय संस्कृति के आत्मा,प्राणभूत वेदों,शास्त्रों, पुराणों आदि को सामान्य लेखकों की कृति मानते आ रहे हैं !!!

वेद शब्द की शास्त्रीय परिचयात्मक परिभाषा यह है - शब्दों की अपरिवर्तनीय आनुपूर्वी ही वेद है, अर्थात् अपरिवर्तनीय है । (**''मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) वेद-** अनादि ज्ञान का वाचक है, इसीलिये यह अनादि धारणा है, कि **''सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म''** **''ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म''** (महानिर्वाणतन्त्र ३य निश्वास) । यही चिद्रूपब्रह्म (ज्ञान) ऋषि के हृदय (अनाहतचक्र) में नादरूप में आविर्भूत होता है, वही मन्त्र, वर्णों (नाद का परिणाम) बीजात्मक स्फोट द्वारा व्यक्त होता है । मन्त्र का अपनी लौकिक,भौतिक स्वार्थपूर्वाफलाकांक्षादि से अभिभूत शब्दचयन को जो बीजरहित है मन्त्र नहीं कहा जा सकता । यदि यही किया जाता है, तो वह शब्दसमूह (कृत्रिम) पतनकारक एवं घातक ही होगा । शरीर के साथ-साथ बुद्धि एवं प्राण तथा जीव तक का घातक हो जायगा, उपासना के सिद्धान्तों में मनमाना खिलवाड़ घातक होता है । इन्हीं सभी रहस्यों को सबसे बड़े अधिकारी गुरुपद से प्रसिद्ध दक्षिणामूर्ति के अभिन्नरूप दत्तात्रेय सावधानी करने का संकेत परशुराम जी से कर रहे हैं (चिन्ता इस समय यह है भारत में इस समय उपासनाक्षेत्र में बड़ी ही अनर्थकारी प्रवृत्तियों का अन्धानुकरण हो रहा है । (गायत्रीमंत्र/पुराणादिकों की रचना हो रही है ।)

मन्त्रसामर्थ्यरूपेण फलदाने सशक्तित: ॥

तद्वर्णे मन्त्रशक्तिस्तु तेन शक्तिरितीरित: ॥ 29॥

शक्तिसम्पन्न होने से वह बीजमन्त्र के सामर्थ्यरूप से फलदान में समर्थ होता है । उस बीजरूपवर्ण में मन्त्रशक्ति विद्यमान है, इस

कारण उसे शक्ति कहा जाता है । उसका न्यास साधकाङ्ग में होता उसका स्थान "पाद" है ॥ २९ ॥

न गच्छेच्छक्तिरन्यत्र चेति शक्तिस्तु कीलिता ॥
यस्मिन् वर्णे सवर्णस्तु कीलकं समुदाहृतम् ॥ 30 ॥

मन्त्र में अन्तर्गर्भ निहित शक्ति (विद्युत जैसी) अन्यत्र कहीं दूसरे स्थल में न चली जाय साधक के ही निकट रहे इसलिये उस वर्ण की शक्ति को कीलित किया गया है । जिस वर्ण में वह शक्तिमान् वर्णसम्बद्ध है,उसे कीलक कहा जाता है ॥ ३० ॥

शक्तिस्तु गमने दृष्टा तेन शक्तिस्तु पादयोः ॥
नाभौ प्राणः कीलितो वै तस्मात्तत्र तु कीलकम् ॥31॥

शक्ति गमन (चलना) क्रिया में देखी जाती है, अतः शक्ति को पादों में (दोनों चरणों-कर्मेन्द्रिय) न्यस्त किया जाता है । नाभि में प्राण कीलित रहता है, अतः नाभि में कीलक न्यास किया जाता है ॥३१॥

बीजवर्णात्मना दृष्टा पूर्वं मन्त्रा महर्षिभिः ॥
ऋष्यादिन्यास हीनस्तु गुर्वादिद्रोहहेतुतः ॥ 32 ॥

मन्त्र साक्षात् कृत महर्षियों ने पूर्व में मन्त्रानुभूति हृदय में होने पर अर्थात् दर्शन होने पर मन्त्र को बीजवर्णात्मरूप में ही देखा। अतः वह मन्त्र- बीज- ऋष्यादिन्यास आदि अनावश्यक है, जप मुख्य है, क्योंकि समय कम है, इत्यादि उपेक्षात्मक द्रोह होने पर अर्थात् दुराशयग्रस्त होकर अथवा ईर्ष्यादियुक्त विचारों की प्रचुरता से ॥३२॥

बीजादिहीनस्तद्वच्च न फलं विन्दते क्वचित् ॥
करस्तु न्यास मन्त्रात्मत्वाद् विशुद्धयति ॥ 33 ॥

बीजादि (बीज,शक्ति, कीलक) से हीनमन्त्र तथा ऐसे मन्त्र से युक्त साधक कहीं भी अभीप्सित फल प्राप्त नहीं कर सकता । कर

तो (करन्यास) न्यास के योग से मन्त्रात्मक हो जाने से विशुद्ध हो जाता है ॥ ३३ ॥

ततः पूजा जपादौ तु विनियुक्तः फलप्रदः ॥
अङ्गन्यासमृते विघ्नैर्भूतैर्भूयोऽभिभूयते ॥ 34 ॥

ऋषि-आदिन्यास,करन्यास करने के अनन्तर पूजा,जप आदि में विनियुक्तमन्त्र फलदायक होता है । साथ ही अङ्गन्यास के बिना भी विघ्नों से अन्तरिक्षचारी भूतादि से बार-बार साधक प्रभावित होता है ॥ ३४ ॥

तस्मादङ्गन्यासयोगाद्रक्षणं सर्वतो भवेत् ॥
युद्धे तु हृदयं चादौ रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ 35 ॥

इन्हीं कारणों से अङ्गन्यास के योग से सभी तरफ से रक्षा होती है । युद्ध में तो सर्वप्रथम हृदय की ही रक्षा की जाती है प्रयत्न पूर्वक । इसी तरह इस साधन समर में अङ्गन्यास में हृदय प्रथम है, उसका मन्त्रकवच से रक्षण किया जाता है ॥ ३५ ॥

एवं मूर्धापि तु शिखा शेखर स्थान भावतः ॥
तद्भङ्गे मानभङ्गः स्यादतस्तद्रक्ष्यमेव हि ॥ 36 ॥

इसी प्रकार मूर्धा भी शिखा, अङ्ग शेखरस्थान की भावना से न्यस्तव्य हैं,मूर्धाभङ्ग होने पर मानभङ्ग भी हो जाता है,इसलिये मूर्धा में (शिर में) शिखा में न्यासविधि अङ्गन्यासान्तर्गत की जाती है, ये अङ्ग शरीर के प्रधान एवं मर्म अङ्ग हैं ॥ ३६ ॥

कवचं चाङ्गसन्त्राणं नेत्रं स्यात्करणोत्तमम् ॥
अस्त्रं च बाह्यकरणमित्येतन्न्यास योगतः ॥ 37 ॥

अङ्गन्यास में कवचन्यास करे जिससे अङ्ग की रक्षा होती है नेत्र का न्यास होता है, नेत्र भी अङ्गन्यास में महत्त्वपूर्ण साधन है ।

अंत में अस्त्रन्यास करे, यह न्यास नेत्रान्त अङ्गों से बाह्य है, शिरो भाग के चारों और चुटकी बजाते हुए सामने तर्जनी और मध्यमा से हथेली के मध्य ताली बजाते हैं, यह दाएँ बांएँ दोनों हाथों को क्रमशः शिर के चारों ओर घुमाते हुए हथेली के मध्य में ताली बजायी जाती है ॥ ३७ ॥

संरक्ष्य पश्चाद्दिग्बन्ध दशदिग्रक्षणं भवेत् ॥
ऋष्यादींस्तु नमोऽन्तेन विन्यसेन्मस्तकादिषु ॥38 ॥

इस प्रकार ऋष्यादि न्यास, कराङ्गन्यासों से संरक्षण करने के बाद दिग्बंध (दशों दिशाओं को नमस्कार या चुटकी बजावें) करे। ऋष्यादी अङ्गों का मस्तक आदि में (यथा-मस्तक, मुख, हृदय, पाद, नाभि और गुह्य भाग) न्यास नमः पद के साथ करें ॥३८॥

अङ्गुष्ठाभ्यां नमस्त्वेवमङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत् ॥
कनिष्ठान्ते करतल करपृष्ठान्नमो वदेत् ॥39 ॥

करन्यास में अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इस प्रकार तर्जनी, मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठा, दोनों हाथों की नमोऽन्त तथा करतल करपृष्ठ दोनों हाथों को नमः पद से न्यस्त करे बोलते हुए ॥ ३९॥

हृदयाद्ये नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषडेव च ॥
फट् च संयोज्य विन्यस्य दिग्बन्धं छोटिकाख्यया ॥40॥

अङ्गन्यास में हृदयाय नमः प्रथम में, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम् नेत्रत्रयाय वौषट् (नेत्र में एक पक्ष यही है, कि जिस देवता के तीन नेत्र न हों तो वहाँ नेत्राभ्यां या नेत्रद्वयाय वौषट्) परन्तु सर्वत्र नेत्रत्रयाय वौषट् ही प्रसिद्ध हैं । अस्त्राय फट् का उच्चारण का न्यास करें । अन्त में तीन व्याहृतियों से (भूर्भुवः

स्वः) दिग्बंध करें ॥४०॥

एवं विन्यस्य हृदये ध्यायेच्छ्री त्रिपुरां पराम् ॥
जपाकुसुमशोणाङ्गीं त्रिणेत्रां चन्द्रशेखराम् ॥ 41 ॥

इस प्रकार ऋष्यादि, कराङ्गन्यासों का न्यास करके साधक हृदय में भगवती त्रिपुरापराम्बा का ध्यान करे । वे भगवती दिव्य श्रीविग्रह वाली हैं, उनका वर्ण जपाकुसुम जैसे चमकता हुआ लालवर्ण का है उनके तीन नेत्र हैं, मस्तक में निष्कलंकचन्द्र की द्वितीया की कला विभूषित हो रही है ॥४१ ॥

कामेश्वराङ्कनिलयां प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ॥
पद्मरागाङ्कुशं पाशं प्रवाललतिकोद्भवम् ॥42 ॥

वे भगवती भगवान् कामेश्वर के अंक में विराज रही हैं; जिनका मुखकमल प्रसन्नता युक्त स्मित परिपूर्ण है । जिनके अस्त्रों में अंकुश पद्मरागमणिमय है, तथा पाश प्रवाल की (मूंगे की) लता का है ॥४२॥

ऊर्द्ध्वयोर्हस्तयोः पञ्च बाणांश्चापमधो द्वयोः ॥
नीलोत्पलमशोकं च मल्लिकाचूतमेव च ॥ 43 ॥

पाश और अङ्कुश ऊपर दांए, बांए दो हाथों में धारित हैं । तथा पांच बाण और धनुष नीचे के दोनों दाएं, बांए हाथों में सुशोभित हो रहे हैं ॥ पांच बाणों में - १नीलेन्दीवर, (नीलकमल), २ अशोक, ३ मल्लिका, ४ आम्रमञ्जरी - ॥४३ ॥

कमलं चेति बाणाः स्युश्चापंपुण्ड्रेक्षुसम्भवम् ॥
एवं तोये यन्त्रराजं ध्यात्वा श्री त्रिपुराम्बिका् ॥44॥

५ कमल (रक्तकमल) ये बाण हैं, और इक्षुदण्ड का पुण्ड्रधनुष है (और भ्रमर अलि) मयी ज्या (धनुः की डोरी है)। इस प्रकार

भगवती का स्नानान्तर जल में या यन्त्रराज में श्री त्रिपुराम्बिका का ध्यान करके - ॥४४॥

मूलेन मार्जयित्वा त्रिमूर्ध्नि तर्पणमुद्रया ॥
गायत्र्याऽर्घ्यं प्रदद्यात् त्रिस्तर्पयेदपि च त्रिशः ॥45॥

मस्तक में मूलमन्त्र से तर्पण करे, तर्पणमुद्रा से गायत्री मन्त्र से अर्घ्य दे, तीन-तीन बार तर्पण भी करें ॥ ४५ ॥

ध्यात्वैवं मण्डले देवीं त्रिरर्घ्यं प्रदिशेत् पुनः ॥
मार्तण्डभैरवाख्याय सन्तर्प्यापि त्रिधा पुनः ॥ 46 ॥

मण्डल में इस प्रकार ध्यान करके देवी को भी तीन बार अर्घ्य दें बाद में श्रीमार्तण्डभैरव (सूर्य) के लिये भी पुनः तीन बार तर्पण करे ॥ ४६ ॥

गायत्रीं प्रजपेन्मूलविद्यामपि शतम् शतम् ॥
अन्ते सूर्याभिमुखत उपतिष्ठेत् पराम्बिकाम् ॥ 47 ॥

एक-एक माला, सौ-सौ गायत्रीमन्त्र और मूलविद्या पञ्चदशीमन्त्र का भी जप करे, अन्त में सूर्य के तरफ अभिमुख होकर भगवती पराम्बिका का उपस्थान करे ॥ ४७ ॥

सन्ध्यायामनुपस्थानाद् देवता कुप्यति द्रुतम् ॥
आगमे नमने श्रेष्ठं प्रत्युत्थानं समर्हणम् ॥48 ॥

सन्ध्योपासन में यदि देवता का सूर्य का अर्घ्यदानान्तर उपस्थान नहीं होता तो शीघ्र ही देवता कुपित हो जाते हैं ॥ आगमन में, नमन में प्रत्युत्थान (उपस्थान) समुचित माना गया है ॥ ४८ ॥

लोकसिद्धन्याय एष तस्मादावश्यकं त्विदम् ॥
वैदिकैस्तान्त्रिकैर्मन्त्रैर्वोपस्थानं समाचरेत् ॥ 49 ॥

संध्या में उपस्थान विधि शास्त्र और लोक में सिद्ध है,

प्रभावशाली है, मन प्रभावित होता है। इसलिये यह आवश्यक है। इस का आचरण वैदिक मन्त्रों से और तान्त्रिक मन्त्रों से पूरा करना चाहिये । इसका आचरण लोक और वेद में स्वीकृत हैं ॥४९॥

एवं सन्ध्यामुपासित्वा गृहमागत्य साधकः ॥
पूजामन्दिरमाविश्य चात्मशोधनमाचरेत् ॥ 50 ॥

इस प्रकार प्रातः (उषः) स्मरण के बाद नित्य शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर यदि घर से बाहर किसी जलाशय में या नदीतट में गया हो तो वहाँ स्नानार्थजल में सूर्यमण्डल तीर्थदेवता का आवाहन स्नान करें, तदनन्तर उपस्थानपूर्वक सन्ध्योपासन करके सूर्य (मार्तण्ड भैरव) उपस्थानानन्तर मूलदेवता का भी तांत्रिकसंध्या में मन्त्रों से उपस्थान करके गायत्री तथा मूलमन्त्र का एक-एक माला जप करके संन्ध्योपासन कर घर वापस आयें, वहाँ आकर साधक पूजा मंदिर में जाकर आत्मशोधन करे (यदि घर में ही ब्राह्ममुहूर्त विधि की है, तो घर की पद्धति से नित्यकृत्य पूजागृह में प्रवेश पर्यन्त करे) ॥५०॥

श्री त्रिपुरारहस्ये चर्याखण्डे दत्तभार्गव संवादे प्रातः कृत्य
विवेचनं नामैकादशोऽध्यायः सम्पूर्णः

।। श्रीचर्याखण्डे तृतीयके द्वादशोऽध्यायः ।।

ॐ श्रीभारतराष्ट्रसेवायै त्यक्तगृहपरिग्रहम् ॥
लोकसंग्रहलक्ष्येण परिव्रजनशीलिनम् ॥

।। श्रीमज्जगद् गुरवे नमः।।

अथ राम जपविधिं वक्ष्यामि नियतं शृणु ॥
एवं विन्यस्तगात्रो वै देवतामय आस्थितः ॥ 1॥

प्रातःस्नान, संन्ध्योपासन सम्पन्न करने के बाद साधक पूजागृह में आकर पवित्र होकर आसन में बैठकर न्यासादिविधि से न्यास करके देवतामय होकर स्थिरचित्त हो । आगे- मैं तुम्हें अब जप विधि सुनाता हूँ । सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥

रश्मिमालामनुस्मृत्य सकृदन्यान्मनूनपि ॥
जपमालां समाश्रित्य पूजयेन्मुख्यमन्त्रकम् ॥ 2 ॥

मंदिर में आसन मैं बैठकर रश्मिमाला "स्तोत्र (मन्त्रमय) का पाठ करे,अन्यमन्त्रों का भी एकबार स्मरण करे । बाद में जपमाला लेकर मुख्य मूलमन्त्र से पूजा करे फिर जप आरम्भ करे ॥२॥

कालत्रयं सहस्रं वा द्विकालं त्वेकदाऽपि वा ॥
शतत्रयं वापि शतं शक्त्या भक्तियुतो जपेत् ॥3॥

तीनों कालों में अर्थात् पूर्वाह्न,मध्याह्न एवं सायंकाल में अथवा प्रातः,सायं दो कालों में अथवा एक काल में केवल प्रातः भक्तियुक्त होकर एक सहस्र या तीन सौ या एक सौ बार मंत्र जप करे ॥ ३॥

आपत्तिष्वथ रोगेषु पथि कार्यान्तरेषु च ॥
यथाशक्त्या कर्मकुर्यात् तेन दोषो न विद्यते । 4 ॥

यदि दैनिकजीवन में, आपत्तियों के आ जाने से या रोगों से पीड़ा होने पर,या लम्बीयात्रा में मार्ग में, अन्य अपरिहार्य कार्यों में व्यस्त हो जाने पर यथाशक्ति मन्त्रजप करें ऐसा करने से दोष नहीं होंगे ॥४॥

कर्मलोपस्य दोषो न स्यादापत्तिमुखेषु वै ॥
जपस्तु न परित्याज्यः सर्वथा तं समाचरेत् ॥ 5 ॥

किन्तु आपत्तियों के सम्मुख आ जाने पर भी कर्मलोप हो जाने पर दोष नहीं होता, पर यथाशक्ति जप तो करता ही रहे । वह नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ५॥

शतार्धं वापि पादं वा जपेत् त्रिर्वा महापदि ॥
अपवित्रः पवित्रो वा गच्छन् वापि स्थितोऽपि वा ॥6॥

बड़ी आपत्ति (पारिवारिक मरणाशौचादि, परिवार में दीर्घकालिक रोगपीड़ा,भूकम्प,बाढ़, महामारी प्रकोप आदि) में यथाशक्ति यथावसर एक सौ, ५० बार, या २५ बार, अथवा, ३बार जप तो करे ही। उस स्थिति में अपवित्र हो या पवित्र हो, या मार्ग में, स्थित हो तो भी जप कर ही ले ॥ ६ ॥

सुप्तोवाऽप्युपविष्टो वा मनसा वचसाऽपि वा ॥
जपेच्छक्त्यनुरोधेन जपं नहि विलोपयेत् ॥ 7 ॥

साधक यदि सो रहा हो,अथवा बैठा हो, किसी भी स्थिति में हो मन से, वाणी से भी यथाशक्ति जप अवश्य ही करता रहे, कभी भी जप का विलोप न करे ॥ ७ ॥

आपत्त्यादौ जपेनैव सर्वं कर्मकृतं भवेत् ॥
न त्यजेत् सर्वथा जापमादेह स्मृति सम्भवात् ॥ 8 ॥

आपत्ति आदि के क्रमशः अथवा सहसा उपस्थित हो जाने पर भी केवल जपमात्र से ही सभी कर्म (पूजा सम्बन्धी) सम्पन्न होते हैं । इसलिये जब तक देह की विस्मृति की सहसा उपस्थिति की सम्भावना से पूर्वस्मृति रहते तक सभी तरह से जाप न छोड़े ॥८॥

आपदादिषु- इति प्रोक्तं यदि शक्तः कथञ्चन ॥
कर्मलोपं प्रकुर्याद् वै तस्यानर्थः पदे पदे ॥ 9 ॥

आपत्तियाँ सामने हैं या और भी कोई अड़चनों का बहाना लेकर यदि कोई सक्षम होने पर भी कर्मलोप करता है तो उसके सामने पद-पद में अनर्थ, विघ्न-बाधाएँ आती हैं ॥९॥

नास्तिकं तं प्रोक्तदुःखे मातृकाः पालयन्ति नो ॥
तस्मात्कर्म यथा शक्त्या साङ्गोपाङ्गं समाचरेत् ॥10॥

पिछले वर्णन में जो दुःखों के प्रकार बताए गए हैं, उस समर्थ साधक का; जो कर्मलोप करता है उसका मातृकाएँ संरक्षण नहीं करती इस कारण साधक को यथाशक्ति साङ्गोपाङ्गकर्म करना ही चाहिये ॥१०॥

ऋष्यादिन्यस्य ध्यात्वा च देवतां मनसाऽर्चयेत् ॥
शक्त्या भक्त्या समभ्यर्च्य जपं कुर्यात्समाहितः ॥11॥

ऋष्यादिन्यस्य ध्यात्वा च देवतां - साधक सर्वप्रथम ऋष्यादि न्यास करके देवता का ध्यान करके मानसिक (लमित्यादि बीजैः पञ्चपूजां कुर्यात्) अर्चना करे । यह कार्य शक्तिभर भक्तिपूर्वकअर्चना करने के पश्चात् सावधान होकर शान्तचित्त से जप करे ॥ ११॥

जपमालां समाश्रित्य संस्कृतां प्रजपेत् क्रमात् ॥
तत्र वर्णमयी माला चोत्तमा सम्प्रकीर्तिता ॥ 12 ॥

संस्कार की हुई जपमाला लेकर क्रमशः जप करे ॥ वहाँ जप विधि में यदि माला का निश्चय करना हो तो वहाँ वर्णमयीमाला (अकार से ळकार पर्यन्त ५० वर्णमयी इसमें 'क्ष' सुमेरु है) माला सर्वोत्तमा कही गई है ॥१२॥

मणिमाला मध्यमा स्यात् पर्वमालाऽधमा स्मृता ॥
आदिवर्णात् क्रमान्मन्त्रान्तान् सबिन्दून् समुच्चरेत् ॥13॥

मणियों से निर्मित माला (स्फटिक आदि) मध्यम मानी जाती है, पर्वमाला (करमाला) अधम मानी जाती है । वर्णमाला के "अ"वर्ण से लेकर अन्तिमवर्ण तक मन्त्रपर्यन्त उन वर्णों को बिन्दु सहित उच्चारण करे ॥ १३ ॥

ळान्तमेकैकशो भूयो ळादीनां तानपि क्रमात् ॥
अन्ते स्वरान् सप्तवर्गान् प्रजप्याष्टोत्तरं भवेत् ॥14॥

"अ से लेकर अंतिम क" वर्ण पर्यन्त तथा "क से लेकर अ" पर्यन्त क्रमशः उच्चारण तथा १६ स्वर समूह (१) तथा कादिवर्ग से प वर्ग तक (५) वर्णसमूह तथा यादि वर्ण (६) शादि "ह" पर्यन्त (७) वर्णसमूह मिलकर आठ वर्णसमूह एवं अकारादि ळकारान्त- ळादि अकारान्त अनुलोम विलोम क्रम से ५०-५०- (१००) तथा ८ अंतिम वर्ण समूह कुल १०८, वर्णमयी माला "सर्वान्त में "क्ष" वर्ण लेकर उसका उल्लंघन न करे (अष्टवर्ग वर्णमाला में "अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवर्गिणीम्" सर्वसिद्धिकृतस्तोत्र) ॥१४॥

जपेऽनन्तगुणं पुण्यं वर्णमालां समाश्रयेत् ॥
रत्नात्मकैः स्फटिकैर्वा रुद्राक्षैः पुत्रजीवकैः ॥ 15 ॥

जप विधि में अनन्तगुना फल- पुण्यरूप का होता है, इसके लिए वर्णमाला का सहारा ले, या रत्ननिर्मित माला ले, या स्फटिक की माला ले, अथवा रुद्राक्ष की, या पुत्रजीवाबीजों की माला ले ॥१५॥

कमलाक्षैः शङ्खजैर्वा, गजदन्तसमुद्भवैः ॥
पुण्यकाष्ठकृतैर्वापि मणिभिर्जपमालिकाम् ॥ 16 ॥

कमलगट्टों की माला, शङ्ख से बनी हुई माला या हाथी दांत की गुरियों की माला, अथवा चन्दन, तुलसी पवित्रकाष्ठों की बनी हुई मणियों की जपमालिकाएँ ली जा सकती हैं ॥१६॥

सौवर्णैः राजतैर्वापि सूत्रैस्ताम्रकृतैरपि ॥

कार्पासैर्वाल्कजैर्मुञ्जाभवैः कुशकृतैरपि ॥ 17 ॥

जपमाला का सूत्र (डोरा) स्वर्णतन्तु, या चाँदी तन्तु या ताँबा तन्तु का, अथवा कपास का, अथवा सन् का, या मूंज या फिर कुश का सूत्र भी ले सकते हैं, इनमें से यथाशक्ति सूत्र निर्माण कराकर माला गूंथें ॥ १७ ॥

पट्टसूत्रैरपि भवेत् कार्पासादिचतुष्टयम् ॥

द्विजनिर्मितमेव स्यादन्यत्र नियमो नहि ॥ 18 ॥

रेशम (क्षौद्र) सूत्रों से भी या - कपासादि चार (कपास, सन्, या मूंज या कुश) सूत्रों से । ये सूत्र द्विज के ही बनाए अन्य नहीं द्विजेतर निर्मित सूत्र नहीं लिया गया है, यही नियम है, इसका ध्यान रखना आवश्यक है ॥ १८ ॥

स्थूलादिसूक्ष्मपर्यन्तान् सर्पाकारतया मणीन् ॥

आरोपयेद् वा मध्ये तु स्थूलं गोपुच्छवद्भवेत् ॥19॥

जपार्थ जो मणि (गुरिया) है, उनमें बड़ी मोटी और सूक्ष्म आकार में कुछ छोटी हों तो उन्हें सर्पाकार जैसी गूंथे अर्थात् सर्प जो मोड़ लिये रहता है, सीधा नहीं रहता इस आकार में ( ) रहता है, यह अभिप्राय भगवान्दत्त का इंगित होता है, कि जैसे कुण्डलिनीशक्ति सर्पिणी वह कुटिलाकार में रहती है, वैसी माला के आकार की कल्पना अर्थात् जैसे आत्मशक्ति आध्यात्मिक रूप में कुण्डलिनीरूप में कंदरूप शिव में साढ़े तीन घेरे में आवृत किये रहती है। आचार्यों ने उसे सर्पिणीरूप में चित्रित किया है । भगवान् आद्यशङ्कराचार्य जी भी भुजगी नाम से कहते हैं । "स्वात्मनिरूपण स्तोत्र में " -

कवलितचंचलचेतोगुरुतरमण्डूकजातपरितोषा ।।

शेतेहृदयगुहायां चिरतरमेकैवचिन्मयीभुजगी ।। १४९ ॥

साधक भी माला में मंत्र स्मरण करता हुआ कुण्डलीध्यान में रह सकता है, उसका स्थूल आधार यह माला सर्पाकारिणी होगी अथवा मणिग्रन्थन क्रम में छोटी, बड़ी इस क्रम से या मध्य में स्थूल गुरिया आदि अंत में छोटी गुरिया, इस प्रकार माला का आकार गो पुच्छ जैसा प्रतीत होगा इसका भाव यही प्रतीत होता है कि भवसागरतरण में गोपुच्छ ही आधार होता हैं !!

श्रीविद्यासाधना में "रश्मिमाला" विहित है । उसके भार्गव ऋषि हैं उस माला की ग्रथनशैली इसी प्रकार है, कुल ३७ मंत्रों में पाँच - पाँच खण्डों में (मूलाधार, हृदय, भाल, ब्रह्मरन्ध्र, द्वादशान्त) एक एक मंत्र १९ सं. तक गुंथा गया है । अंत में पाँच मन्त्रों को एक समूह (मूलविद्या, श्यामा, महावाराही) तीन समूह, तथा अंत में पूर्तिविद्या एवं महापादुकामंत्रों का ग्रन्थन यह संकेत कर रहा है, माला सर्पिणी या गोपुच्छाकार का स्वरूप जैसी बने (यह चिन्तन एक यथाबुद्धि जो समझ में आया वह है । मर्मज्ञ विद्वान् जो भी इसका तात्पर्य हो आलोचना में व्यक्त कराने का कष्ट करें प्रार्थना है ॥१९॥

एवं सूत्रे मणीन् सम्यङ् निवेश्य ग्रन्थयेत् दृढ़म् ॥
मणीनामन्तरालेषु मेरूं स्थूलं तु सर्वतः ॥ 20 ॥

इस प्रकार विहित सूत्रों का चयन करके विभिन्न मणियों में से अपने लिये सकामता में अकामता में किसी एक का चयन कर उसे सूत्र में अच्छी तरह पिरोकर प्रत्येक में दूसरे मणि के बीच दृढ़ ग्रन्थि लगावे । पूरी माला में मणियों के मध्य में जो ग्रन्थि रहती है वह मेरु जैसी है, स्थूलरूप में पूरी माला में होती है ॥२०॥

अन्ते निवेश्य तं मूर्ध्नि ग्रन्थिं कृत्वा ततः परम् ॥
संस्कृत्य प्रजपेदुक्तसंख्यया मालया क्रमात् ॥ 21॥

अन्त में निश्चित संख्या में पिरोए हुए मणियों की माला के दोनों छोरों को मिलाकर गांठ लगा दे इसके बाद उस माला का

संस्कार एवं प्रतिष्ठा करके उस माला से इष्ट देवता के मन्त्र का जप करें ॥२१॥

अथवा प्रजपेत् सर्वमालया भृगुवंशज ॥
सर्वमालया अथवा पर्वमालाक्षापि ॥
अनामा मध्यपर्वादिमूलपर्वक्रमेण तु ॥ 22 ॥

अथवा हे भृगुऋषि के वंशज भार्गव! परशुराम!! पर्वमाला के द्वारा जप करें । उसका रूप यह है - दांए हाथ की अनामिका अंगुलि के बीच के पोर से आरंभ कर उसके नीचे के पोर तक इस प्रकार आगे के पोरों से - ॥ २२ ॥

कनिष्ठामूलतस्तर्जनीमूलान्तं पृथक् पृथक् ॥
पुनर्व्युत्क्रमतश्चापि संस्पृशन् जपमाचरेत् ॥ 23 ॥

कनिष्ठा अंगुलि के मूल पोर से ऊपर तक तथा मध्यमा अंगुलि के ऊपरी पोर तथा तर्जनी अंगुलि के मूलपोर तक दस संख्या होती है । मध्यमा अंगुलि का बीच का तथा नीचे का पोर सुमेरु होता है । सुमेरु का उल्लंघन नहीं किया जाता । यह कर माला का रूप है ॥२३॥

फिर व्युत्क्रम अर्थात् तर्जनीमूल से आरंभ कर अनामिका मध्य पर्व तक दस संख्या होती है । (पर्वमाला का एक प्रकार जो प्रचलित है; उसमें तर्जनी के ऊपर का पर्व तथा बीच का पर्व सुमेरु माना जाता है जो प्रस्तुत श्लोक २३ वें में है ।)

इयमुक्ता पर्वमाला संख्यया जपमाचरेत् ॥
जपं यः संख्यया हीनं करोत्यतिसुमूढधीः ॥ 24 ॥

यह पर्वमाला है, इससे भी संख्या से ही जप करना चाहिये ॥ संख्या से हीन जो जप करता है वह अत्यन्त ही स्वभाव से मूर्ख बुद्धि है ॥२४॥

कोटि-कोटि जपेनापि न फलं विन्दते क्वचित् ॥
अतस्तु गणनापूर्वं जपं कुर्यात् सुसाधकः ॥ 25॥

बिना संख्या निश्चित किये लम्बे समय तक संख्या का अनुमान

किये कि करोड़ों जप हो गया, परन्तु संख्या निश्चित कर जपने से फल मिलता है अन्यथा जप का फल करोड़ों भी जपने से नहीं मिलता अतः जो चतुर साधक है गणनापूर्वक जप करे ॥ २५॥

उपासनं स्नानसन्ध्या पूजा पारायणादिकम् ॥
तेषु मुख्यतमस्त्वेष जप एव न चेतरः ॥ 26॥

उपासना,स्नान-संध्या पूजा और स्तोत्र पारायणादिकृत्यों में सबसे मुख्यतम तो यह जप विधिरूप उपासना है अन्य उतना, प्रमुख नहीं है ॥२६॥

देहे प्राणो यथा मुख्यस्तथोपास्तावयं स्मृतः ॥
साधकः सर्वदा तेन जपं कुर्यात् समाहितः ॥ 27 ॥

शरीर में जिस प्रकार प्राण प्रमुख हैं, उसी प्रकार यह जप विधान उपासना में सर्वप्रमुख माना गया है, इसलिये जो साधक हैं, वह सभी समय, आवश्यकरूप से इस जपविधि का सावधानतया उपयोग करे॥२७॥

अतआपत्सु जपत एव सर्वं कृतं भवेत् ॥
जपेऽपि मानसः श्रेष्ठो ध्यान युक्तस्ततोऽधिकः ॥28॥

इसलिये आपत्कालों में जप विधि से ही सभी कार्य सम्पन्न माने जाते हैं । जप में भी (जप-वाचिक, उपांशु) मानसजप मन के द्वारा जप श्रेष्ठ है, उस मानसजप में भी यदि ध्यान सहित मानसजप हो तो उस मानसजप से भी वह श्रेष्ठ होता है ॥२८॥

यावद्बाह्यक्रियाहीनं तावदुत्तममीरितम् ॥
उपासनाख्यं यत्कर्म ज्ञानमेव तदीरितम् ॥ 29 ॥

जब तक वह ध्यानपूर्ण मानस हो रहा है, तो वह बाहरी क्रिया रहित होना चाहिये (मानसजप में जीभ बिल्कुल नहीं हिलना चाहिये एवं वर्णों का उच्चारण न होकर मन में ही स्मरण होना चाहिये । तभी तक वह उत्तम प्रयोग है । उपासनात्मक जो "कर्म" नामक पुरुषार्थ है, उसका केवल ज्ञान ही कहा गया है ॥२९॥

परिणामे यतस्त्वेतज्ज्ञानरूपं भवेद् ध्रुवम् ॥
अग्नौ हुतं भवेदग्निमयमेवमुपासनम् ॥ 30 ॥

उपासना में यह जो ज्ञान है कर्म रूप अर्थात् उपासना रूप कर्म ही ज्ञान है, परिणाम में । उपासना के परिणाम से यह ज्ञान ही बीजरूप में उपासना में प्रयुक्त होता है । जैसे कोई पदार्थ अग्नि में आहुत हो, तो वह वस्तु जैसे अग्निमय हो जाती है, वैसे ही यह उपासना भी ज्ञानमय हो जाती है ॥ ३०॥

समर्पितं देवतायां गुह्यं तद्देवतात्मकम् ॥
निष्कामत्वेन यत्कर्म क्रियते तद्विमुक्तिदम् ॥ 31 ॥

देवता में जो गुह्य उपासनारूप कर्म समर्पित होने पर वह भी उस देवता का रूप होता है । और निष्कामभाव से किया हुआ कर्म वह मुक्तिदायक होता है ॥ ३१ ॥

एवं यत्कर्म सम्यग्वै देवतायै समर्पितम् ॥
तद्गुह्यं जायते तस्मादतिगुह्यं विमुक्तिदम् ॥ 32 ॥

इस प्रकार जो कर्म अच्छी तरह देवता के लिये समर्पित हुआ है, वह कर्म गुह्यकर्म कहा जाता है, उस से भी अति गुह्यकर्म मुक्तिपद माना जाता है ॥३२॥

जपस्तत्रातिगुह्यः स्याद्-अतस्तन्मुक्तिसाधनम् ॥
एवमेव जपविधिर्जामदग्न्य समीरितः ॥ 33 ॥

हे जामदग्न्य! परशुराम!! निष्काम जप अतिगुह्य है, इसलिये वह मुक्ति का साधन है ॥ इस प्रकार हमने जपविधि सरहस्य विवेचित किया है ॥ ३३ ॥

॥ श्री त्रिपुरारहस्ये चर्याखण्डे दत्तभार्गवसंवादे जपविधिकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

ॐ सर्वभूतेभ्योऽभयदं -तं श्रीगुरुरत्नेश्वरम् ।।
शरणागतशरण्यं ब्रह्मण्यं द्विजविप्राणाम् ।।
श्रीमज्जगद्गुरवे नमः ।।

श्रीचर्याखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः

अथपूजाविधिं वक्ष्ये शृणु राम समाहितः ॥
पूजनादेव सन्तुष्टा भवति त्रिपुराम्बिका ॥ 1 ॥

जपविधि का विवेचन करने के बाद हे राम ! मैं अब तुम्हारे सामने पूजाविधि का विवेचन करूँगा । तुम सावधान होकर सुनो। वे भगवती पूजन से ही सन्तुष्ट होती हैं ॥१॥

नित्या नैमित्तिका चैव सा द्विधा सम्प्रकीर्तिता ॥
दिवा नित्यां प्रकुर्वीत रात्रौ नैमित्तिकां तथा ॥2॥

वह पूजा दो प्रकार की कही गई है, नित्या और नैमित्तिका भेद से । उसमें नित्या (प्रतिदिन की जाने वाली) पूजा दिन में करना चाहिये तथा नैमित्तिकीपूजा (विद्योपासना में कहे गये पर्वों में) रात्रि में करना चाहिये ॥२॥

नित्यां कृत्वैव पूजां वै कुर्यान्नैमित्तिकाह्वयाम् ॥
चक्रराजेऽत्युत्तमा सा पूजाऽन्यत्र तु मध्यमा ॥ 3 ॥

नित्या (रोज की जाने वाली पूजा) पूजा करने के बाद ही रात्रि में नैमित्तिकी नाम वाली पूजा करनी चाहिये । ये दोनों ही पूजाएँ श्रीचक्र में ही उत्तम मानी जाती हैं, अन्य बिम्ब में की गई पूजाएँ तो मध्यमकोटि की मानी जाती हैं ॥ ३ ॥

पूजयेदन्यत्र तदा यदि चक्रं न लभ्यते ॥
मूर्त्यादौ पुस्तके वापि चक्रालाभे तु पूजयेत् ॥ 4 ॥

अन्यत्र बिम्ब में पूजा उस समय करनी चाहिये जिस समय यदि

चक्र उपलब्ध न हो तो । चक्र के प्राप्त न होने से पूजा मूर्ति आदि में अथवा अपनी कुलपुस्तक में ("गोपायेत् कुलपुस्तकानि" यह नियम है) भी पूजा श्रीचक्र मिलने तक की जा सकती है ।।४।।

स्थावरे यन्त्रमूर्त्यादौ पूजनं सर्वतोऽधिकम् ।।
लब्ध्वा स्थिरं तु यन्त्राद्यं मोहाद् यो न प्रपूजयेत् ।।5।।

स्थावर (स्थिर बिम्ब) यन्त्र,मूर्ति आदि में पूजन अन्य बिम्ब में किये गये पूजन से अधिक फलदायी होता है । अतः जिसे यन्त्र, या मूर्ति उपलब्ध हो गई हो तो उनमें पूजन करे अन्यथा मिलने पर भी पूजन न करें मोहवश होकर - तो - ।।५।।

तमल्पभाग्यं जानीयात् पुरुषार्थपरिच्युतम् ।।
यन्त्रं तु सर्वतः श्रेष्ठं शिवशक्तिमयत्वतः ।। 6 ।।

जो यन्त्र मिलने के बाद भी यन्त्र में पूजा नहीं करता, उसे तो अल्पभाग्य ही जानना चाहिये, पुरुषार्थों से सर्वथा पतित मानना चाहिये । क्योंकि यन्त्र तो सभी प्रकारों से सर्वश्रेष्ठ है । श्रीयन्त्र शिवशक्तिमय ही है । (श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः) ।। ६ ।।

बिन्दुस्त्रिवसुदिक्पङ्क्तिमनुकोणानिवै क्रमात् ।।
वसुषोडश पत्रे च वृत्तत्रयसुगर्भिते ।। 7 ।।

श्रीचक्र के स्वरूप वर्णन श्री दत्तगुरुवर्य परशुराम जी से कर रहे हैं-क्रमशः उन्होंने श्रीचक्र के बिन्द्वादि आवरणों का क्रम उपदिष्ट किया- यथा -१बिन्दु, २त्रिकोण, ३अष्टकोण, ४अन्तर्दशार (कोण), ५बहिर्दशार (कोण), ६चतुर्दशार (कोण), ७अष्टकोण (दल), ८षोडशदल, ९तीनवृत्त ।।७।।

भूपुरत्रितयद्वारचतुष्टयविराजितम् ।।
एतद् यन्त्रं महाश्रेष्ठं पुरुषार्थैकसाधनम् ।।8।।

तीन भूपुर के चतुष्कोण १/१० और इन्हीं में चारद्वार इनसे

विराजित इस प्रकार यह यन्त्र महान् है श्रेष्ठतम है, तथा पुरुषार्थों का एकमात्र अमोघसाधन है ।।

श्रीचक्रवर्णन में श्री हयग्रीवजी ने भी अगस्त्यजी से कहा - यथा-

चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।।
नवचक्रैस्तु संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ।। ७० ।।
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा ।।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च वै ।। ७१ ।।
बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम् ।।
चतुरस्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात् ।। ७२ ।।

(त्रिशती उत्तरार्धमाहात्म्ये)

भगवान् श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी ने श्री चक्रस्वरूप का वर्णन किया है सौन्दर्यलहरी स्तोत्र में - यथा -

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि, -
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल प्रकृतिभिः ।।
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रिवलय -
त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः ।।(सौ.ल.११)

श्रीचक्र के इन वर्णनों से श्रीचक्राराधन में समयमतानुसार बिन्दु से सृष्टिक्रम में ध्यान किया जाता है, - श्रीचक्र का सुप्रसिद्धध्यान भी इसी प्रकार है - यथा -

४ बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं -
मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयञ्च -
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ।।तन्त्रोक्तिः।।

त्रिकोणादिन्द्रकोणान्तं शक्तिचक्राणि भार्गव ॥
पञ्चान्यानि तु चक्राणि राम शैवानि वै क्रमात् ॥9॥

हे भार्गव! श्रीचक्र में बिन्दु के तीन तरफ जो त्रिकोण है, उस त्रिकोण से इन्द्रकोणान्त तक (पूर्व दिशा) पाँच शक्ति चक्र (त्रिकोण) शक्ति चक्र हैं, अन्य चक्र (त्रिकोण) हे राम! वे क्रम से शिवचक्र हैं जो चार हैं ।

अगले श्लोक १० से लेकर १४ श्लोक पर्यन्त ६ श्लोकों में श्रीचक्र निर्माणक्रम श्रीदत्तात्रेय भगवान् परशुरामजी को बता रहे हैं- यथा-

वेदाङ्गुले त्रिकोणं स्यात् पूर्वस्मिन् तस्य बाह्यतः ॥
चतुष्कोणं रामाङ्गुलक्षेत्रं तु भार्गव ॥ 10 ॥

हे भार्गव! श्रीचक्र में सर्वोपरि जो त्रिकोण है उसका ४ अंगुल परिमाण है उस चारअंगुल परिमाणात्मक त्रिकोण के बाहरी भाग से एक चतुष्कोण बन जाता है, चतुष्कोण श्रीगुरुत्रय स्थान □ है, उसका परिमाण तीनअङ्गुल है ॥१०॥

अथोभयात्राष्टकोणं षडङ्गुलमिते भवेत् ॥
रुद्राङ्गुले तु दिक्कोणमन्यत् सूर्याङ्गुले भवेत् ॥11॥

त्रिकोण के दोनों और अष्टकोण है, १ नीचे त्रिकोण, ३ बांए पार्श्व में १ऊपर की ओर तथा, ३ दांये पार्श्व में, इस प्रकार आठ त्रिकोणों का परिमाण छहअङ्गुल का है,अन्तर्दशार इनका परिमाण ग्यारह अङ्गुल तथा बहिर्दशार = द्वादश अङ्गुल परिमाण का है॥११॥

ततः सूर्याङ्गुलैश्चेन्द्रकोणं तद् बाह्यतः क्रमात् ॥
सकर्णिकं नागपत्रं भवेदष्टादशाङ्गुले ॥ 12 ॥

इसके आगे चतुर्दशार का परिमाण बारह अङ्गुलों का है । इस चतुर्दशार के बाहर कर्णिकायुक्त अष्टदलों का आवरण है, उसका अष्टादशार (१८) अङ्गुलों का है ॥ १२ ॥

अष्टादशाङ्गुले तद्वन्नृपपत्रं सकर्णिकम् ॥

सकर्णिकं च भूबिम्बं सद्वारं द्वादशाङ्गुले ॥ 13 ॥

जिस अष्टादश अङ्गुल परिमाण का पूर्व में अष्टदल कमल पत्रावरण था, उसके बाहर वैसे ही अष्टादश परिमाण का षोडशदलों का आवरण भी कर्णिका युक्त है । इस षोडशदल कमलावरण के बाहर तीन रेखाओं वाले त्रिवृत्त के सहित बारह अङ्गुल परिमाण का है ॥१३॥

षण्णवत्यङ्गुलं यन्त्रमेवं सर्वोत्तमं भवेत् ॥

इदं श्री त्रिपुरादेव्याः स्थानं प्रियतमं भवेत् ॥ 14 ॥

इस प्रकार छियान्नवे अङ्गुल परिमाण का यन्त्र सर्वोत्तम होता है। ऐसा श्रीयन्त्र भगवती त्रिपुराम्बादेवी का स्थान अत्यन्त प्रियतम होता है ॥ १४ ॥

अत्र सन्निहिता नित्यं सर्वावरणसंयुताः ॥

पूज्यावृत्तिसहयुक्ता त्वन्यथा न प्रसीदति ॥ 15 ॥

इस प्रकार के श्रीयन्त्र (श्रीचक्र) में सभी आवरणों (९+१) के सहित नित्य ही सभी कालों में संस्थित रहती हैं । ऐसे में आवृतियों के सहित अर्थात् सभी आवरणों में स्थित शक्तियों सहित पूजित होती हैं, एवं प्रसन्न होती हैं अन्यथा वह जगदम्बा प्रसन्न नहीं होतीं ॥ १५॥ शीत, अन्धकार,रोगादिकों का जो प्राणियों को कष्ट देते हैं वैसे ही --

यथा सूर्यस्य किरणः सर्वतः समवस्थिताः ॥

सूर्यात्मभूतास्तस्यांशाः सर्वलोकप्रसादकाः ॥16॥

जिस प्रकार सूर्य की किरणें सर्वत्र (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) में व्याप्त होकर स्थित रहती हैं । वे सर्वत्र व्याप्त किरणें सूर्य की आत्मभूत

हैं, अर्थात् सूर्य के ही विग्रह से सर्वत्र व्याप्त हो रही इसलिये सूर्यअंशी है और वे किरणें अंशरूपा हैं, तथा समस्तलोकों को जीवन देती हैं। वैसे ही अंशीरूपा भगवती की वे समस्त आवरण शक्तियाँ अंशभूता हैं अर्थात् भगवती के श्रीविग्रह से ही सर्वत्र प्रसारित होकर लोककल्याण कर रही हैं ॥ १६ ॥

शीतान्धकाररोगादिनाशकाः प्राणिनां तथा ॥
त्रिपुरायाः पराशक्तेः परिवाराख्यदेवताः ॥ 17 ॥

जिस प्रकार सूर्य की किरणें संसार में प्रकाश देती हैं, जो जड़, चेतन में स्फूर्ति का संचार करती हैं वैसे ही श्रीचक्र के आवरणों की शक्तियाँ जो पराशक्तित्रिपुरा की परिवाररूप से जानी गईं देवता हैं प्राणियों का पोषण करती हैं ॥ १७ ॥

लोकवाञ्छार्थदानाय नियुक्तास्तु तथैव ताः ॥
तदंशभूताः सर्वा वै तस्मात्पूज्या यथाविधि ॥ 18 ॥

वे परिवाराख्य शक्तियाँ संसार की कामनाओं को सुफल प्रदान करने के लिये भगवती त्रिपुराम्बा द्वारा नियुक्त की गई हैं, वे सभी भगवती की अंशभूता हैं, इस कारण उनकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

किरणाकृतिस्तत्राद्या त्रिपुरात्मसमुद्भवा ॥
मध्यत्र्यस्त्रस्थिता भक्त्या पूजिता वाञ्छितार्थदा॥19॥

वे पराशक्ति की शक्तियाँ उन आद्या भगवती त्रिपुराम्बा के श्रीविग्रह से समुद्भूत वे किरण (मयूख) रूपा हैं, वे श्रीचक्र के मध्यस्थित त्रिकोण की तीन रेखाओं में ५-५-५ की संख्या में स्थित है भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया जाता है, वे इच्छित कामनाओं को पूर्ण करती हैं ॥ १९ ॥

नित्याः पञ्चदश प्रोक्ताः स्थितिरूपाः क्रमेण तु ॥
कामेश्वर्यादिचित्रान्ताः समाना मूलविद्यया ॥ 20 ॥

वे जो त्रिकोण की तीन रेखाओं में स्थित कही गईं हैं, वे पन्द्रह हैं, तथा क्रम से १ से (प्रतिपदा) लेकर शुक्लपक्ष में १५ (पूर्णिमा) पर्यन्त एवं कृष्णपक्ष में अमावस्या (३०) पर्यन्त स्थित रहती हैं । शुक्लपक्ष में कामेश्वरी (१) से पूर्णिमा (चित्रा १५) पर्यन्त एवं कृष्ण पक्ष में चित्रा (कृ. १) से कामेश्वरी (३० अमावस्या) पर्यन्त पूजन क्रम से (तिथिवार) होता है, इन पन्द्रह नित्याओं में महानित्या भगवती की कला का ही विकास है, इन नित्याओं के महानित्या ललितात्रिपुरसुन्दरी का पूजन होता है । ये शक्तियाँ नित्या हैं - अर्थात् उत्पत्ति-विनाशरहित होने से नित्या कही जाती हैं । ये मूलविद्या (पञ्चदशीमन्त्र के पन्द्रह अक्षरों) के समान हैं ॥२०॥

त्रिकोणस्य त्रिरेखासु पञ्च पञ्चतया स्थिताः ॥
तासां मूलस्वरूपेण महानित्या तु मध्यमा ॥ 21 ॥

श्रीचक्र के मध्यवर्ति त्रिकोण की तीन रेखाओं में पाँच +पाँच +पाँच की संख्या में स्थित हैं । उन पन्द्रहनित्याओं के मूलरूप से महानित्या त्रिपुराम्बा मध्यस्थित रहती हैं ॥ इन नित्याओं के महानित्या सहित पूजनक्रम में --

ज्ञानार्णव में - वे श्लोक इस प्रकार हैं -: यथा -:

एतस्मिन् समये देवि ! तिथिनित्यां प्रपूजयेत् ।।
कामेश्वर्यादिकानित्या विचित्रान्ता महेश्वरि ।।
प्रतिपत्पौर्णमास्यन्तास्तिथिरूपाः प्रपूजयेत् ।।
विभाव्य च महात्र्यस्रमग्रदक्षोत्तरक्रमात् ।।

इन रेखाओं में क्रम का स्पष्ट विवेचन आगे के श्लोकों में व्यक्त हैं यथा -

प्रतिपत्तिथिमारम्भ्य पौर्णमास्यन्तमद्रिजे ।।
एकैकां पूजयेन्नित्यां महासौभाग्यमाप्नुयात् ।।
कृष्णपक्षे महेशानि पूजयेत्तिथिमण्डलम् ।।
विचित्राद्या महारोहे यावत् कामेश्वरी भवेत् ।।
पूजनीया विलोमेन अन्यत्र परमेश्वरि ।।
कलाः षोडश देवेशि! यस्तु चन्द्रकलाः क्रमात् ।।
स सौभाग्यं महादेवि! प्राप्नोति गुरुशासनात् ।।
कामेश्वर्यादिका नित्याः पूजयित्वा क्रमात्ततः ।।
तिथिनित्यां त्रिधा देवि! पूजयेद् भाग्यहेतवे ।।
पुनः त्रिपुरां नित्यां यजेत्सौभाग्य हेतवे ।। -

इस क्रम के लिये श्री गुरूमुखसम्प्राप्तमार्ग अनुकरणीय होता है।

त्र्यस्त्रपृष्ठे तु गुरवः पूज्याः श्रीत्रिपुरात्मकाः ॥
मित्रीश षष्ठीशौड्डीशाः आद्याचार्याः शिवाङ्गकाः॥22॥

त्रिकोण के पृष्ठभाग में चतुष्कोण में (⊜) श्रीत्रिपुरात्मक श्रीगुरुमित्रीश, षष्ठीश, और उड्डीश आद्यआचार्य हैं तथा शिवाङ्ग हैं अर्थात् शिवरूप हैं ॥ २२ ॥

कूटोपासनसम्प्राप्तमहेश्वरपदा इमे ॥
तत्र रेखात्रये पूज्या भार्गवैकैकशः क्रमात् ॥23॥

कूटोपासन सम्प्राप्त = इन आद्याचार्य गुरुत्रय ने कूट अर्थात् पञ्चदशी मूलमन्त्र के कादिकूट,हादिकूट एवं सादिकूटों की उपासना से महेशपद प्राप्त कर लिया है,वहाँ चतुष्कोण में तीनरेखा (कल्पित) में एक-एक क्रमशः पूजन करें - ॥ २३॥

त्रय एतेनाथरूपा नवात्मकतया स्थिताः ॥
ओघरूपास्तथैवोक्तास्तदंशत्वेन संस्थितेः ॥ 24 ॥

ये तीनों (मित्रीश, षष्ठीश, उड्डीश) गुरु नाथरूप हैं, नवनाथ रूप में नवसंख्या में (उड्डीशनाथ -३-प्रकाशानन्दनाथ, विमर्शानन्दनाथ, आनन्दानन्दनाथ, षष्ठीशानन्द -३- ज्ञानानन्दनाथ, सत्यानन्दनाथ, पूर्णानन्दनाथ, - मित्रीशानन्दनाथ-मित्रेशानन्दनाथ वा - स्वभावानन्दनाथ, प्रतिभा-नन्दनाथ, सुभगानन्दनाथ) स्थित हैं- उसी प्रकार ओघरूपतया उनके अंश (गुरुअंश) रूप से संस्थित होने से -॥२४॥

गुरवस्त्रिप्रकाराः स्युर्दिव्याः सिद्धाश्च मानवाः ॥
देवसिद्धमनुष्येषु तत्तद्विद्याप्रवर्तकाः ॥ 25 ॥

वे तदंशभूत गुरुगण त्रिप्रकारों के हैं , १ दिव्यौघ, २सिद्धौघ, ३ मानवौघ, ये तीनों गुरु दिव्यौघ-देवों में उन विद्याओं के प्रवर्तक, सिद्धौघ-सिद्धगणों में उन-उन विद्याओं के प्रवर्तक हैं, तथा मानवौघ मनुष्यों में उन-उन विद्याओं के प्रवर्तक हैं ॥२५॥

सदाशिवांशभूतास्ते सर्वज्ञदिव्यमूर्तयः ॥
मुनिवेदेभसंख्याता महापुरुषसंज्ञिताः ॥26॥

ये गुरुगण (नवनाथ, ओघत्रय,) भगवती की अनुग्रहशक्ति के कारक सदाशिव के अंशभूत हैं, ये सर्वज्ञ हैं, दिव्यमूर्ति हैं,इनकी ओघों की संख्या- दिव्यौघ-७ हैं १ प्रकाशानन्दनाथ, २ परशिवानन्दनाथ, ३-परशक्त्यम्बा, ४-कौलेश्वरानन्दनाथ, ५-शुक्लदेव्यम्बा, ६-कुलेश्वरानन्दनाथ,७- कामेश्वर्यम्बा । सिद्धौघ -४ हैं - १ भोगानन्दनाथ, २ क्लिन्नानन्दनाथ, ३ समयानन्दनाथ, ४ सहजानन्दनाथ। मानवौघ-८-: १ गगनानन्दनाथ, २ विश्वानन्दनाथ, ३ विमलानन्दनाथ, ४ मदनानन्दनाथ, ५ भुवनानन्दनाथ, ६ लीलाम्बा, ७ स्वात्मानन्दनाथ, ८ प्रियानन्दनाथ । ये सभी महापुरुष संज्ञक हैं ॥२६॥

सिद्धानां सिद्धिदा यस्मात् सिद्धसिद्धास्ततस्त्विमे ॥
एतान् सम्पूज्य तत्पश्चात् पूजयेत्तु नवावृतिम् ॥27॥

सिद्धजनों को ये गुरुवर्य सिद्धियाँ देते हैं, जिससे ये सिद्धगण सिद्धसिद्ध रूप में माने जाते हैं, इन मानवौघ से मनुष्यों में चली आ रही श्रीविद्योपासना की सनातन गुरु परम्परा तथा श्रीविद्या मन्त्र ब्रह्मादि जो बारह उपासक हैं, उनसे चली परम्परा में वर्तमान, तीन धाराएँ श्रीविद्योपासना की विद्वानों ने वर्णित की हैं, १ दत्तात्रेयोपासित क्रम, २ हयग्रीवोपासना क्रम, ३ आनन्दभैरवोपासित क्रम । इस समय कामराजोपासित पञ्चदशी के उपासक अधिक हैं, त्रिशती स्तोत्र भी कादि पञ्चदशी पर हैं, उस पर श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य जी का भाष्य है । २ हादि पञ्चदशी -जिसकी उपासिका- माता लोपामुद्रा एवं उनके पति श्रीअगस्त्यजी हैं । वर्तमान में जिनकी अहैतुकी श्रीगुरुवर्य की अनुग्रह शक्तिपूर्ण करुणा से पूर्णदीक्षा हो जाती है, वे श्रीगुरु, श्री परमगुरु और श्रीपरमेष्ठी गुरु की पूजा इसी चतुष्कोण में करते हैं । इन गुरुओं के पूजन के पश्चात् साधक श्रीचक्र के नवावरण का पूजन करें ॥ २७ ॥

तत्रादावाद्यरेखायां भूपुरस्य तु संस्थिताः ॥
अणिमाद्याः सिद्धयो वै दशदिग्देशके स्थिताः ॥28॥

उस श्रीयन्त्र के भूपुर (त्रैलोक्यमोहनचक्र) प्रथमावरण की प्रथम रेखा में अणिमादि दशसिद्धियाँ दशदिशाओं में निश्चितरूप से स्थित हैं । उन अणिमादि दशसिद्धियों के नाम - यथा -

१ अणिमा, २ लघिमासिद्धि, ३ महिमासिद्धि, ४ ईशित्वसिद्धि, ५ वशित्वसिद्धि, ६ प्राकाम्यसिद्धि, ७ भुक्तिसिद्धि, ८ इच्छासिद्धि, ९ प्राप्तिसिद्धि, १० सर्वकामसिद्धिः ये सिद्धियाँ दशदिशाओं में पूजित होती हैं ॥ २८ ॥ आगे विवरण - यथा- श्लोकत्रये -

अणिमाऽणुत्वमित्युक्तं लघुत्वं लघिमा तथा ॥
महिमा स्यान्महत्वं तु स्वातन्त्र्यं चेशिता मता ॥29॥

वशित्वं च वशीकारत्वलंभावः प्रकामता ॥
भुक्तिः सकल भोगो हि यथेच्छाखिलवाञ्छितम्॥30॥
प्राप्तिरप्राप्त लब्धिर्हि कामस्तु सुखसाधनम् ॥
तास्त्वेताः सिद्धिदाः प्रोक्तास्तद्रूपत्वादथाऽपरा ॥31॥

१ अणिमा सिद्धि = अणुभाव की सिद्धि (रेखा के पश्चिम में), २ लघुत्वसिद्धि = लघुभाव अर्थात भारहीनत्वसिद्धि (रेखा के उत्तर में), ३ महिमा सिद्धि = महत्त्वसिद्धि (रेखा के पूर्व में), ४ ईशित्वसिद्धि = स्वातन्त्र्यभावसिद्धि (रेखा के दक्षिण में) - ॥२९॥

५ वशित्वसिद्धि = वशीकारत्व = अर्थात् सर्वभूतवशीकरण (रेखा के वायव्य में) ६ प्राकाम्यसिद्धि = पर्याप्तिभाव अर्थात् सन्तुष्टि (रेखा के ईशान में), ७ भुक्तिसिद्धि समस्तभोगों की जो जो वाञ्छित हैं, उनकी भोगसिद्धि, (रेखा के अग्निकोण में), ८ इच्छासिद्धि = जो जो इच्छाएँ हैं उनकी सिद्धि, (रेखा के निर्ऋति में ॥३०॥

९ प्राप्तिसिद्धि = अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति (रेखा के निऋति पश्चिम मध्य में), १० सर्वकामसिद्धि = समस्त कामनाओं की सिद्धि (रेखा के ईशानपूर्वमध्यमें), ये दस सिद्धियाँ भूपुर की प्रथम रेखा की दसों दिशाओं में स्थित पूजित होकर ये सिद्धियाँ सर्वप्रथम साधक को दे देती हैं, ऐसा आचार्यों ने कहा है क्योंकि साधक तद्रूप हो जाता है ॥ अब अन्य वर्णन आगे है -: ॥३१॥

द्वितीयरेखासंस्थास्ता ब्राह्म्याद्यास्त्वष्टमातृकाः ॥
ब्रह्मादिशक्तिरूपास्ता - अष्टौदिक्क्रमसंस्थिताः॥32॥

भूपुर (त्रैलोक्यमोहनचक्रावरण) की मध्यस्थित द्वितीयरेखा में ब्राह्म्यादिअष्टमातृका-१ ब्राह्मी, २, माहेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी,

५ वाराही, ६ माहेन्द्री, ७ चामुण्डा, ८ महालक्ष्मी- ये आठ मातृकाएँ हैं - ये सभी ब्रह्मा आदिदेवों की शक्तिरूपा हैं, रेखा की आठों दिशाओं में संस्थित हैं - विवरण इस प्रकार है यथा- विशेष संयोजन इसमें ''योगिनीहृदयोक्त'' ''पूजासंकेत में'' परमशिवदेवीसंवाद में - १९३वीं कारिका में भगवान् शिव का देवी से कथन है, कि **''चतुष्षष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम्''**।

''चक्रमेतत्समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते '' ।। इति -

इसी पद्धतिग्रन्थ के संकेत की ७९वीं कारिका में ''योगिनीमेलनोद्युक्तैः'' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसकी व्याख्या अमृतानन्द योगी ने की है - **'दीपिकाटीका' अथवा ब्राह्म्याद्यष्टकार्चनार्थम् , सामयिकशक्तिमेलनं योगिनीमेलनं - तत्रोद्युक्तैः ''सामयिकैरिति''**- इस आधार पर ब्राह्म्यादि मातृकाओं के साथ अक्षोभ्यादि चौंसठ योगिनियों के आठ-आठ अष्टकों का प्रत्येक आठों मातृकाओं से संयुक्त कर पूजा की जाती है - सर्वप्रथम वे अक्षोभ्यादि चौंसठ योगिनियों के नाम इस प्रकार हैं- १ अक्षोभ्या, २ ऋक्षकर्णा, ३ क्षपणा, ४ राक्षसी, ५ क्षया, ६ पीङ्गाक्षी, ७ अक्षया, ८ अक्षपा, (प्रथमाष्टक) ।

९ ईला, १० लीलावती, ११ लया, १२ लीला, १३ लङ्का, १४ लङ्केश्वरी, १५ लालसा, १६ विमला, (द्वितीयाष्टक) ।

१७ हुताश, १८ विशालाक्षी, १९ हुङ्कारा, २० बडवामुखी, २१ हाहारवा, २२ महाक्रूरा, २३ क्रोधना, २४ भयानना, (तृतीयाष्टक)।

२५ सर्वज्ञा, २६ तरला, २७ तारा, २८ ऋग्वेदा, २९ हयानना, ३० सारा, ३१ रससंग्राहा, ३२ सरवा, (चतुर्थाष्टक)।

३३ तालजंघा, ३४ रक्ताक्षी, ३५ करङ्किनी, ३६ विद्विजिह्वा, ३७ मेघनादा, ३८ प्रचण्डोग्रा, ३९ कालकरणी, ४० वरप्रदा, (पञ्चमाष्टक)।

४१ चन्द्रा, ४२ चन्द्रवला, ४३ प्रपञ्चा, ४४ प्रलयान्तिका, ४५ शिशुवक्रा (पिचुवक्रा), ४६ पिशाची, ४७ पिशिताशा, ४८ लोलुपा, (षष्ठाष्टक)।

४९ वमना, ५० तपनी, ५१ वामना, ५२ महिषमर्दिनी, ५३ वायुवेगा, ५४ बृहत्कुक्षी, ५५ विकृता, ५६ विश्वरूपा, (सप्तमाष्टक)।

५७ यमजिह्वा, ५८ जयन्ती, ५९ दुर्जया, ६० अवान्तिका, ६१ विडाली, ६२ रेवती, ६३ प्रेतना, ६४ विजयान्तिका, (अष्टमाष्टक)।

इन अक्षोभ्यादि योगिनियों के प्रत्येक के नेतृत्व में एक-एक योगिनी की ६४-६४ कोटियोगिनी किरणें होने से ६४ चौसठकोटि-योगिनीगणसेविता भगवतीत्रिपुरा हैं, उनके श्रीचक्र के भूपुर (त्रैलोक्य-मोहनचक्र) की मध्यरेखा की आठों दिशाओं में ब्राह्म्यादि आठमातृकाओं में प्रत्येक मातृका के साथ अक्षोभ्यादि के आठ- आठ अष्टकयुक्त होकर योगिनीसहित मातृपूजन योगिनी मेलन के साथ होता है - मातृका के साथ दिशाक्रम इस प्रकार है- १ ब्राह्मी मातृका- प्रथमाष्टक सहित पश्चिमदिशा में, २ माहेश्वरी मातृका - द्वितीयाष्टक सहित उत्तरदिशा में, ३ कौमारी मातृका तृतीयाष्टक सहित पूर्वदिशा में, ४ वैष्णवीमातृका चतुर्थाष्टक सहित दक्षिण में, ५ वाराहीमातृका पञ्चमाष्टकसहित, वायव्य में, ६ ऐन्द्री मातृका षष्ठाष्टक सहित ईशान में, ७ चामुण्डामातृका सप्तमाष्टकसहित आग्नेय में, ८ महालक्ष्मीमातृका अष्टमाष्टकसहित नैऋत्य में, ये ब्राह्म्यादिमातृकाएँ ब्राह्म्यादिकों की शक्तिरूपा हैं - इन मातृकाओं के स्वरूप का वर्णन योगिनीहृदय के पूजासंकेत में कारिका है - ११६वीं - यथा- ब्राह्म्याद्या अपि तत्रैवयष्टव्या क्रमशः प्रिये = तत्रैव मध्यचतुरस्रे यष्टव्याः'' इति अमृतानन्द (दीपिकाटीकायाम्)- ब्राह्म्यादि मातृकाओं के स्वरूप का वर्णन ११७वीं कारिका से लेकर १२४वीं कारिका

तक किया है भगवान् शिव ने -यथा - मूलमात्र -

(१) ब्रह्माणी पीतवर्णा च चतुर्भिःशोभिता मुखैः ।।
वरदाऽभयहस्ता च कुण्डिकाक्षस्रगुज्ज्वला ।।१।। (११७)
(२) माहेश्वरी श्वेतवर्णा त्रिणेत्रा शूलधारिणी ।।
कपालमेणं परशुं दधाना पाणिभिः प्रिये ।।२।। (११८)
(३) कौमारी पीतवर्णा च शक्तितोमरधारिणी ।।
वरदाभयहस्ता च ध्यातव्या परमेश्वरी ।।३।। ११९)
(४) वैष्णवी श्यामवर्णा च शङ्खचक्रगदाब्जकान् ।।
हस्तपद्मैश्च विभ्राणाभूषिता दिव्यभूषणैः ।। ४।। (१२०)
(५) वाराही श्यामलच्छाया पोत्रिवक्त्रसमुज्ज्वला ।।
हलं च मुसलं खड्गं खेटकं (दण्ड) दधती भुजैः ।।५।।(१२१)
(६)ऐन्द्री श्यामलवर्णा च वज्रोत्पललसत्करा ।।
(७) चामुण्डा कृष्णवर्णा च शूलं डमरुकं तथा ।।६।। (१२२)
खड्गं वेतालकं चैव दधाना दक्षिणैर्भुजैः ।।
नागखेटकघण्टाख्यान् दधाना परमेश्वरी ।। ७।। (१२३)
(८) महालक्ष्मीस्तुपीताभा पद्मौ दर्पणमेव च ।।
मातुलुङ्गफलं चैव दधाना परमेश्वरी ।। ८ ।। (१२४)

महालक्ष्मीर्नृसिंहस्यशक्तिरुक्ताभृगूद्वह ।।
दशमुद्राः स्थितास्तद्वत् तृतीयस्यां क्रमेण तु ।। ३३ ।।

हे भार्गव ! आठवीं शक्ति महालक्ष्मी नृसिंह की शक्ति कही गई है । दशमुद्राएं उसी प्रकार तीसरी रेखा में दश दिशाओं में स्थित होती हैं यथा- भूपुर (त्रैलोक्यमोहनचक्र) की तीसरी रेखा में-१ संक्षोभिणीमुद्रा पश्चिम । २ सर्वविद्राविणीमुद्रा उत्तर । ३ सर्वाकर्षिणी मुद्रा पूर्व । ४ सर्ववशङ्करीमुद्रा दक्षिण । ५ सर्वोन्मादिनीमुद्रा वायव्य। ६ सर्वमहाङ्कुशामुद्रा ईशान । ७-सर्वखेचरीमुद्रा -आग्नेय । ८-

सर्वबीजमुद्रा नैऋत्य। ९-सर्वयोनिमुद्रा निऋति पश्चिममध्य। १० सर्वत्रिखण्डामुद्रा ईशानपूर्व के मध्य में ॥३३॥

त्रिपुरायाः मुदं यस्मात् प्रयच्छन्ति ततस्तुताः ।।
षोडशच्छदसंस्थानाः कामाकर्षणिकामुखाः ।। ३४ ।।

त्रिपुरा भगवती को मुद (प्रसन्नता) जिनसे मिलता है इस कारण उन्हें, मुद्रा कहा जाता है ॥ "योगिनीहृदय में" "चक्रसंकेत में मुद्रा" व्याख्या शिवप्रोक्त- यथा - चिदात्मभित्तौ विश्वस्य प्रकाशामर्शने यदा । करोति स्वेच्छया पूर्णविचिकीर्षासमन्विता ॥५६॥ क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मोदनाद् द्रावणात्तथा ॥ मुद्राख्या,। श्रीचक्र के द्वितीयावरण- (सर्वाशापरिपूरकचक्र) में षोडशदल हैं, उनमें - कामाकर्षणिकादि षोडशशक्तियां संस्थित रहती हैं ॥ इसमें एक स्मरणीय व्यवस्था क्रम है - श्रीचक्र के स्वरूप-स्मरण में यह श्लोक स्मरण किया जाता है । यथा -:

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं-
मन्वस्त्रनागदलसंयुत षोडशारं ।।
वृत्तत्रयञ्च धरणी सदनत्रयञ्च -
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ।।

श्लोक के तृतीय चरण में "**वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च**" दो चकार हैं इसका अर्थ यह होगा षोडशार और वृत्तत्रय और धरणीसदनत्रय अर्थात् वृत्तत्रय भी एक आवरण है, पर चर्याखण्ड में भगवान् दत्तात्रेय ने परशुरामजी को भूपुर रेखात्रय के विवेचन के पश्चात् सीधे ही षोडशदल का वर्णन किया है, इस विषय में आचार्यगण यह समन्वय व्यक्त करते हैं, कि "दक्षिणामूर्तिसम्प्रदाय में वृत्तत्रय" का एक आवरण मानकर भी पूजन किया है । पर श्रीआनन्द भैरवसम्प्रदाय में भूपुरसहित ही वृत्तत्रय भी भूपुरआवरण का सम्मिलित आवरण है । इसका प्रमाण भगवानदत्त भी हैं;

जिन्होंने भूपुर के बाद ही "षोडशच्छन्दसंस्थाना" से द्वितीयावरण का उपदेश किया है । -

वे कामाकर्षणिका शक्तियाँ षोडश की संख्या में आवरण के १६ दलों में प्रत्येक एक दल में एक शक्ति का वामावर्त में पूजन किया जाता है प्रत्येक शक्ति के नाम में आकर्षिणी शब्द संयुक्त रहता है- उनके मूलनाम इसप्रकार हैं, कामाकर्षिणी आदि, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, धैर्य, स्मृति, नाम, बीज, आत्मा, अमृत शरीर ये षोडशशक्तियाँ द्वितीयावरण के षोडशदल में आकर्षिणी शब्द से संयुत हैं ।। ये भक्तों की स्थूल (भौतिक) सूक्ष्म, तथा कारणशरीर के आत्मा, अमृतशरीर (देहत्रय) का आकर्षण करती हैं । यह भी भगवती का वात्सल्यभाव द्योतक हैं ।। ३४ ।। १/२

"भक्तेषु कामाद्याकर्षशीला स्युर्देवतात्मिका ॥1/2॥ -
अष्टपत्रे स्थिताऽनङ्गकुसुमाद्या मनोहरा ॥35अर्धः ॥

श्रीचक्र के अष्टदल (सर्वसंक्षोभणचक्र) में अनङ्ग कुसुमादि शक्तियाँ मनोहररूपिणी संस्थित हैं - १ अनङ्गकुसुमा, २ अनङ्गमेखला, ३ अनङ्गमदना, ४ अनङ्गमदनातुरा, ५ अनङ्गरेखा, ६ अनङ्गवेगिनी, ७ अनङ्गाङ्कुशा, ८ अनङ्गमालिनी ।। ३५ ।। (अर्धश्लोक ।।)

कामप्रसादनपरास्तन्नाम्ना रामसंस्थिताः ॥
मनुकोणे स्थिताः सर्वसंक्षोभिण्यादि शक्तयः ॥36॥

हे परशुराम ! ये अष्टशक्तियाँ क्रमशः पूर्व,दक्षिण,पश्चिम,उत्तर एवं विदिशा में,आग्नेय,नैर्ऋत्य,वायव्य और ईशान में पूजित होती हैं । हे परशुराम ! ये अष्टदल में स्थित शक्तियाँ हैं, ये अपने-अपने नाम के अनुरूप साधक की कामनाएँ पूर्ण करती हैं। इसके अनन्तर चतुर्दश त्रिकोणों में सर्वसंक्षोभिणी आदि चौदह शक्तियाँ

संस्थित हैं - ये शक्तियाँ श्रीचक्र के चतुर्थावरण (सर्वसौभाग्यदायकचक्र) में वामावर्तक्रम से पूजित होती हैं, वे शक्तियाँ - यथा - १ सर्वसंक्षोभिणी, २ सर्वविद्राविणी, ३सर्वाकर्षिणी, ४ सर्वाह्लादिनी, ५ सर्वसंमोहिनी, ६ सर्वस्तम्भिनी, ७ सर्वजृम्भिणी, ८ सर्ववशंकरी, ९ सर्वरञ्जनी, १० सर्वोन्मादिनी, ११ सर्वार्थसाधिनी, १२ सर्वसम्पत्तिपूरणी, १३ सर्वमन्त्रमयी, १४सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी शक्ति ॥३६॥

भक्तेषु कामभेदानां प्रदाननिपुणास्तु ताः ॥
दशारे सिद्धिभेदादिप्रदा वै भजतांनृणाम् ॥ 37 ॥

ये चतुर्दश शक्तियाँ भक्तों की विभिन्न कामनाओं को अपने नामानुसार प्रदान करने में परमनिपुण हैं । (श्रीचक्र के दशत्रिकोण जिस पंचमावरण सर्वार्थसाधकचक्रावरण) में वामावर्त में पूजित होती सर्वसिद्धिप्रदादि देवियाँ वे दसदेवियाँ - यथा -

१ सर्वसिद्धिप्रदा, २ सर्वसम्पत्प्रदा, ३ सर्वप्रियङ्करी, ४ सर्वमङ्गलकारिणी, ५ सर्वकामप्रदा, ६ सर्वदुःखविमोचिनी, ७ सर्वमृत्यु प्रशमनी, ८ सर्वविघ्ननिवारिणी, ९ सर्वाङ्गसुन्दरी, १० सर्वसौभाग्य-दायिनी देवी - ये देवियाँ भजन में तल्लीन मनुष्यों को समस्त सिद्धियों के भेदों को प्रदान करने में निपुण हैं ॥ ३७ ॥ ये वर्णित शक्तियाँ बहिर्दशारचक्रनाभि में ध्यातव्य है ॥

एवमन्तर्दशारेऽपि सर्वज्ञाद्याः स्थिताः पराः ॥
वशिन्याद्या नागकोणेत्र्यरे कामेश्वरीमुखाः ॥ 38 ॥

इसी प्रकार इस अन्तर्दशारचक्र जिसे श्रीचक्र का सर्वरक्षाकरचक्र कहा जाता है इसका पूजन अनाहतचक्र (हृदय) में किया जाता है। उसमें वामावर्त क्रम से सर्वज्ञादि देवियाँ पराशक्तिरूपा संस्थित हैं- यथा -: १ सर्वज्ञादेवी, २ सर्वशक्तिमयीदेवी, ३ सर्वैश्वप्रदादेवी, ४ सर्वज्ञानमयीदेवी, ५ सर्वव्याधिविनाशिनी देवी, ६ सर्वाधारस्वरूपादेवी,

७ सर्वपापहरादेवी, ८ सर्वानन्दमयीदेवी, ९ सर्वरक्षास्वरूपिणीदेवी, १० सर्वेप्सितफलप्रदादेवी । सभी दस देवियाँ अनाहतचक्र द्वादशदल में हृदय में ध्यातव्य हैं । इस षष्ठावरण के पश्चात् अष्टकोण चक्र जिसे सर्वरोगहरचक्र सप्तमावरण चक्र कहा जाता है । जिसमें वशिनी आदि आठ शक्तियाँ वामावर्त क्रम से संस्थित हैं- यथा -

१ वशिनी, २ कामेश्वरी, ३ मोदिनी, ४ विमला, ५अरुणा, ६ जयिनी, ७ सर्वेश्वरी, ८ कौलिनी - ये आठ शक्तियाँ ही वाग्देवियाँ हैं । इन्होंने भगवती त्रिपुराललिताम्बा पराभट्टारिका के आदेश से शरणागत भक्तों,जिज्ञासुओं,मुमुक्षु, धीरपुरुषों के वेदान्तप्रतिपादितलक्ष्यार्थ तथा सर्वदर्शनप्रतिपादितसारतात्पर्यप्रतिपादक "सौभाग्यरहस्यसहस्रनाम" स्तोत्र का देवसभा में भगवती की आज्ञा से गायन किया । जिस रहस्य को भगवती ने ही अपने श्रीमुख से ही देवताओं को विदित किया । इसका (अष्टमावरण) विशुद्धचक्र षोडशदल में न्यास होता है । इसके अनन्तर त्रिकोण अष्टमावरण (सर्वसिद्धिप्रदचक्र) इस त्रिकोण के बाहरी भाग में पश्चिम,उत्तर,पूर्व,दक्षिण दिशाओं में सर्वप्रथम भगवती के आयुधों का ध्यान करना चाहिये । पद्धति के अनुरोधानुसार-यथा- बीजसहित कामेश्वरीकामेश्वरजम्भन पञ्चबाणशक्ति पश्चिम में। बीजसहित कामेश्वरीकामेश्वरसर्वसम्मोहनधनुःशक्ति उत्तर में। बीजसहित कामेश्वरीकामेश्वरसर्ववशीकरणपाशशक्ति । पूर्व में बीजसहित कामेश्वरीकामेश्वरसर्वस्तम्भनअङ्कुशशक्ति दक्षिण में । न्यस्त एवं ध्येय होते हैं । कामेश्वरी के पञ्चबाण-बीज सहित- द्रां, द्रीं, क्लीं, ब्लूं, सः । कामेश्वर के पञ्चबाण सबीज - यां, रां, लां, वां, सां । कामेश्वरी कामेश्वर सबीज- धनुः- थं,धं, पाशबीज-ह्रीं आं । एवं अंकुशबीज क्रों, क्रों) तत्पश्चात् कोणशक्तियों का न्यास एवं ध्यान किया जाता है "त्र्यरे कामेश्वरीमुखाः" यथा -:

कोणत्रयेतु सम्पूज्यास्तिस्रः कूटत्रयान्विताः।
कामेश्वरी च वज्रेशी तृतीया भगमालिनी ।।

१ कामेश्वरी त्रिकोणदेवी अग्रभाग में पश्चिम(कामेश्वरी का ध्यान-

कामेश्वरी शुक्लवर्णा शुक्लमाल्यनुलेपना।
मुक्ताफलस्फुरद्भूषानासाभरणभूषिता ।।

पुस्तकं चाक्षसूत्रं च वरदञ्चाभयंक्रमात् । दधती-चाग्रतः पूज्या ब्रह्मशक्तिः प्रकीर्तिता) २-वज्रेश्वरी त्रिकोणदेवी दक्षिणभाग में (ध्यान- वज्रेशी कुङ्कुमाभा भास्वद्रत्नविभूषिता । बालार्कवसना नीलवर्णा चुम्बितलोचना।। इक्षुकोदण्डपुष्पेषु वरदाभयशोभिता। वज्रेश्वरीदक्षभागे विष्णुशक्तिर्महेश्वरी। ३-भगमाला त्रिकोणदेवी उत्तरभाग में (ध्यान- उत्तरे भगमाला च सद्यस्सन्तप्तहेमभा । अनर्घरत्नखचितभूषणा भुवनेश्वरी।। पाशाङ्कुशज्ञानमुद्रा वरदानकराम्बुजा। रुद्रशक्तिमहेशानी तापत्रयनिकृन्तनी ।) ।।३८।।

बिन्दौ श्रीत्रिपुरादेवी संस्थिता सर्वरूपिणी ।।
एवंविधे यन्त्रराजे पूजयेत् त्रिपुराम्बिकाम् ।। 39 ।।

शब्दादि से अगोचर नादमय है ऐसे बिन्दु श्रीचक्र के ऊपरी भाग में त्रिकोणावृत बिन्दु सर्वानन्दमयचक्र जो नवमावरण बिन्दु में सर्वरूपिणी श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी श्रीमाता संस्थित हैं उनका इस प्रकार के श्रीयन्त्रराज में राजराजेश्वरीमाता का पूजन करे ।। पूर्णस्वरूप का वर्णन इस प्रकार है ।

सर्वानन्दमयेनादमये शब्दाद्यगोचरे,
परापररहस्याभ्यां योगिनीमतिपूर्विकाम् ।।
त्रिकूटयातु सम्पूज्य महात्रिपुरसुन्दरीम् ,
श्रीविद्यां पूजयेद्देवीं चिन्मयीं ब्रह्मरूपिणीम् ।।

परापरातिरहस्ययोगिनी । त्रिकूटया = त्रिकूटा-१ कादिकूट- क एईलह्रीं- २ हादिकूट - हसकहलह्रीं, ३ सादिकूट- सकलह्रीं

पञ्चदशामूलविद्या से पुष्पाञ्जलि अर्पित करें ।।

सहस्त्रनाम में (१) महात्रिपुरसुन्दरी २३४ - नादरूपा- २९९ । (२) चिन्मयी २५१ (३) ब्रह्मरूपा -२६५,(५) श्रीविद्या - ५८५, (६) श्रीषोडशाक्षरीविद्या-५८७(त्रिकूटा)(७) ब्रह्मात्मैक्य-स्वरूपिणी - ६७२,(८) वैन्दवासना- ९०५, (९) श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी-९९७ नादरूपिणी-९०१ शिवशक्त्यैक्यरूपिणी- ९९९, श्रीचक्र का अन्तिम आवरण विन्दुचक्र है, यह शब्दादि से अगोचर एवं नादमय है- इसमें भगवती का आसन "वैन्दवासनायै नमः"इसमें भगवती के जो-जो नाम दिये गये हैं वे सहस्त्रनाम स्तोत्र में आये हुये हैं सहस्त्रनामोक्त इन नामों की व्याख्या जो आचार्यों ने की है उनके उन नामों का किञ्चित् अर्थानुसन्धान करने का व्याख्या के आधार पर संक्षेप है- यथा -

१ महात्रिपुरसुन्दरी - महा = मातृ,मान और मेय इन तीन भावों का महाविशेषण है तथा पुर अर्थात् आन्तरस्थान = आशय, तथा सुन्दरी = आत्मरूपा महात्रिपुरसुन्दरी है जो किसी विषय का माता, प्रमाता, है,उसके प्रमाण का मान = प्रमाण (निःसंदिग्ध) और जो मेय है- उसे अर्थात् जो जिज्ञास्य है जिसके जानने की प्रवृत्ति है, उस मेय की,उसके प्रमाण की तथा उसे जानने वाला जिसे प्रमाण सहित जानता है माता, पुर की सुन्दरी अर्थात् जो जानने का प्रयास कर रहा है, उसकी आत्मा (चिद्रूपा) तथा जो मेय है उसकी सदसत्रूप की स्थिति अतः सद्रूपा = आत्मा, (सद्रूपा) तथा मान-प्रमाण की आत्मा - वह महात्रिपुरसुन्दरी।

त्रिपुरशब्द की व्याख्या में -

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा
स्त्रैलोक्यं त्रिपुरी त्रिपुष्करमथत्रिब्रह्मवर्णास्त्रयः ।।

यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकम्
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ।। लघुस्तवः

त्रिपुर के एक और व्याख्या आचार्यों ने की है, "**मूर्तित्रयस्यापि पुरातनत्वात्तदम्बिकाया-स्त्रिपुरेतिसंज्ञा**" एक और व्याख्या है -

मनोबुद्धिस्तथाचित्तं पुरत्रयमुदाहृतम् ।।
तत्रतत्रवसत्येषातस्मात्तु त्रिपुरा मता ।। - इति -

श्रीविद्या = समस्त देवी सम्बन्धी उपासनाएँ श्रीविद्या मानी जाती हैं, परन्तु श्रीविद्या श्री मत्पञ्चदशाक्षरी श्रीत्रिपुरा की ही प्रसिद्ध है, सर्वमान्य हैं, समस्त शक्तियाँ इन्हीं में अंतर्लीन हैं ।।

ब्रह्मरूपा = जो ब्रह्म "का ही पर्याय है-' ब्रह्मविष्णुशिवाब्रह्मन्! प्रधानाब्रह्मशक्तयः" (विष्णुपुराण) अर्थात् इन तीनों सृष्टि,स्थिति, संहति कृत्यों के कारण पुरुषों की भी कारणरूपा ब्रह्मरूपा हैं पराशक्ति हैं ।

चिन्मयी = चैतन्यरूपीबोधचित् -चित् ही स्वरूप जिनका है, वह सच्चिदानन्दमयी हैं । चिदानन्दाकारम् सौ.ल.के ३५वें श्लोक में आद्यशङ्कराचार्य जी ने कहा है - चिदानन्दाकारं = चिच्छक्तेः, आनन्दभैरवस्य च आकारं विभृषे, यद्वा - चिदानन्दाकारं च ब्रह्मस्वरूपं शिवतत्त्वं विभृषे ।। (इति लक्ष्मीधरः)

नादरूपा = सर्वानन्दमय नवमावरण नादमयबिन्दु है जो शब्दाद्यगोचर है, वह नाद है । "ह्रीं" बीज में - द्वादशनादरूप हैं- ह, र, ई = उनमें- बिन्दु, अर्धचन्द्र, नाद, नादान्त, शक्ति, रोधिनी, व्यापिका, समना, उन्मना । "नाद तृतीय स्थिति का नाम है- और ये सूक्ष्म,सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होते जाते हैं अतः ह्रीं का बिन्दु तीसरी परिणति में नाद- होता है ।

वैन्दवासना = बिन्दु से सम्बन्धित बैन्दव, वही आसन है जिसका वह वैन्दवासना है । आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्त्रारपद्म के

मध्यबिन्दु में आसीन वही श्रीचक्र के केन्द्र त्रिकोण के मध्य में सर्वानन्दमयचक्र- (नवमावरण) ज्ञानार्णव की उक्ति है -:

बिन्दुव्यूहं प्रवक्ष्यामि बीजरूपं वरानने !
हकारं बिन्दुरूपेण ब्रह्माणं विद्धि पार्वति !
सकारं बिन्दुसर्गाभ्यां हरिश्चाहं सुरेश्वरि !
अविनाभावसम्बन्धो लोकेहरिहराविति !!

बिन्दुव्यूह अर्थात् मन्त्रबीजअक्षर उसमें शक्तिरूपा विराजती हैं ।

अथवाध्यानसदृशीं मूर्तिं कृत्वा तु पूजयेत् ॥
यन्त्राभावे तु सर्वत्र यन्त्रं ध्यात्वा तु पूजयेत् ॥40॥

यदि यन्त्रपूजा के लिये न हो तो दीक्षा के समय श्रीगुरुमुख से इष्ट मन्त्र के उपदेश के साथ-साथ मन्त्र के देवता के स्वरूप का वर्णन होता है, उसके अनुसार मूर्ति बनाकर पूजा करें । यह समाधान यन्त्र के न रहने पर है, किन्तु यन्त्र का (आवरणों सहित) ध्यान करके पूजन करें ॥ ४० ॥

मूर्तिःध्येया बिन्दुमध्ये परितो यन्त्रराजकम् ॥
कुण्डलिन्यां वाऽपि पूज्या शालिग्रामेऽपि वा भवेत् ॥41॥

बिन्दु के मध्य में मूर्ति का ध्यान करें और बिन्दु के सभी ओर यन्त्रराज का ध्यान करें । पिछले श्रीदत्तोक्त क्रमानुसार अथवा कुण्डलिनी में भी पूजा करें (कुण्डलिनी आत्मशक्ति ही भगवती हैं), यदि यह न कर सके तो शालिग्रामशिला में भी पूजा हो सकती है ॥ ४१ ॥

एवं विधं तु यन्त्राद्यं पीठे संस्थाप्य पूजयेत् ॥
स्वर्णादिधातुजं पीठं मनोहरतरं शुभम् ॥ 42 ॥

इस प्रकार के यन्त्रराज को (श्री यन्त्र सभी यन्त्रों का राजा है, एवं यही यन्त्रराज- आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक

स्तरों में स्थित है) उसे पीठ में स्थापित करके पूजन करें । पीठ स्वर्ण या रजत आदि धातु से निर्मित पीठ (सिंहासन) अतिमनोहर और शुभकारी होता है ॥ ४२ ॥

आयसं सीसजातीयं मृण्मयं परिवर्जयेत् ॥
पाषाणं मणिजातीयं शङ्खादिसदृशां शुभम् ॥ 43 ॥

लौह (आजकल प्रचलित परिष्कृत लोहा स्टील), सीसाधातु से निर्मित (अलमोनियम्) आदि तथा मिट्टी (घड़े जैसे अग्निपक्वआसन) ग्राह्य नहीं हैं । पाषाण - (संगमर्मर) मणिजातीय (स्फटिक उपरत्न) शङ्खादि जैसा शुभ होता है ॥ ४३ ॥

श्वेतादिवर्णं जानीहि नान्यच्छ्रीपीठिकाविधौ ॥
एवं विधं पीठगतं यन्त्रं स्वपुरतो न्यसेत् ॥ 44 ॥

अन्य उपासनाओं तथा अन्य यन्त्रों के पीठ के क्रम में श्वेत आदि या रक्तवर्ण श्रीपीठ की विधि में ग्राह्य जानो अन्य नहीं । इस प्रकार के पीठ में स्थापित यन्त्र को स्वयं सामने रखे (हृदय की सीध में) तिरछाकोण स्वयं न बने यह ध्यान रखते हुए यन्त्र को स्थापित करें ॥४४॥

पीठे मण्डूकादिपीठदेवताः पूजयेत् क्रमात् ॥
तत्र देवीं समावाह्य साधिताघ्र्यैः प्रपूजयेत् ॥ 45 ॥

निश्चित पीठ में मण्डूक आदि जो पीठ की देवता हैं,उनका क्रम से पूजन करे, फिर उस प्रतिष्ठितपीठ में स्थापित यन्त्रादि में विहित औषधियों एवं पवित्रजल या दुग्धादि,जो मन्त्रों द्वारा परिशोधित हों उनसे महापूजा (नवावरणतर्पणात्मिका) करे । (पूजाक्रम अगले १४वें अध्याय में विस्तरशः श्री दत्तगुरु परशुराम जी के सामने वर्णन करेंगे-॥ ४५॥

श्रीयंत्र परिमाण- ९६ अङ्गुल (६फुट) = १ हाथ, १-१/२

फुट- ३-१/२ हाथ परिमाण मनुष्य का ३ हाथ- ६ फुट १-
१फुट ९इंच विविध बिम्बों में पूजन श्रीयन्त्र में सर्वश्रेष्ठ-

श्रीत्रिपुरारहस्ये तार्तीयके चर्याखण्डे श्रीयन्त्र नवावरण विवेचन पीठादि
निर्णयादिविवेचकोऽध्यायस्त्रयोदशतमः सम्पूर्णः ।।
ॐ समाज शिवसम्प्राप्त्यायाराधितशिवेश्वरम् ।

ध्यायेश्रीस्वरूपानन्दं शङ्करार्यञ्जगद्गुरुम् ।।

श्रीमज्जगद्गुरवे नमः।।

श्रीत्रिपुरारहस्ये तार्तीयके चर्याखण्डे

चतुर्दशोऽध्यायः

अथार्घ्यसाधनविधिं वक्ष्ये भार्गव संशृणु ।।

आदौ पूजागृहद्वारे पूजयित्वाऽऽगमोक्तवत् ।। 1।।

हे भार्गव! पिछले वर्णन में हमने तुम्हें श्रीयन्त्र के विषय में बताया था । अब श्रीयन्त्र के अर्घ्यसाधनविधि (सामान्यार्घ्य एवं विशेषार्घ्य न्यासविधि) कहेंगे । विशिष्ट आन्तरिक भावों का स्थूल क्रियाओं में समन्वय करने की अनुपम विधि श्रीविद्या के मर्मज्ञों ने व्यक्त किया है । रहस्यपूर्ण यह श्रीविद्योपासना तथा उसका रहस्यपूर्ण यह अर्घ्यविधान श्रीपरशुराम जी से भगवान् दत्तात्रेय जी यह (अर्घ्यसाधनविधि) विधानसहित साङ्गोपाङ्गपूजनगृह से आगमोक्तविधानयुक्त बता रहे हैं । उन्होंने कहा भार्गव ! सर्वप्रथम विधिवत् स्नान, नित्यकर्मसंध्यावन्दनादि सम्पन्न करके साधक पूजा गृहद्वार में द्वारदेवता का पूजन कर दांया स्कंध उठाकर दक्षिण पैर से प्रथम कदम रखते हुये प्रवेश करे ।।१।।

पूजागृहान्तराविश्य भूमिं संशोध्य न्यस्य च ।।

संकल्पार्घ्यविधिं कुर्यादागमोक्तेन-वर्त्मना ।। 2 ।।

साधक नित्यकर्म संध्यादि सम्पन्न करके पूजागृह के भीतर प्रवेश करके भूमि का (पूजास्थल) संशोधन एवं न्यास करके, सङ्कल्प और न्यास के बाद आगमोक्तविधान मार्ग से सङ्कल्प,अर्घ्यविधि (प्रथम सङ्कल्प देवीमानगणनानुसार,फिर अर्घ्य,वर्द्धनीकलश-स्थापनान्तर, सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्य स्थापना) सम्पन्न करे ।।२।।

संशोध्य गन्धपुष्पाद्यैरभ्यर्च्य सुविधानतः ॥

तोयेन मण्डलं कृत्वा तत्र पात्राणि संन्यसेत् ॥ 3 ॥

आगम शास्त्रों में पूजाङ्गविधियाँ जो निर्दिष्ट हैं; उनके अनुसार भूमिपूजन,(संशोधनपूर्वक) गन्ध,पुष्प,धूप,दीप,उपचारों से समन्त्र अभ्यर्चन करे । फिर अभिमन्त्रित पवित्रजल से सामग्री एवं स्वयं. का अभिसिंचन कर जल से मण्डल निर्माण 'मत्स्यमुद्रा' से करके मण्डल में पात्रों की (वर्धनीकलश, सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्य पात्रों की) स्थापना करे ॥३॥

विवरण विस्तरशः आगे -

देवतापीठपुरतः उदग्दक्षिणभागयोः ॥

कुम्भं चापि विशेषार्घ्यं स्वर्णरौप्यशिलाभवम् ॥4॥

देवता (यन्त्र या मूर्ति) पीठ के सामने उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं में कुम्भ (वर्धनीकलश) उत्तर में, तथा विशेषार्घ्यपात्रमण्डल दक्षिण दिशा में - कुम्भ तथा विशोषार्घ्यपात्र स्वर्ण या चाँदी या शिलानिर्मित पात्र रखें ॥ ४ ॥

हस्तिदन्तखड्गशृङ्गभवं वा पात्रमुत्तमम् ॥

नारिकेलाऽलाबुजं वा काचमृण्मयमेव वा ॥ 5 ॥

पात्र जो रखें वे हाथीदाँत के, या गैंडा के सींग का बना हो या नारियल (नरेटी) या तुम्बी का बना हो, (ये उत्तम हैं सर्वसुलभ हैं) अथवा काँच का या मिट्टी का (घड़ा) भी ले सकते हैं ॥५॥ (श्रीदत्तोक्त इस विधि को वामकेश्वर तंत्र मे नि. षो. ७१/१)-यथा -

स्वर्णरौप्य शिलाकूर्मकपालाबुमृण्मयम् ।

नारिकेल शङ्खमुक्ताशुक्तिकाचसमुद्भवम् ।।

''**पुण्यवृक्षकृतं** रम्यं पात्रं कुर्याद् विचक्षणः'' ''**पुण्यवृक्षपदेन** =

अश्वत्थपलाशादिकतिपयवृक्षेतरेषां स्नुही विभीतकानामपि ग्रहणं स्यात्''- (प.रा.क.सूत्र.द्वि.परि.पृ. ४२४)

कुम्भान्यूनं विशेषार्घ्यं साधारंशोधयेत् क्रमात् ।।
वृत्तं च चतुरस्त्रं च त्रिकोणं वापि मण्डलम् ।। ६ ।।

कुम्भ (वर्धनीकलश) अन्यून,अतिलघु या अतिदीर्घ (बड़ा) न हो तथा विशेषार्घ्य आधारसहित ही स्थापन करके शोधन करे । मण्डल अनिवार्य है - वह (मण्डल) वृत्त (गोल),चतुरस्र (चौकोर), तथा त्रिकोण बनाये । विशेषनोट में - पात्र धातु के विषय में वामकेश्वरतन्त्रान्तर्गत नि. षो. (७१ पत्रे १ विश्रामेऽपि) स्वर्णरौप्य शिलाकूर्मकपालालाबुमृण्मयम्। नारिकेलं शङ्खमुक्ताशुक्तिकाचसमुद्भवम् पुण्यवृक्षकृतं रम्यं पात्रं कुर्याद्विचक्षणः ।। पात्र का फल कामनापरक सुवर्णरौप्यपात्राणि सर्वसिद्धिकराणि च । शान्तिके शिलापात्रं स्तम्भने चैव मृण्मयम् **नारिकेलं तुवश्यादौ अभिचारे तु कूर्मजम्। शाङ्खं ज्ञानप्रदं शुक्तिदेवीप्रीति विधायिनी ।।** नारिकेलं तुवश्यादौ अभिचारे तु कूर्मजम् । शाङ्खं ज्ञानप्रदं मुक्ताशुक्ति देवीप्रीतिप्रदायिनी। पात्र का आकार परिमाण ''वस्वङ्गुलविहीनं तु न पात्रं कारयेद्बुधः। ४ अंगुल से ८ अंगुल तक कम या अधिक न हो अतिसूक्ष्ममतिस्थूलं भिन्नं-भिन्नं विवर्जयेत् ।। ''ताम्रकांस्यादिभिर्लोहैःपात्रं तु न कारयेत् आधार के विषय में त्रिपद,या चतुष्पद या षट्पद - इनके वर्तुल (गोल) आकार के विषय में विकल्प है । (कुलार्णव) ५ उल्लास ४३ पत्रे .....आधारं त्रिपदं प्राहुः षट्पदं वा चतुष्पदम् । अथवा वर्तुलाकारं कुर्यादेवि मनोरमम् ।। - ।। ६ ।।

तयोर्मध्ये तु सामान्यमर्घ्यं शङ्खं निधापयेत् ।।
तत्सामान्यतोयपूर्णं साधयेत् तन्त्रवर्त्मना ।। 7 ।।

कुम्भ (वर्द्धनीकलश) और विशेषार्घ्य के बीच पीठ के (स्वयं से) वामकुम्भ के दक्ष में मण्डल में आधार के ऊपर सामान्यार्घ्य शङ्ख की स्थापना करे । उसमें सामान्यजल (कुम्भगत प्रतिष्ठित कलश मन्त्रों से) जो "आप् सूक्त वैदिकसूक्त से तथा मूलविद्या से आठ बार अभिमन्त्रित जल है (यह तन्त्रमार्ग है इससे सिद्धजल) पूर्ण कर शङ्ख में रखें ॥ ७ ॥

कुम्भं चापि विशेषार्घ्यमष्टगन्धसुवासितैः ॥
विशेषतोयैः संशुद्धैः पूरयेदमृतात्मकैः ॥ 8 ॥

कुम्भ को भी विशेषार्घ्य - **चन्दनागरुकर्पूरकाश्मीरैरोचनान्वितैः। ससिंहलकं जटामांसी सटीभिः शक्तिसम्भवम् ।। गन्धाष्टकं शुभंवश्यं शक्तिमन्त्रेणयोजयेत्** "अष्टगन्ध" से सुगन्धित एवं शक्तिगर्भ करे, विशेष-संशुद्ध अमृतात्मक विशेषजल से पूरित करे ॥ (पिछले श्लोक में विधि वर्णित हुई है ॥८॥

मुख्याभावे चानुकल्पैरेव पूजां समाचरेत् ॥
असम्भवे ऽप्यशक्तौ वा ग्राह्यं तदनुकल्पकम् ॥9॥

मुख्य (प्रतिपादित विधान और निर्दिष्ट उपचार तथा वस्तु) के कल्प अभाव में जो विकल्परूप अनुकल्प हैं,उनसे ही पूजा करे। अनुकल्प तभी लिया जा सकता है, जब असम्भव हो अथवा अशक्ति असमर्थता हो (वस्तु का मिलना सम्भव न हो, पूजा की सम्पूर्ण विधिसम्पन्न न कर सकने का समयाभाव या अन्य कोई अवरोध जिससे पूजा सम्पन्न ही न हो सके) ऐसी स्थिति में यह व्यवस्था दी गई है ॥ ९ ॥

शापमोचनसंस्कारान् मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः ॥
कुर्यादेवानुकल्पेऽपि चेच्छापमवाप्नुयात् ॥ 10 ॥

शापमोचन संस्कारों को वैदिक और तान्त्रिकमन्त्रों से करे । परन्तु यदि मुख्यालाभ हो तो अनुकल्प में भी शापमोचन करना ही चाहिये । यदि यह विधि नहीं की गई तो देवता का शाप ही मिलत है ॥१०॥

अर्घ्यस्योत्तरदिग्भागे योगिनीलोहितांशुका ॥

अनर्घ्यरत्नाभरणा पद्मरागसमप्रभा ॥ 11 ॥

अर्घ्य के उत्तर दिग्भाग में लाल साड़ीधारण की हुई, बहुमूल्यरत्नाभरणों को धारण की हुई जिसकी आभा पद्मरागमणि जैसे लोहितवर्ण की है, ऐसी रहे ॥११॥

यहाँ सुवासिनी द्वारा लाया गया विशेषकलशहस्तायोगिनी कहा है । आगे वर्णन है ।

एवं विशेषकलशहस्तां सम्यक् सुवासिनीम् ॥

सम्पूज्य ध्यात्वातद्धस्तादादायकलशं ततः ॥12॥

इस प्रकार विशेषकलश हाथ में लेकर सुलक्षणा दीक्षित सुवासिनी का पाद्य अर्घ्यादि द्वारा पूजनकर भगवती का ध्यानकर फिर उसके हाथ से कलश (जलपूर्ण) लेकर-॥१२॥

संस्कृत्य पूरयेदर्घ्ये तेन सम्पूजयेत्पराम् ॥

अभिमन्त्रणमेवात्र शोधनं समुदाहृतम् ॥ 13 ॥

अर्घ्यपात्र में वह कलशागत अमृत भरे और उससे पराम्बा का पूजन करे । अर्घ्य-पात्र जल सहित उसका मन्त्रों से अभिमन्त्रण ही शोधन कहा गया है ॥१३॥

जपस्तवालम्भमन्त्राणामभिमन्त्रणमुच्यते ॥

अर्घ्याधारेष्वग्निकलाः पूजयेत्प्राग्दिगादितः ॥14॥

आलम्भमन्त्रों का जप ही अभिमन्त्रण कहा जाता है ॥ अभिमन्त्रणीय

वस्तु का स्पर्श करना = आलम्भ कहा जाता है (आ+लभ+घञ् मुम् च) आसमन्तात् -लभते येन स आलम्भः(लभ् प्राप्तौ-लाभे वा) अर्घ्यपात्र का जो आधारपात्र है (स्टेण्ड -त्रिपाद, या चतुष्पाद या षट्पाद) उसमें अग्निकला (दस संख्या - १ धूम्रार्चि, २ ऊष्मा, ३ज्वलिनी,४ ज्वालिनी, ५ विस्फुलिङ्गिनी,६-सुश्री,७- सुरूपा, ८ कपिला,९ हव्यवाहिनी,१० कव्यवाहिनीकला पूर्वादिक् क्रम से अर्घ्य के आधार में पूजित होती हैं । दिशा,विदिशा,ऊर्ध्वा और अधःक्रम से। इन कलाओं का सामान्यार्घ्याधारपात्र में एवं विशेषार्घ्याधारपात्र में अक्षतों से पूजन होता है ॥ १४ ॥

शापोद्धार के विषय में श्री दत्तगुरुवर्य ने जो यह कहा, कि-

शापमोचनसंस्कारान् मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः ।।

कुर्यादेवानुकल्पेऽपि न चेच्छापमवाप्नुयात् ।।१४/१०।।

इस उक्ति से "शापमोचन" विधि का महत्त्व अभिव्यक्त होता है। वह "शापमोचन" विधि किस प्रकार बताई गई है और कितने विस्तार से है ; इसका विस्तृत विवरण तथा, उन वैदिक,तान्त्रिकमन्त्रों का अर्थसहित उल्लेख "श्रीपरमानन्दतन्त्र" में यह ग्रन्थ - सम्पूर्णानन्द सं.विश्वविद्यालय, के मुद्रणालय में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है- वि.सं. २०४२, तदनुसार सन् १९८५ में हुआ है। इस ग्रन्थ के"अष्टमउल्लास" में - भगवती से भगवान् भैरव ने संवाद में- भगवती के प्रश्न करने पर यथा-

श्रीदेवी उवाच -

महेशार्घ्यविधिं ब्रूहि साङ्गोपाङ्गं च पूजनम् ।।

आवृतीनां च बीजानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।।८/१।।

उत्तर में श्रीभैरव ने कहा-

पात्राण्यासादयेद्देवि दक्षिणाद्युत्तरान्तकम् ।।
सामान्य कलशं तद्विशेषार्घ्यं च शङ्खकम् ।।८/७।।

द्रव्यपरिमाण का वर्णन करते हुए आगे कहा-

दिक्पलादधिकं नैव हेतुकुम्भं तदर्धकम् ।।
तदर्धं च विशेषार्घ्यं तदर्धं शङ्खमेव च ।। ८/१६।।

आगे के वर्णन में -:

तत्र संस्पृश्य कुर्याद्वै शापमोचनमादितः ।।
एकमेव परंब्रह्म-स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।।१६/४५।।

यहाँ से लेकर ५८वें "श्लोक" -

षष्ट्यक्षरो महामन्त्रः शुक्रशापविमोचकः ।।
इति प्रजाप्य तद्द्रव्यलेशे न तलयुग्मकम् ।।८/५८।।

इसे देखकर जिज्ञासु की उत्सुकता होने पर देखा जा सकता है!-

समयमत प्रतिपादक श्री विद्योपासनापरम्परा में श्री मदाद्यशङ्कराचार्य जी की मठ स्थापना में जो क्रम चला आ रहा है, उसमें वर्तमान में प्रचलित "सपर्या-पद्धति में विशेषार्घ्यपात्र में "अनुकल्प में पात्राभिमन्त्रण में उन्हीं वैदिक और तान्त्रिक मन्त्रों का पाठ होता है। इस प्रकार इस विशिष्ट विधान का, गुरुपरम्परा का समन्वय हो जाता है ; जो निर्दोषत्व का प्रामाणिक प्रकार है । -

पात्रे तद्वत्सूर्यकलास्तोये सोमकला अपि ॥
कुम्भे पञ्चब्रह्मकलाअपि पूज्या क्रमेण तु ॥ 15 ॥

अर्घ्य पात्रों के आधार में (स्टेण्ड) अग्नि की दश कलाओं का अभिमन्त्रणादिक् क्रम से किया, तदनन्तर पात्र में (सामान्यार्घ्य पात्र (शङ्ख) में, तथा विशेषार्घ्यपात्र में सूर्यकलाओं १२ का अभिमन्त्रण करें, बाद में सामान्यार्घ्यपात्र शङ्खगततोय (जल) सोमकलाओं १६

का अभिमन्त्रण तथा विशेषार्ध्यपात्रगत द्रव्य (गोदुग्ध, या फलरस या बादामगरी घिसी हुई) सोमकला १६ का अभिमन्त्रण करे । - सूर्यकला १२ पात्र में (दोनों अर्ध्यो के) यथा-

१ तपिनीकला, २ तापिनीकला, ३ धूम्रा, ४ मरीचीकला, ५ ज्वालिनी, ६ रुचि ७ सुषुम्ना, ८ भोगदा, ९ विश्वा, १० बोधिनी, ११ धारिणी, १२ क्षमाकला बाद में सामान्यार्घ्यगतजल में एवं विशेषार्ध्यगत द्रव्य में सोमकला १६का अभिमन्त्रण -: यथा -:

१ अमृतकला, ३ मानदा, ३ पूषा,, ४ तुष्टि, ५ पुष्टि, ६ रति, ७ धृति, ८ शशिनी, ९ चन्द्रिका, १० कान्ति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति, १४ अङ्गदा, १५ पूर्णा, १६ पूर्णामृताकला ।। सोमकला आदि के अभिमन्त्रणानन्तर - विशेषार्घ्यगत द्रव्य का "ॐ ऐं ह्रीं श्रीं जुं सः स्वाहा" मंत्र से ८ बार अभिमन्त्रण करें । विशेषार्घ्यपात्र (कुम्भ) में (सांकेतिक निर्देश है, सुस्पष्टज्ञान के लिये श्रीगुरुमुख से दीक्षानन्तर अधिकृत हों) -

१५वें श्लोक का उत्तरार्ध-

"कुम्भे पञ्चब्रह्मकला अपि पूज्याः क्रमेणतु ॥15॥

कुम्भ में (द्रव्य में) पञ्चब्रह्मकला- १-ब्रह्मा, २-विष्णु, ३-रुद्र, ४-ईश्वर, ५-सदाशिवकला इनके अभिमन्त्रण के क्रम से इनका अक्षतार्पण द्वारा पूजन करे पद्धति में लिखित मन्त्रों से ।। १५।।

ततस्तुपीठपूजान्ते त्वात्मार्घ्यं स्वात्मनः पुरः ॥
संसाध्य तेन स्वगुरून् मूर्ध्नीष्ट्वा जुहुयाद्धविम्॥16॥

अर्ध्यपात्रों (दोनों) के आधार, पात्र और तोयादि का अग्नि, सूर्य, सोम-कलाओं के अभिमन्त्रण कुम्भ में पञ्चब्रह्म कलाओं के अभिमन्त्रण के पश्चात् पद्धति-निर्दिष्ट शुद्धिपात्र, गुरुपात्र, एवं आत्मपात्र की स्थापना करके गुरुपात्र-द्रव्य से अपने गुरुत्रय का (श्रीगुरु, श्रीपरमगुरु, श्रीपरमेष्ठीगुरु)

मूर्धा में पूजन करे, श्रीगुरुपूजन के बाद, आत्मपात्र से कुण्डलिनीगत चिदग्निकुण्ड में होम करे ॥१६॥

(इन पिछले श्लोकों (३ से लेकर १६वें श्लोक) में श्री दत्तगुरुवर्य द्वारा सांकेतिक-पद्धति से वर्णित "पात्रासादन" विधि को श्रीगुरुवर्य से दीक्षित होकर अधिकृत होकर पूजन (श्रीयन्त्र) करें ॥ इसके सहित सम्पूर्ण सपर्यापद्धति से परिचित होने के लिये प्रकार समझने के लिये पूज्य श्रीगुरुवर्य उत्तरराम्नाय एवं पश्चिमाम्नाय पीठाधीश्वर अनन्तश्री विभूषित ज. गु. शं. श्री स्वामि श्रीस्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के द्वारा संस्कारित उनकी आज्ञा से सपर्याक्रम को परमहंसीगङ्गा आश्रमस्थ पूज्य स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती जी ने पश्चिमाम्नाय श्रीशारदापीठ विद्यासभा संचालित श्री द्वारकाधीश सं. अकादमी द्वारका से सुन्दर-ढंग से मुद्रित करवाकर परमहंसी गङ्गा आश्रम, एवं द्वारकामठ,द्वारका गुजरात में उपलब्ध करा दिया है ।

ततस्तूल्लसितस्वान्तो विन्यस्य न्यासजालतः ॥
देवतां स्वान्तराराध्य संयोज्य परमेशिवे ॥ 17 ॥

श्रीगुरुत्रय का अपनी मूर्धा में गुरुपात्रगत संशोधित अमृत से पूजन एवं यजन करके, तदनन्तर उल्लसितान्तःकरण होकर न्यासों से विन्यास करके देवता की हृदय (अनाहतचक्र) में अन्तर्याग द्वारा आराधना करे, आत्मशक्ति को ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रदल पंकज की कर्णिका में संस्थित परमशिव से मिलाकर ध्यानस्थ हो जावे ॥१७॥

तत्प्रकाशात्मकं तेज आवाह्य यन्त्रराजके ॥
अभ्युक्ष्य शङ्खतोयेन प्राणस्थापनमाचरेत् ॥ 18 ॥

देवता को परमशिव में संयोजित करके शिवशक्तिमय उसका यन्त्रराज में आवाहन करे । सामान्यार्घ्य के जल से अभ्युक्षण करके यन्त्रराज में प्राणस्थापन विधि करें ॥ १८ ॥

प्राणस्थापनहीनं तु निष्प्राणं पूजनं भवेत् ॥
स्थावरे यन्त्रमूर्त्यादौ न प्राणस्थापनं भवेत् ॥ 19 ॥

जिस पूजन में प्राणप्रतिष्ठा नहीं की जाती तो वह पूजन प्राणरहित होता है । परन्तु स्थिरयन्त्र और मूर्ति आदि में प्राण प्रतिष्ठा बार-बार नहीं की जाती है, चल मूर्ति या यन्त्र में प्रत्येक बार पूजाङ्ग में **''लघुप्राणप्रतिष्ठा''** आवश्यक होती है ॥१९॥

नावाहनं न चोद्वासस्तत्र सन्निहिता सदा ॥
देवता तत्र तस्मात्तु न तत्राऽवाहनादिकम् ॥ 20 ॥

स्थिर यन्त्र-मूर्ति आदि में न उद्वासन (विसर्जन) और न ही आवाहन किया जाता है, वहाँ देवता सदैव सन्निहित रहती हैं । इसलिये वहाँ यन्त्र एवं मूर्ति में आवाहन और उद्वासन नहीं किये जाते ॥ स्थिरप्रतिष्ठा भिन्न है और चलप्रतिष्ठा भिन्न ॥ २० ॥

चरं चापि प्रतिष्ठाप्य यन्त्राद्यं स्थिरमेव च ॥
चरेत्त्वावाहनं तद्वत् प्राणस्थानमेव च ॥ 21 ॥

चरप्रतिष्ठा के लिये यन्त्रादि में तथा स्थिर यन्त्रादि में प्रतिष्ठा विधि में आवाहन तथा प्राणप्रतिष्ठापन करें ॥ अर्थात् चरयन्त्र और मूर्ति भी प्रतिष्ठित किये जाते हैं, स्थिर यन्त्रादि भी तथा उनमें आवाहन वैसे ही प्रतिष्ठापन ही होगा ॥ २१ ॥

प्रत्यहं स्याद् विसर्गश्च स्थिरे नास्ति विसर्जनम् ॥
सकृदावाहनं तद्वत् प्राणस्थानमेव च ॥ 22 ॥

प्रतिदिन चलयन्त्र एवं मूर्तिआदि में प्रतिष्ठा (लघु) तथा विसर्जन (उद्वासन) होगा, किन्तु स्थिरयन्त्र एवं मूर्त्यादि में विसर्जन नहीं होगा । स्थिरयन्त्र और मूर्त्यादि में एक बार ही आवाहन और वैसे ही प्राणप्रतिष्ठा होती है ॥ २२ ॥

स्थिरयन्त्रप्रतिष्ठायाः फलमक्षयमुच्यते ॥

यावदिच्छेत् तावदयं श्रीपुरे निवसेद् ध्रुवम् ॥ 23 ॥

स्थिरयन्त्र की प्रतिष्ठा की जाती है, तो वह प्रतिष्ठा अक्षय-फल देने वाली होती है । उसका परिणाम यह होता हैं,कि स्थिर यन्त्र, मूर्ति आदि की स्थिर-प्रतिष्ठा करने वाला इच्छानुसार श्रीपुर में निश्चितरूप से निवास करता है । उसके निवास की सीमा नहीं होती है ॥ २३ ॥

पर्यन्तं बिन्दुचक्रस्य गतिरव्याहता भवेत् ॥

पूज्यो निधिमुखानां चाप्येष सर्वत्र जायते ॥ 24 ॥

स्थिर यन्त्रादि में स्थिर-प्रतिष्ठा करने वाले सौभाग्यशाली निश्चितरूप से इच्छानुसार श्रीपुर में रहते हुए; उसकी गति सर्वानन्दमयनादरूप बिन्दुचक्रपर्यन्त जो बिन्दु भगवती का आसन है वहाँ तक उसकी अव्याहत अर्थात् बाधारहित होती है । यह साधक सभी स्थानों में समस्त निधि प्रमुखों का पूज्य हो जाता है ॥ २४ ॥

अन्ते श्री त्रिपुरादेव्याः स्वरूपे प्रविशेद् ध्रुवम् ॥

तत्रापि शिवलिङ्गस्थं यन्त्रं संस्थापयेत्तु यः ॥ 25 ॥

बिन्दुचक्र में पहुँच जाने के पश्चात् बैन्दवासन में विराजमान पञ्चप्रेतासन (पञ्चब्रह्मासन) में भगवती त्रिपुरादेवी के स्वरूप में निश्चितरूप से मिल जाता है । केवल श्रीयन्त्र की स्थिरप्रतिष्ठा के फलस्वरूप उसमें भी जो शिवलिङ्ग में स्थित श्रीयन्त्र की स्थापना करे तो ! ॥ २५ ॥

स साक्षात्त्रिपुराकारो जीवन्नेव न संशयः ॥

तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते जमदग्निज !! ॥ 26 ॥

हे जामदग्नेय,परशुराम ! वह साधक शिवलिङ्ग में श्रीयन्त्र स्थित

करके स्थापना करता है, तो वह जीवित रहते हुए ही साक्षात् श्रीत्रिपुरा का आकार हो जाता है, इसमें किञ्चित् भी संशय नहीं है । उसका दर्शन करके सभी प्राणिगण समस्तपापों से मुक्त हो जाते हैं ॥ २६ ॥

तस्य पूजनमात्रेण त्रिपुरा पूजिता भवेत् ॥
यतस्त्रिमूर्तिरूपं तल्लिङ्गं स्यात्सर्वतोऽधिकम् ॥27॥

श्रीयन्त्रयुक्त शिवलिङ्ग के पूजनमात्र से भगवती त्रिपुरा की भी पूजा हो जाती है। क्योंकि वह श्रीयन्त्रयुक्त शिवलिङ्ग तीन मूर्तियों का रूप हो जाता है - १ शिवलिङ्ग, २श्रीयन्त्र, ३भगवती श्रीत्रिपुरा, इसलिये वह सभी ओर से अतिशय महिमाशाली हो जाता है ॥२७॥

त्रिमूर्तिरूपं तद्यस्मात् तुरीयं चक्रनायकम् ॥
तस्माद् व्यष्टिसमष्ट्यात्मलिङ्गस्थं चक्रनायकम् ॥28॥

वहशिवलिङ्ग तीन-मूर्तियों का रूप है उसमें चौथी केन्द्रीय सर्वोपरिशक्ति श्रीचक्रनायक (श्रीकामेश्वर) हैं । इसीलिये व्यष्टि और समष्टिरूप आत्मलिङ्ग में स्थित श्रीचक्रनायक हैं ॥२८॥

अतस्तत्रतु पूजाया महाफलमुदाहृतम् ॥
तत्रादौ तु महादेव सम्पूज्याऽऽगमवर्त्मना ॥29 ॥

चतुर्मूर्ति देवतत्त्व की उसमें (श्रीयन्त्रयुक्त शिवलिङ्ग में) पूजा का महाफल कहा गया है । उस चतुर्मूर्ति में सर्वप्रथम महादेव शिव की आगमोक्त-क्रम से पूजा करें यह आवश्यक है अन्यथा निष्फलता ही रहेगी ॥२९॥

ततस्तु त्रिपुरां देवीं पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥
अन्यथा त्रिपुराद्रोहाद् विहतः स्यात्पदे पदे ॥ 30 ॥

शिवपूजा करने के बाद परमेश्वरी श्रीदेवीत्रिपुरा की पूजा करें।

यदि इस क्रम से साधक पूजा नहीं करता तो यह उसका भगवती त्रिपुरा का द्रोह माना जायगा । परिणामतः उसे पद-पद में अपमानित होना पड़ेगा ॥ ३० ॥

तत्र राम! प्रतिष्ठां च पूर्वकृत्वा महेशितुः ॥
ततः कुर्याद्देवताया विधानेन यथोक्ततः ॥ 31 ॥

हे परशुराम् ! वहाँ शिवलिङ्ग में महेश की प्रतिष्ठा प्रथमतः करें। फिर यथा शास्त्रोक्त क्रम से विधानपूर्वक देवता का प्रतिष्ठापन करें॥३१॥

अप्रतिष्ठापितैर्यन्त्रैर्मूर्तौवाऽन्यत्र कुत्रचित् ॥
विधानेन पूजयापि न पूजाफलमश्नुते ॥ 32 ॥

प्रतिष्ठा न किये हुये यन्त्रों से या मूर्ति में और कहीं भी विधान से पूजा करने पर भी उसे पूजा का फल नहीं मिलेगा, व्यर्थ ही रहेगा॥३२॥

एवं लिङ्गमसंस्थाप्य यन्त्रं संस्थापयेत्क्रमात् ॥
तथा संस्थाप्य वालिङ्गं न यन्त्रं स्थापयेच्च यः ॥33॥

इस प्रकार जो भी साधक लिङ्ग की स्थापना किये बिना यंत्र की क्रमशः स्थापना करता है, तथा अथवा लिङ्ग की स्थापना करके यन्त्र की स्थापना न करे तो ॥ ३३ ॥

प्रमादादालस्यतो वा महादोषमवाप्नुयात् ॥
तस्मादस्थापितं यन्त्रे लिङ्गे वा पूजनं कृतम् ॥ 34 ॥

तो वह प्रमाद से (लापरवाही, असावधानी) या आलस्य के कारण बहुत बड़े महान् दोष को प्राप्त करेगा, इस कारण यदि उसने बिना स्थापना किये हुए यन्त्र में या लिङ्ग में पूजन किया तो ॥३४॥

हेलनं तद्देवतायास्तस्मात् पापमवाप्नुयात् ॥
तस्माद्यन्त्रं तथा लिङ्गं मूर्तिं वापि विधानतः ॥ 35 ॥

इस प्रकार यदि किसी ने लिङ्ग, यन्त्र, और मूर्ति इनमें से एक स्थापना, अन्य दो की स्थापना नहीं की तो अन्य दो का अपमान और जिसकी स्थापना की वह व्यर्थ, इस प्रकार तीनों बिम्बों की अविधि से तथा अवहेलना अर्थात् अपमान या निरादर करना - इससे उस साधक को पाप की ही प्राप्ति होगी । इस कारण विधानपूर्वक यन्त्र की लिङ्ग की और मूर्ति की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥३५॥

संस्थाप्यैवाऽर्चयेद् धीमान् पूजादि फलहेतवे ॥
स्थावरं यदि लिङ्गं स यन्त्रं कर्तुमिच्छति ॥ 36 ॥

यदि आराधक स्थिररूप से लिङ्ग और यन्त्र (श्रीयन्त्र)की प्रतिष्ठा करना चाहता है,तो स्थिर स्थापना करके ही बुद्धिमान् साधक पूजादि फलों के लिये पूजा-अर्चना आदि करे ॥३६॥

तदा चरप्रतिष्ठां तु लिङ्गे कृत्वा ततः परम् ॥
राम! स्थिर प्रतिष्ठां वै यन्त्रे कुर्याद्विधानतः ॥ 37 ॥

हे भार्गव! परशुराम!! जो साधक पूजादि फलाप्ति के लिये उत्सुक है, तो वह लिङ्ग में चल प्रतिष्ठा करे,उसके पश्चात् विधानपूर्वकयन्त्र में स्थिर प्रतिष्ठा करे ॥ ३७ ॥

चरे लिङ्गे ऽप्येवमेव प्रतिष्ठां चरसंज्ञिताम् ॥
केवले शिवलिङ्गे तु स्थापनं स्यान्निरर्थकम् ॥ 38 ॥

चर (चल) लिङ्ग में भी इसी प्रकार से ही चरसंज्ञक प्रतिष्ठा करे । किन्तु शिवलिङ्ग में स्थापना (स्थिर) व्यर्थ होगी ॥ ३९ ॥

एवं चरे स्थिरे वापि ज्ञात्वा सम्पूजयेत्क्रमात् ॥
अन्यथा पूजयन् देवीं विनाशं प्राप्नुयात् द्रुतम् ॥39॥

इस प्रकार चर प्रतिष्ठापन में या स्थिर (अचल) प्रतिष्ठापन में

क्रम अच्छी तरह समझकर क्रम से अर्थात् लिङ्ग,मूर्ति,श्रीयन्त्र इनकी यदि चर-प्रतिष्ठा है, अथवा तीनों की स्थिर-प्रतिष्ठा है,तो इस क्रम को समझकर-अर्थात् अपनी स्वयं की निजी स्थिति समझकर यदि साधक स्थिर-प्रतिष्ठा के योग्य स्थिति में है तो स्थिर-प्रतिष्ठा करे,यदि चल-प्रतिष्ठा के योग्य स्थिति में हो तो चल-प्रतिष्ठा करे,यह सभी अपनी स्थिति का समालोचन करके ज्ञान करके क्रम से चर में चरपूजनक्रम अचर में अचरपूजनक्रम निश्चय कर पूजन करे अन्यथा चरबिम्ब में अचर (अचल) प्रतिष्ठोक्त पूजन करता हुआ तथा अचल-बिम्ब में चलबिम्ब पूजन करता हुआ शीघ्र ही विनाश को प्राप्त करता है ॥ ३९ ॥

एवं चरे स्थिरे वापि ध्यात्वाऽऽवाह्य देवताम् ॥
पूजयेदुपचारैस्तु राम! शक्त्यनुरोधतः ॥ 40 ॥

इस प्रकार हे राम! चर-बिम्ब हो या स्थिरबिम्ब हो अर्थात् चर प्रतिष्ठायुक्त तीनों (यन्त्र,लिङ्ग,मूर्ति) अथवा स्थिरप्रतिष्ठायुक्त तीनों उनमें उनकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए वैसा आवाहनादि देवता का करके तदनुसारी उपचारों से यथाशक्ति,यथासम्भव पूजनादि साधक करे॥४०॥

प्राणान् संस्थाप्य तत्पश्चात् पुष्पाञ्जल्या प्रपूजयेत् ॥
करसम्पुटयुग्मेन पुष्पाक्षतसमर्पणम् ॥ 41 ॥

आराध्य विग्रहों में प्राणप्रतिष्ठाविधि आत्मन्यास,ऋष्यादिन्यास कराङ्गन्यास स्वयं करके फिर मूर्तियों में करे (प्रतिदिन लघु-प्रतिष्ठा-विधि भी होती है) तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि द्वारा पूजन करे । पुष्पाञ्जलि की मुद्रा दोनों करों के सम्पुट से पुष्पाक्षत समर्पण किया जाता है ॥ ४१ ॥

आसनं कल्पयेदग्रे स्वर्णरौप्यादिनिर्मितम् ॥
एवमन्योपचारेषु मन्त्रं युक्त्या प्रयोजयेत् ॥ 43 ॥

सर्वप्रथम देवता के लिये स्वर्ण या चाँदी आदि धातु से निर्मित आसन कल्पित करे । इस प्रकार अन्य उपचारों के समर्पणावसर में मन्त्रों (उपचार मन्त्रों) का युक्ति से प्रयोग करें॥४३॥

मन्त्रादौ तु चतुस्तारं योजयेत् सर्वकर्मसु ॥
तारो ब्रह्ममयः प्रोक्तो वाग्भवं सूर्यमण्डलम् ॥44॥

मन्त्रों के प्रारम्भ में चतुस्तारमंत्र (ॐ ऐं ह्रीं श्रीं) तथा सभी उपचारों में जोड़े । इन चारों का अर्थ इस प्रकार है - यथा - ॐ ब्रह्ममय कहा गया है । ऐं-वाग्भवबीज सूर्यमण्डल है ॥ ४४ ॥

अग्नीषोमात्मकं माया, लक्ष्मीश्चापि क्रमाद् भवेत् ॥
वाग्भवं वाङ्मयत्वेन ब्रह्मशक्तिरुदीरितम् ॥ 45 ॥

ह्रीं नामक प्रणव अग्नि-सोमात्मक है, श्रीं बीज भी इसी क्रम से प्रयुक्त होगा, श्रीं-बीज ऐश्वर्यमय है - ऐं बीज वाङ्मय होने से ब्रह्मा की शक्ति (स्वरा, या सरस्वती) कहा गया है ॥ ४५ ॥

लज्जा तु वैष्णवी शक्तिर्लक्ष्म्याः सर्वत्र गोपनात् ॥
श्रीर्विषं संहृतिकरे रुद्रशक्तिस्ततो भवेत् ॥ 46 ॥

लज्जा (ह्रीं) बीज तो वैष्णवीशक्ति है लक्ष्मी के सर्वत्र रक्षण से श्रीं बीज है, तथा विष का संहार करनेवाला है, वह रुद्रकी शक्ति है ॥४६॥

शक्तीनां मण्डलानां च त्रितयं यत्त्रिबीजगम् ॥
तत्समष्टि परंब्रह्म प्रणवार्थ उदाहृतः ॥ 47 ॥

शक्तियों का मण्डलों का जो तीन बीजों का त्रितय (त्रितारी) है उनका समष्टिपरक बीज ब्रह्म - वह प्रणव (ॐ) कहा गया है ॥ शक्तित्रय

बीज (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) इनके बीज (ऐं, ह्रीं, श्रीं) ये प्रत्येक व्यष्टि रूप हैं इनका समष्टिरूपब्रह्म प्रणव- तार ॐ है ॥४७॥

एवं रूपचतुस्तारयोगान्मन्त्रेषु सर्वतः ॥
त्रिपुरायाः ब्रह्मरूपात् तत्सम्बन्धेन कर्मणाम् ॥48॥

इस शक्तित्रय के बीजों का (व्यष्टिरूप) समूह - (ऐं ह्रीं श्रीं) का जोड़ समष्टिपरक ब्रह्मरूप प्रणवका जो अर्थ है उसका उदाहरण है, इस प्रकार के रूप वाले चतुस्तार (ॐ ऐं ह्रीं श्रीं) का योग पूर्व में सभी मन्त्रों में होने से उन विमर्शरूपा-भगवती त्रिपुरा का प्रकाशरूप ब्रह्म (शिव) से सामरस्य होने से क्रियात्मक पूजन, यज्ञ,न्यासादि में मन्त्रों का प्रयोगरूप कर्म भी ॥ ४८ ॥

तदात्मता समापत्त्या बन्धो मोक्षाय वै भवेत् ॥
एवमर्थतो ज्ञानतोऽपि महाफलमवाप्नुयात् ॥ 49 ॥

शिवशक्ति के ऐक्य से तत्सम्बद्ध कर्म भी शिवशक्तिमय हो जाता है, अतः स्वभाव से अनित्य तथा बन्धन कारक होने पर भी तदात्मक हो जाने से वह बन्धरूप फल भी मोक्ष के लिये निश्चित रूप से हो जाता है । इस प्रकार अर्थ से और ज्ञान से भी तादात्म्य रूप महाफल प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥

अज्ञात्वा मन्त्रवर्णानामर्थं कर्म तु यत्कृतम् ॥
तद्वृक्षकम्पनादिव कृतमप्यकृतं भवेत् ॥ 50 ॥

मन्त्रों का तथा मन्त्र के वर्णों का अर्थ तात्पर्य,वाचिक और लक्ष्यार्थ जो भी कर्म अर्थ न जानकर किया तो भी वहाँ न किया जैसे निरर्थक हो जाता है,अर्थात् असफल हो जाता है । जैसे वृक्ष का कम्पन, फल रहित होना आदि में फलों का अपक्व होना आदि या वृक्ष का टूटना ॥५०॥

तस्मादज्ञानपूर्वं तु बालादीनां प्रभाषितम् ॥

युक्तार्थमध्य फलकं फलनिर्वृत्त्यदर्शनात् ॥ 51 ॥

इस कारण अज्ञानपूर्वक जो भी क्रिया है - जैसे बालक आदि अर्थात् पूर्वापरासम्बद्ध वाक्य बोलने वाला,विच्छेद (शब्दों तोड़ मरोड़कर बोलने वाला, कहीं कहीं युक्त अर्थ होने पर भी अफलक होता है) निरर्थक होता है, क्योंकि उसमें फल की पूर्णता या सम्पन्नता,या सार्थक फलवत्ता प्राप्त नहीं होती नहीं दीखती-समझ में नहीं आती ॥५१॥

तस्मादर्थज्ञानपूर्वं कृतं कर्म फलावहम् ॥

एवं सर्वत्र पूजादौ - अर्थभावनपूर्वकम् ॥ 52 ॥

इसी कारण अर्थज्ञानपूर्वक किया गया कर्म फलदायक होता है। इस प्रकार पूजा में,व्यवहार में,अपनी चेष्टाओं में अर्थभावना पूर्वककर्म की उपयोगिता,सार्थकता,उद्देश्य समझते हुए करना चाहिये ॥५२॥

कृतमेव महाश्रेष्ठमन्यथा पशुकर्म तत् ॥

ततः स्वागतमर्घ्यं च पाद्यमाचमनीयकम् ॥ 53 ॥

अर्थभावना से किया हुआ कर्म ही सर्वश्रेष्ठ है अन्यथा वह पशु (अज्ञानी) का ही कर्म होता है । **"देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्** "नियमानुसार तदनन्तर अर्थात् इष्ट, पूज्यदेव को शास्त्रविहित पीठ में आवाहित करके उनका स्वागत, विशेष द्रव्यों से अर्घ्य, और पाद्य,तथा आचमन उपचारों को अर्पित करें ॥५३॥

मधुपर्कमाचमनं भूयः स्नानाय मण्डपे ॥

प्रवेशं भूषणानां चाप्यवरोपणमेव च ॥ 54 ॥

आचमनार्पण के बाद पात्र में ऊपर पात्र से ढंका हुआ मधुपर्क (दधिमधुघृतमिश्रण) मधुपर्क मंत्र "ॐ निहितः कनकस्य सम्पुटे पिहितः०"-

एवं वैदिकमंत्र "मधुव्वाताऋृतायत०" इत्यादि से सम्मानित कर पुनः आचमन अर्पित करके पुनः स्नान के लिये स्नानमण्डप (सर्वतःसमावृत) में प्रवेशधारित आभूषणों का उतारना, रूपउपचारों को सम्पन्न करें॥५४॥

दन्तधावनकं गण्डूषणमास्य विशोधनम् ॥
वस्त्रेण प्रोञ्छनं भूय आचामाभ्यङ्ग एव च ॥ 55 ॥

फिर दन्तधावन, गण्डूषण (कुल्ला) कराना, फिर मुख प्रक्षालन, मुख को पोंछना, वस्त्र से, पुनः आचमन कराके सुगन्धित तैल से तैलाभ्यङ्ग कराना ॥५५॥

केशस्यशोधनं चाङ्गोद्वर्तनं तु सुगन्धिभिः ॥
उष्णतोयस्नानमथ स्नानं पञ्चामृतैस्ततः ॥ 56 ॥

केशों का शोधन, अङ्गों में सुगन्धित द्रव्ययुक्त उबटन, इसके बाद उष्णजल से स्नान, इसके अनन्तर पञ्चामृत (दूध, दधि, मधु, घृत और चीनी) से स्नान ॥५६॥

स्नानं फलजलौघैश्चशुद्धतीर्थजलैरपि ॥
आचामं प्रोञ्छनं केशाङ्गानां केशसुधूपनम् ॥ 57 ॥

फलमिश्रितजल, सुगन्धित पुष्पजल, चन्दनात्तरयुक्तजल से स्नान फिर शुद्धतीर्थजल से स्नानविधि (श्रीसूक्त या देव्यथर्वशीर्ष से) अभिषेक दक्षिणावर्त-शङ्ख से भी करे । स्नानाङ्गआचमन,केश और अङ्गों का वस्त्र से पोंछना और केशों की आर्द्रता को हटाने के लिये सुगन्धित-धूप से सुगन्धीकरणविधि सम्पन्न करें ॥५७॥

पुष्पगुच्छभूषणाद्यैर्वेणीग्रथनमेव च ॥
दुकूलमुत्तरीयं चाचामं भूषा भुविस्थितिम् ॥ 58 ॥

सुगन्धित मल्लिकादि पुष्पों के गुच्छों और केशों के भूषण (भालभूषण) अर्थात् - मणिमण्डपमणिपीठोपवेशनानन्तर नवमणिमुकुट,

निष्कलङ्कचन्द्रकलाधारण, सीमन्तसिन्दूर, तिलकरत्न, मोतियों के गुच्छों की माला से वेणी को गूंथना, फिर लटकती हुई वेणी में भुजङ्ग के फण की शोभा वाली में दिव्य चूणामणि अर्पण, चारों ओर से जड़े हुए दुर्लभ मुक्ताओं वाले रत्नों की विचित्र झिलमिलाहट से युक्त काले बादलों जैसे केशों के मध्य विद्युतलहर जैसे समुज्ज्वल भालभूषणों से देदीप्यमान त्रिणेत्रयुक्त, शिव से प्रतिक्षणदर्शनीय मुखमण्डल, सुवर्णशलाका से दिव्यांञ्जन वाली युगलमणिकुण्डलभूषण कर्णों में, नासाभरण मरकत, पद्मराग, हीरा आदि दिव्यरत्नों की गोली तीन लड़ों में गुंथी हुई रत्नमाला कण्ठ में अर्पित करें, मङ्गलसूत्र, पदक, महापदक, पादाङ्गुलीयक, हस्ताङ्गुलीयक, पाश, अङ्कुश, इक्षुचाप, पञ्चबाण (कामेश्वरी कामेश्वर के), मणिरूपपादुका, इस प्रकार दिव्याभूषणों से भगवती को विभूषित करे, उत्तरीय चूनरी, (ओढ़नी) फिर आचमन, श्रीचक्राधिरोहण ॥५८॥

भूषणानां कल्पनं च पादुकारोहणं च ततः ॥
छत्रं चामरयुग्मं च व्यजन द्वन्द्वमेव च ॥ 59 ॥

भूषणों की कल्पना और तदनन्तर पादुकारोहण कल्पन करे । फिर, राजोपचारों की कल्पना में छत्र, दो चंवर, दो निशान, अर्पित करें॥५९॥

पूजागृहप्रवेशं च कामेशाङ्कोपरोहणं ॥
सीमन्तसिन्दूरकं च कस्तूरीतिलकं ततः ॥ 60 ॥

अपनी समान वेषा आवरणदेवताओं के साथ महाचक्राधिरोहण, कामेश्वराङ्कोपवेशन, मांग में सिन्दूर, और कस्तूरी तिलक ॥ ६० ॥

सौवीराञ्जनकं चाष्टगन्धमादर्शमेव च ॥
अक्षतं पुष्पमपि च धूपं दीपमनन्तरम् ॥ 61 ॥

सौवीराञ्जन, अष्टगन्ध, और दर्पण, तथा निर्दुष्ट और शास्त्र-निर्दिष्ट

किस देवता को कौन पुष्प अर्पित हो, इसका परिचय लेकर वैसे स्वीकृत पुष्प भी अर्पित करे, धूप,और दीप अर्पण के अनन्तर।।६१।।

नैवेद्यमापोशनं च प्रार्थनं ध्यानमेव च ॥

पानीयमापोशनं च हस्तक्षालनमेव च ॥ 62 ॥

भगवती को नैवेद्य, निवेदित करे, आपोशान अर्पित करे, प्रार्थना एवं ध्यान करे, जलपात्र में जल प्रस्तुत करे, आपोशन करे, (अमृतोपस्तरणमसिस्वाहा), हस्तप्रक्षालन,गण्डूष करावे ।।६२।।

करोद्वर्तनकं गण्डूषण पादनिषेचनम् ॥

आचामं फलताम्बूले दक्षिणामारतीं तथा ॥ 63 ॥

हस्तप्रक्षालन के पश्चात् चन्दन से करोद्वर्तन करे, गण्डूषण करावे, फिर आचमन के बाद फल और कर्पूरवीटिका अर्पित करें, दक्षिणा,एवं आरती (मङ्गलार्तिक) करे ॥ ६३ ॥

पुष्पाञ्जलिं परिक्रामं नतिं कर्मसमर्पणम् ॥

कल्पयेत् प्रोक्तविधिना चतुःषष्ट्युपचारकम् ॥64॥

पुष्पाञ्जलि अर्पण, परिक्रमा, प्रणाम और कर्म का देवता को समर्पण, पिछले वर्णन के अनुसार चतुःषष्ट्युपचार भगवती की पूजा में अर्पित करे ॥ ६४ ॥

स्वागतं तु वचोरूपं दूर्वागन्धसुमाक्षतैः ॥

यवसर्षपरत्नैश्चकुशैरर्घ्ययुतंजलम् ॥ 64 ॥

भगवती का ध्यान करके (अन्तर्याग मानसिक रूप से करने के बाद) वाणी द्वारा महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे०) स्वागत करने के बाद दूर्वा, आदि (दूर्वयासरसिजान्वितविष्णुक्रान्तया०) द्रव्यों से, गन्ध पुष्पादि से तथा यव, सरसों (पीतश्वेत), रत्न, कुश युक्तजल से ।।६५।।

दद्यादर्घ्यं हस्तयोस्तु पाद्यं पादयुगेऽर्पयेत् ॥
सुगन्धितोयैराचामं कर्पूरोशीरवासितैः ॥ 66 ॥

भगवती के हस्तकमलों में अर्घ्य अर्पित करें, इसके पूर्व दोनों चरणों में सुगन्धित जल में अर्पित करें, इसके बाद कर्पूर, उशीर (खस) सुगन्धद्रव्यों से सुगन्धित -॥ ६६ ॥

जलैर्दक्षकरे दद्यात् तथैव मधुपर्ककम् ॥
दधिक्षौद्रफलैर्युक्तैर्गण्डूषाद्यैः शुभैर्जलैः ॥ 67 ॥

जल से आचमन कराए, वैसे ही मधुपर्क-दधि, मधु और फल युक्त करके ढंककर दाहिने हाथ में अर्पित करे, फिर शुद्ध सुगन्धित जल से गण्डूषादि करावे ॥ ६७ ॥

सुगन्धिततैलमभ्यङ्ग सुगन्धद्रव्यमण्डलैः ॥
केशानां शोधनं तद्वदङ्गोद्वर्तनमेव च ॥ 68 ॥

सुगन्धित तैल से तैलाभ्यङ्गं, सुगन्धद्रव्यसमूहों से केशों का सुगन्धीकरण करें, वैसे ही अङ्गों का उद्वर्तन करें ॥ ६८ ॥

केशधूपचन्दनादिधूपैः सुरभितैर्भवेत् ॥
चन्दनागरुकश्मीरकर्पूरकचोरकाः ॥ 69 ॥

केशों धूप देकर (कालागुरुधूप), चन्दनादि धूपों से उन्हें सुरभित करें । अष्टगन्ध द्रव्य (शक्तिगन्धाष्टक हैं) यथा -: १ चन्दन, २ अगरु, ३ काश्मीर (केशर), ४ कर्पूर, ५ कचूर ॥६९॥

गोरोचनजटामांसीकपयश्चाष्टगन्धकम् ॥
समग्रतण्डुलभवं रञ्जितं रक्तवर्णकैः ॥ 70 ॥

६ गोरोचन, ७ जटामांसी, ८ कपि - इन दिव्य अष्ट गन्धों से आलेपमण्डपस्थ मणिपीठ में उपवेशन कराकर भगवती के सर्वाङ्ग में सर्वाङ्गीण विलेपन । इसके बाद अक्षत चांवलों को लालवर्ण

करके अक्षत पुष्प अर्थात् कीटादि से छिन्नभिन्न, पंखुड़ियाँ वाले, निर्गन्ध आदि दोषरहित अर्पित करे पुष्पमाला भी धारण कराये ॥७०॥

अक्षतं पुष्पमपि च विविधं पत्रमेव च ॥
रक्तपुष्पं तु सामान्यं सगन्धं वाप्यगन्धकम् ॥ 71 ॥

अक्षतों (तण्डुल केशर-या रोली से रंगे हुए) एवं अक्षतपुष्प भी और विभिन्न पत्रादि लालवर्ण के पुष्प साधारण हो, गन्धयुक्त (गुलाब आदि) या गन्धरहित (जवा,विष्णुकान्ता नीलापुष्प, पलाशपुष्प) अर्पित करें ॥ ७१ ॥

त्रिपुराया: प्रियं तद्वत्तुलसीबिल्वपत्रकम् ॥
करवीरं जपां जातीं मल्लिकां मालतीं तथा ॥ 72 ॥

भगवती त्रिपुरा का प्रिय वैसे ही - तुलसीदल, बिल्वदल, कनेर- (पांच पंखुड़ी वाला लाल रंग का), जपाकुसुम,चमेली, मोगरा,मालती के पुष्प ॥ ७२ ॥

पद्मं कोकनदं तद्वत् कुमुदं चासितोत्पलम् ॥
सौगन्धिकं तु वकुलं चम्पकं च कुसुम्भकम् ॥ 73 ॥

पद्म कोकनद (लालकमल) कुमुद (श्वेतकुमुदिनी) असितोत्पल (नीलकमल),सौगन्धिक (सुन्दरगन्धवाला),बकुल, (मौलसिरी), चम्पक (चम्पा) कुसुम्भक (केसर)॥ ७३॥

बन्धूकं तगरं चान्यत् सुगन्धं पत्रपुष्पकम् ॥
त्रिपुराया: प्रियं तैस्तु पूजिता वाञ्छितार्थदा ॥74॥

बन्धूकपुष्प (दुपहरिया) तगर (एक प्रसिद्धि में पीतचंदन) या पीली लकड़ी औषधपुष्प, और अन्य सुन्दर गन्धयुक्तपत्र और पुष्प भगवती त्रिपुराके प्रिय ऐसे पुष्पों से पूजित वे वाञ्छित कामनाओं को देती हैं ॥ ७४ ॥

चन्दनागरुकर्पूरोशीरमांसीशिलारसैः ॥

गुग्गुलुप्रमुखैरन्यैः सुगन्धैः सुमनोहरैः ॥ 75 ॥

चन्दन, अगर, कर्पूर, खस, जटामांसी,शिलाजतु,गुगुल प्रमुख अन्य सुगन्धित और सुन्दर मनोहर - ॥ ७५ ॥

निर्धूमाङ्गारविन्यस्तैर्धूपं कुर्याद् विचक्षणः ॥

लोहसीसक भिन्ने तु पात्रे मृण्मयके ऽथवा ॥ 76 ॥

धूमरहितअङ्गार में धूपविधि तथा पूजाविधि जानने वाला पूजक (लोहे के सीसक के अलमोनियम,स्टील से भिन्न या) मिट्टी के बने पात्रों में धूपोपचार अर्पित करें ॥ ७६ ॥

निक्षिप्य धूपयेन्नोल्कामादायापात्रहस्ततः ॥

एकद्वित्रिचतुःपञ्चसप्तोपरि यथैच्छतः ॥ 77 ॥

इन निषिद्धपात्रों में रखकर धूप न दे तथा अयोग्य निषिद्धहाथ से भी धूप न दे वाएँ-हाथ से पूजित घण्टानाद के साथ दाएँ हाथ में धूपपात्र लेकर देवता की नासिकापर्यन्त एक,दो,तीन,चार, पाँच ७ बार इच्छानुसार देवता को धूप अर्पित करे ॥ (सपर्यापद्धति में विधि स्पष्ट है, उससे परिचित होकर सम्पन्न करते हैं, साधकगण) ॥७७॥

अतैलयुक्तान् दीपांस्तु भ्रामयेद् देवताग्रतः ॥

दक्षपादादि मूर्धान्तं वामपादविधिक्रमात् ॥ 78 ॥

तैल रहित घृतयुक्त (शुद्ध, गोघृत अत्युत्तम) दीपों को देवता के सामने दक्षिण पाद से लेकर मूर्धा पर्यन्त तथा वांये पाद तक दीप भ्रमित करें यह कुलदीपार्पण विधि है । इसका मन्त्र यह है- **४ अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्यामितप्रभम् । त्रिधादीपं परिभ्राम्य कुलदीपं निवेदये** ॥७८॥

देवताया जपन् मन्त्रं त्रिवारान्न्यूनतो ऽर्पयेत् ॥

एवं दीपं प्रदर्श्याऽथ दूरे निर्वापयेत्तु तम् ॥ 79 ॥

देवता के सामने दीपार्पण मन्त्र पढता हुआ तीन बार से कम न हो अर्पित करें । इस प्रकार दीप प्रदर्शित कर, उस दीप को देवता के सामने से दूर रख दें ॥ ७९॥

सम्मुखे दीपनिर्वापाद् देवता क्रुद्ध्यति द्रुतम् ॥
ततो देव्यग्रतः कृत्वा मण्डलं प्रोक्तवर्त्मना ॥ 80 ॥

देवता के सामने ही निवेदित दीप को बुझाने से (विसर्जित करने से) शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाते हैं अतः दीप को बिना बुझाये देवता से दूर एक तरफ (बांई ओर) रख देना चाहिये । इसके अनन्तर देवता के प्रोक्तमार्ग के अनुसार अर्थात् पात्रासादनविधि के अनुसार पात्रों के (सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्य पात्रों के) स्थापन क्रम में मण्डल निर्मित किये जाते थे, वैसे ही यहाँ नैवेद्यार्पण के पूर्व चौकोरमण्डल सामान्यार्घ्यजल से बनाये (यहाँ मण्डल निर्माण में स्थान की स्थिति के अनुसार नैवेद्यपात्रों के मण्डल के भीतर आने लायक विस्तार रखें । निवृत्तिमार्गी सन्यासी प्रणव बनाते हैं जल से ही प्रवृत्तमार्गी दक्षिणावर्त स्वस्तिक बनाते हैं॥८०॥

तत्राधारे तु नैवेद्यपात्रं संस्थाप्येच्छुभम् ॥
भक्ष्यौदनपेयलेह्यविशेषद्रव्यसंयुतम् ॥ 81 ॥

उस निर्मित चौकोर मण्डल में शुभलक्षण नैवेद्यपात्रों को (शुभ नैवेद्यपात्रनिर्देश श्री दत्तगुरु के द्वारा है - पात्रों के विषय में लौह पात्र (स्टील, सीसक, अलमोनियम आदि) शुभ नहीं है; पात्रों में सोना, चाँदी या पीतल या सर्वसुलभ - पवित्र दोना पत्तल केले के पत्ते) ऐसे विहित निर्दिष्ट एवं सामर्थ्यानुसार शुभपात्रों में विविध भक्ष्य ग्राह्य व्यञ्जन अर्थात् लशुन,प्याज,गृञ्जन (गाजर), मसूरदाल आदि वर्जित,ओदन,पेय,लेह्य चटनी आदि विशिष्ट-द्रव्यों से युक्त ॥८१॥

निवेदयेद् ग्रासमुद्रां दधानो वामहस्ततः ॥
प्राणादिमुद्रायोगेन ध्यानपूर्वं निवेदयेत् ॥ 82 ॥

नैवेद्य देवता के सामने मण्डल में निवेदित करके बांयें हाथ से ग्रास-मुद्रा बनावे, दांये हाथ से प्राणादि पाँच मुद्राएँ दिखाकर भगवती का ध्यान करते हुए निवेदन करे ॥ ८२ ॥

पानीयं शीतलं स्वच्छं सुगन्धं तु समर्पयेत् ॥
नैवेद्यं तद्देशकालसम्भवं स्वस्य यत्प्रियम् ॥ 83॥

एक पात्र में (गिलास) शीतल, स्वच्छ, सुगन्धयुक्त पीने योग्य पानी समर्पित करे । जो नैवेद्य प्रस्तुत किया है, वह जिस-जिस देश में कृषि में उगाया जाता है, तथा समय के भीतर पका हुआ हो, तथा अपने स्वाद तथा स्वास्थ्य के लिये हितकारी प्रिय हो (नैवेद्य में जो अन्न है वह "गोबर खाद" से यदि उत्पन्न कराया गया है, तो वह अत्युत्तम होगा) ॥८३॥

नात्युष्णं नातिशीतं च देशकालगुणान्वितम् ॥
समर्पयेद् देवतायै चान्यथा न प्रसीदति ॥ 84 ॥

अर्पित किया हुआ नैवेद्य अत्यन्त उष्ण या अतिशीत न हो तथा देशानुसार गुणयुक्त तथा उन-उन देशगत परिवर्तनशील कालगुणयुक्त ही देवता के लिये समर्पयेत् अन्य नहीं, अन्यथा देवता तृप्त तथा प्रसन्न नहीं होते ॥ ८४ ॥

होमं तदन्ते कुर्वीतापूपैर्वाऽप्योदनैरथ ॥
उल्लिख्य पश्चाद्भागास्तु रेखाः त्रेधा च दक्षतः ॥85॥

नैवेद्य में अपूप अथवा ओदनों का (मुद्गौदन, दध्यन्न, पायसान्न, हरिद्रान्न, माषौदन (उडदौदन), सर्वान्न) नैवेद्य अर्पित करके ताम्बूलादि अर्पण के अनन्तर अन्त में होमविधि सम्पन्न करे । पूजामण्डप के पश्चिम में तीन रेखाएँ दांये ओर से उल्लिखित करके ॥ ८५ ॥

त्रेधाभूयस्तत्र तोयैः प्रोक्ष्याग्निं निक्षिपेदथ
दक्षप्रत्यगुददिक्षु प्रत्यङ्नैर्ऋतवायुतः ॥ 86 ॥

होम विधि के लिये मण्डप के पश्चिम में स्थण्डिल निर्मित कर, उसका मूलमन्त्र से निरीक्षण कर "फट्" मन्त्र से सामान्यार्घ्य जल से प्रोक्षण करे, तदनन्तर तीन रेखाएँ दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में तथा पश्चिम, नैऋत्य और वायव्य-दिशा से कल्पित कर पुनः उनमें सामान्यार्घ्यजल अभ्युक्षण करके अग्नि को आत्माभिमुख स्थापित करे ॥ ८६ ॥ (सपर्यापद्धति में ललितनामाग्नि का ध्यान किया जाता है - यथा -: -

त्रिणयनमरुणमाबद्धमौलिं सुशुक्लां -
शुकमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम् ।।
अभिमतवरशक्तिं स्वस्तिकाभीतिहस्तं-
नमत कनकमालालंकृतांसं कृशानुम् ।। - ।।)
सेचयेत् -शुद्धतोयेन परितश्चापि सर्वतः ॥
कुर्यात्तु परिषेकं वै, कनिष्ठामूलभागतः ॥ 87 ॥

मण्डल के सामने तथा सभी ओर शुद्धतोय से (सामान्यार्घ्य) कनिष्ठाङ्गुलि के नीचे वाले पोर से परिषेक विधि करे ॥ ८७ ॥

अग्नये देवतायै त्रिरङ्गेभ्यः पुनरेव च ॥
देवतायै च सम्पूज्य देवीमग्नौ तु होमयेत् ॥ 88 ॥

परिषेचन करके देवी का पूजन करें, फिर अग्नि के उद्देश्य से तथा सप्तजिह्वादेवता, तथा आघारादि होमानन्तर, अग्नि में साङ्गोपाङ्ग श्रीचक्र के नवावरणस्थ देवताओं का नाममन्त्रों से (चतुस्तार ॐ ऐं ह्रीं श्रीं युक्त) होम सम्पन्न करे ॥ ८८ ॥

होमान्तेषु त्यजेत्तत्तन्नाम्ना होमेषु सर्वतः ॥
सम्पूज्य देवीं भूयस्तु परिषिच्य विसर्जयेत् ॥ 89 ॥

होम विधि में भगवती के परिवारदेवता, गुरुमण्डल, नित्याएँ,

आवरणेशी, एवं आवरण देवताओं का सम्पूर्ण श्रीचक्र देवियों के नामोच्चारण से होम सम्पन्न करे, (आहुति में देवता के उद्देश्य से चरुतिल समिदादि हवनीय वस्तुओं का द्रव्यत्याग संकल्प करके) होम सम्पन्नान्तर देवी का उत्तरपूजन करके स्विष्टकृत् होम,व्याहृतिहोम, प्रायश्चित्त होम,भूरादिनवाहुति के बाद पूर्णाहुति एवं वसोर्धाराहोम सम्पन्न करके पुनः प्रधानकलशजल से परिषिञ्चन (अभिषेक) करके अग्नि का विसर्जन सम्पन्न करें ॥ ८९ ॥

ततः कुर्याद् बलेः पूजां देवतोत्तरभागतः ॥
मण्डले सम्पूज्य सर्वभूतान् पात्रे बलिं न्यसेत् ॥90॥

दशदिशाओं इन्द्रादिलोकपालों के लिये सदीपदधिमाषबलि दे, फिर महाक्षेत्रपालबलि सकूष्माण्ड वायव्यकोण में चतुर्वर्ति तैलदीप सहित रखवाएँ । अन्त में देवता के उत्तरभाग से मण्डल निर्माण कर (जल से) सभी भूतों का पूजन करें । फिर ताम्रपात्र में बलिद्रव्य रखें॥९०॥

विशेषद्रव्यसंयुक्तं भक्ततोययुतं तथा ॥
तन्मन्त्रेणाऽर्पयेद्भूयः सम्पूज्योद्वासयेत्तु ताम् ॥91॥

जो ताम्रपात्र में बलिद्रव्य विशेष द्रव्ययुक्त हो (विशेषद्रव्य में जो भगवती को नैवेद्य में अर्पित था वह) और क्षेत्रपालबलि में दध्योदन- तथा कृशर भी (दक्षिणात्त्यलोग रखते हैं । क्षेत्रपाल के लिये "नहिस्पशमविदन्नन्यम०") प्रधानदेवता का उच्छिष्टचाण्डाली शेषिका के लिये बलि द्रव्य, व्यापकमण्डलस्थभूतबलि सदुग्ध निवेदित द्रव्यनैवेद्य का कुछ अंश बलि में देवे । पुनः देवीपूजन, अग्नि-उद्वासन (यह हवनविधि कृताकृत है । अकरणे न प्रत्यवायः, करणे तु श्रेय एव ॥९१॥

आरार्तिकं ततः कुर्यात्सर्वदुःखप्रशान्तये ॥
निर्मले धातुपात्रे तु पञ्चवर्णैः प्रकल्पयेत् ॥ 92 ॥

बलिदानादि के पश्चात् समस्त दुखों की पूर्णतया समाप्ति के

साथ शान्ति के लिये निर्मल धातुपात्र में (स्वर्ण, चाँदी, कांसा) पाँच वर्णों से सजाकर, रंग, पुष्पादि द्वारा आरती पात्र को सजावे; जिससे देवता को एवं दर्शकों को प्रसन्नता हो ॥९२॥

पद्ममष्टदलं तत्र डमर्वाकारसुप्रभम् ॥
पिष्टोद्भवं पाचितं वा हरिद्रोदनजंतुवा ॥ 93 ॥

कुलदीपार्पणानन्तर - स्थाली - स्वर्ण, चाँदी, या कांस्यथाली में डमरू आकार के दीपाधार गोधूम या तण्डूलचूर्ण, हरिद्रोदननिर्मित अष्टदलं कमलाकार में, सममात्रा में भूलकर भी दीप संख्या न हो, नव, सप्त, या पञ्च, (१०८ दीप भी, स्वस्तिकाकार मन्त्रबीजाकार, या पद्माकार में मनोहर सजावट से दीप रोली या सिन्दूर से रंगे हुए घृतपक्वदीप हों। घृतपूर्ण कपास बत्तियाँ हों, ऐसा आरतीपात्र सजायें॥९३॥

घृतवर्ति समायुक्तं प्रज्वाल्यादाय पात्रकम् ॥
त्रिर्भ्रामयेद्देवताया: पुरत: स्वयमुत्थित: ॥ 94 ॥

कर्पूरघृताप्लुतवर्तियों से युक्त दीपों को प्रज्ज्वलित कर पात्र को लेकर स्वयं खड़ा होकर देवता के सामने तीन बार घुमाएँ ॥९४॥

उत्थातव्यं तत्र सर्वैर्द्रष्टव्यं ज्वलितं च तत् ॥
स्प्रष्टव्यं चापि हस्तेन सर्वपापापनुत्तये ॥ 95 ॥

आरती, नीराजन के दर्शन के लिये एकत्रित भक्त नर-नारी, (मन्दिरों में अथवा गृह में) सभी प्रज्वलित दीपपात्र का दर्शन कर उस दीपप्रकाश में देवतेज समाहित है ऐसी भावना कर उसका स्पर्श कर नेत्रों में स्पर्शकर हाथ से स्पर्श- इस भावना से करे कि मेरे समस्तपाप भस्म हो चुके हैं (आरती के बाद **"जलेन शीतलीकरणं-आत्मदेववन्दनञ्च"** कहा जाता है) ॥९५॥

ततो गुरुं समभ्यर्च्य तोषयेत्तुविशेषत: ॥
तत: कुमारीं बटुकं विशेषै: पूजयेत्क्रमात् ॥96॥

आरती नीराजन की ज्योति ग्रहण करके साधक अपने गुरुवर्य का पूजन करे मुख्यतया उनका सन्तोषण अपने सर्वस्व समर्पण द्वारा करना चाहिये । गुरुपूजानन्तर कुमारी और बटुक शुभलक्षणादि-युक्त का प्रथम कुमारी बाद में बटुक का पूजन करे ॥ ९६ ॥

चतुर्थवर्षमारभ्य कुमारी नववर्षतः ॥
उत्तमास्यान्मध्यमा तु स्यात् त्रयोदशवर्षतः ॥ 97 ॥

कुमारीपूजन में कन्या चौथे वर्ष से नववर्ष तक की उत्तम है, तथा नववर्ष से तेरहवर्ष तक मध्यम, एवं तेरह वर्ष से - ॥९७॥

अनूढैवोत्तमा ज्ञेया मध्यमोढापि चाक्षता ॥
अधमान्या समाख्याता हीनाङ्गीं रोगिणीं तथा ॥98॥

यदि अविवाहिता है तो उत्तमा समझना चाहिये, तेरह वर्ष की यदि विवाहिता हो गई तथा अक्षत है, तो मध्यमा कुमारी है, इतने से यदि तेरह वर्षीया-क्षता है तो अधमा है, अग्राह्या है एवं हीनाङ्गी, तथा रोगिणी भी अग्राह्या है ॥ ९८ ॥

विधवां च परित्यज्य कुमारीं पूजयेत् बुधः ॥
त्रिवर्षादष्टवर्षान्तो बटुको ऽप्युक्तलक्षणः ॥ 99 ॥

विधवा का पूजन नहीं करना चाहिये । केवल शास्त्रविहित लक्षणा कुमारी ही पूजित होती हैं । तीनवर्ष से लेकर आठवर्ष तक का सुलक्षण बटुक भी कहे लक्षणों से युक्त हो तो पूजनीय है ॥९९॥

अहीनवर्णः सम्पूज्यः चाव्रती तत्र चोत्तमः ॥
ततः सुवासिनीं देवीबुद्ध्या सम्पूज्यवै क्रमात् ॥100॥

बटुकपूजन में बटुक उत्तमवर्ण का पूज्य है और यदि वह व्रत (उपनीत) नहीं किया हुआ है तो उत्तम है । कुमारी बटुक पूजनान्तर सुवासिनी का उसे देवी का रूप समझकर (सुवासिन्यै नमः ९७०)

(सुवासिन्यर्चनप्रीतायै नमः ९७१ ल.स.नाम), "सुमंगली ९६७)। भगवती के ये तीन नाम सुवासिनी के प्रत्यक्षदेवी होने का संकेत करते हैं, दुर्गासप्तशती में भी-"विद्यासमस्तास्तव-देवीभेदाः । स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु०॥१००॥

विशेषैस्तोषयेत्सम्यक् - भक्तिभावयुतो बुधः ॥
सुवासिन्यप्युक्त लक्ष्मयुत वर्णविभेदिनी ॥ 101 ॥

सुलक्षणा भी उक्त लक्षणों से शोभनीय, जो लक्षण कुमारिकाओं के कहे गये हैं । विभेदिनी का अर्थ भौहें सिकोड़ना ।

सुरूपा तरुणी शान्ता ऽनुकूला मुदिता शुचिः ।।
शङ्काहीना भक्तियुक्ता गुरुशास्त्र परायणा ।।
प्रियाक्षरा (प्रियेक्षणा-श्री) विशेषज्ञा देवतापूजनोत्सुका ।।
मनोहरा सदाचारा शक्तिरेवं सुलक्षणा।। कुलार्णवे ७ मे उल्लासे)

इन लक्षणों से सम्पन्न दीक्षिता, अदीक्षिता को त्रितारी का उपदेश करके सुवासिनी के हाथों में क्षीरपात्र (विशेषार्ध्य) नागरखण्ड- (अर्पित) बुद्धिमान, साधक भक्तिभावपूर्ण होकर अर्पित करें ॥१०१॥

सर्वाः पूज्या विधौ ग्राह्या भक्तिभावसमन्विताः ॥
दीक्षावत्युत्तमातत्रतरुणी रूपवत्यपि ॥ 102 ॥

सभी सुवासिनियाँ पूज्या हैं, सुवासिनी पूजाविधि में भक्तियुक्ता हो, देवी चिन्तनभावों से पूरिपूर्णा, श्रद्धान्विता दीक्षिता मन्त्रजपरुचियुता तरुणी (१६ से २५ वर्ष) सुन्दरी श्यामा, गौरा, सुदती, स्मितमुखा, गुरुमन्त्रदेवता-पतिपरायणा, वात्सल्यमयी के पूजन से पूर्णता सम्पन्न होती हैं ॥१०२॥

ततः सामयिकान् सर्वान् विशेषैस्तोषयेत्क्रमात् ॥
भक्तिश्रद्धायुजः सर्वे स्युः सामयिकसत्तमाः ॥103॥

सुवासिनीपूजा के अनन्तर सभी सामयिक गुरुभाईयों को विशेष (विशेषार्ध्य), प्रसादादि पवित्र वस्तुओं से संतुष्ट करें । सामयिक सभी भक्तिश्रद्धायुक्त तथा विशेषरूप से दीक्षित ही सामयिक ही विशेषार्ध्य के

अधिकारी होते हैं, वे ही सामयिक सत्तम हैं । उनका ही पूजन विशेष रूप से होता है । सामान्य नरनारी प्रसाद एवं तीर्थ (पादोदक) लेते हैं।।

(सामयिक का स्थूल अर्थ तो यह होगा, जो सामान्य दर्शक हैं समय पर (पूजा के समय) उपस्थित हैं । पर सामयिक का अर्थ आचार्यों ने किया है, जो श्रीविद्योपासना के प्रचलित मतों में समय मत के समयाचारी हैं, उस क्रम से पूजा, ध्यान, चिन्तन करते हैं वे सामयिक हैं, उनका सत्कार करे ।।१०३।।

अर्घ्योद्वासनकं कुर्याद् - देवतामपि चोद्वसेत् ।।
समाप्य पूजामात्मानं ध्यायन् कामकलात्मकम् ।।104।।

कुमारी, बटुक, सुवासिनी तथा सामयिक तथा गुरु तर्पणादि विधि सम्पन्न करके साधक विशेषार्घ्य का मूलमन्त्र से मस्तक पर्यन्त लेकर उद्वासन करे, तथा देवता (भगवती) का भी उद्वासन करे - पादोदक एवं प्रसाद ले तथा वितरित करके स्वयं को कामकला स्वरूप चिन्तन करता हुआ तद्रूप हो भावनामय हो जाय।।१०४।।

बहिर्व्यापारोपरतो भूयाद्राम तवेप्सितम् ।।
एतत्ते कथितं राम क्रमादर्घ्यादिसाधनम् ।। 105 ।।

हे राम! भार्गव!! जामदग्न्य!!! परशुराम!!! साधक बहिर्मुख होकर पूजन से उपरत हो जाय । राम! हमने तुम्हारा जो अभीष्ट था,जिज्ञास्य था वह हमने क्रम से दीक्षा,योग्यता,अधिकारी,पूर्णदीक्षा, त्रिमूर्तिपूजन,विशेषार्घ्यादिसाधन (सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्यं) कुमारी बटुक, सुवासिनी, सामयिक पूजन, सर्वान्त में पूर्णतारूप में देवता तथा विशेषार्घ्योद्वासनविधि का वर्णन किया तथा साररूप में स्वयं को कामकलात्मक अनुभव का निर्देश किया ।।१०५।।

जगदम्बा प्रीणातु श्री त्रिपुराहस्ये द्वादसाहस्र्यां संहितायां चर्याखण्डे दत्तभार्गवसंवादे पूजानिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।।

ॐ आराध्यदेवं भक्तानां कलिदोषविनाशकम् ।
वन्दे श्रीगिरिजानन्दं भक्तिर्यस्यानपायिनी ।।
श्रीमज्जगद्गुरवे नमः।।

श्री चर्याखण्डे तृतीये अष्टादशोऽध्यायः

।। ४५ श्लोकात्मकः ।।

संश्रुतं ते समुक्तं यद् भगवन्नर्ध्यसाधनम् ।।
श्रोतुं कामकलायास्तु स्वरूपमधुना हि तम् ।। 1 ।।

हे भगवन् ! जो अर्ध्यसाधन (सामान्यार्घ्य और विशेषार्घ्य) आपने विस्तार से अच्छी तरह विवेचन किया था, वह मैंने ध्यान से सुना । आपने जो पूजा उद्वासन (अर्घ्योद्वासन और देवतोद् वासन) के अन्त में कहा स्वयं कामकलात्मक चिन्तन करते हुए विचरो तो मैं उस कामकला के स्वरूप को सुनना चाहता हूँ कि उसका कैसा स्वरूप है ? ।।१।।

सा का कामकला कीदृग्रूपा च गुरुसत्तम ।।
कथं तदात्मकं ध्येयमात्मरूपं तदीरय ।। 2 ।।

हे गुरुवर्य! वह कामकला किस प्रकार के रूप वाली है । किस प्रकार उसके स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाले आत्मरूप का ध्यान करना चाहिये, यह सभी कृपया व्यक्त करें ।।२।।

इत्यापृष्टो दत्तगुरुराह दृष्टो भृगूद्वहम् ।।
राम! शृणु महागुह्यमेतन्मोक्षप्रसाधनम् ।। 3 ।।

इस प्रकार श्रीपरशुरामजी द्वारा पूछने पर तो वे गुरुवर्य हर्षित हुए, कि शिष्य जिज्ञासा कर रहा है । अतः वे उन भार्गवश्रेष्ठ को सम्बोधित करते हुए बोले - राम ! उस अत्यन्त गुह्य,गोपनीय किन्तु मोक्ष के प्रकृष्ट साधन; उसे तुम सुनो ।। ३ ।।

एतत्स्वरूपमज्ञात्वा यः करोत्यखिलाःक्रियाः ॥
न फलं प्राप्यते तास्तं क्रियाणां परमं शुभम् ॥ 4 ॥

भार्गव! इस सार की भी साररूपा कामकला के स्वरूप को बिना जाने जो भी समस्त भौतिक,दैविक और आत्मसम्बन्धी क्रियाकलाप करता है, वे सभी निस्तत्त्व सारहीन ही होते हैं, उनके वास्तविकतत्त्व का परिचय एवं साक्षात्कार नहीं होता अर्थात् उन समस्तक्रियाओं का परमशुभफल प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥

कृतं तेन तु तत्सर्वं बालक्रीडनसम्मितम् ॥
यथा देहः प्राणहीनस्तरुर्वा दग्धमूलकः ॥ 5 ॥

कामकला के स्वरूप से अपरिचित रहते हुए, उसके स्वरूप को बिना जाने हुए जो भी कर्म किया है, वे सभी बालकों के खेल जैसे ही हैं - निरर्थक उसके कार्य वैसे ही निर्जीव हैं जैसे प्राणरहित शरीर (मृत) या उस वृक्ष जैसे जिसकी जड़ ही दग्ध हो गई हो ॥५॥

तथा कृतं तदखिलं विधिना च समन्वितम् ॥
महामन्त्रासंख्यजपैर्न्यासैर्वापिकृतैस्तथा ॥ 6 ॥

तथा विधि से समन्वित समस्त किये कर्म, तथा महामन्त्र के असंख्य जपों से, अथवा सर्वविध न्यासजालों के किये जाने पर भी - और - ॥ ६ ॥

श्लोक -: पूजनैर्वास्तोत्रपाठैःकाम्यैर्वा बहुधाकृतैः।
किंभवेन्नविजानीयाद् यावत्कामकलापराम्॥7॥

जबतक उस पराशक्ति कामकला का परिचय एवं महत्त्व नहीं जानेगा तब तक देवपूजनों से या स्तोत्रपारायणों से अथवा अनेकों काम्यकर्मों के अनुष्ठानादि कार्यों से कुछ भी नहीं होगा अतः उसे कामकला का महत्व जानना चाहिए ॥ ७ ॥

एतद्विज्ञाय तत्कर्म कृतं स्वल्पमपीह यत् ॥
तदनन्तफलं राम! सत्यमेव न संशयः ॥ 8 ॥

इस कामकला के स्वरूप को जानकर किया गया वह कर्म स्वल्प भी हो तो वह यहाँ अनन्त फलदायी होता है । राम ! इसमें संशय कुछ भी नहीं है, यह सत्य ही है ॥ ८ ॥

शृणु ते संप्रवक्ष्यामि परां कामकलां स्फुटम् ॥
येयं चितिः सदा भाति भाववर्गक्रमानुगा ॥ 9 ॥

मैं तुम्हारे सामने परा कामकला स्पष्टरूप से कहूँगा तुम सुनो। यह जो चिति है जो भावानुगा है,वर्गानुगा,तथा क्रमानुगा है ॥ यह सदैव भासित होती रहती है,साधक का भाव आरम्भ में,मध्य में तथा चरमस्थिति जिस स्थिति में उसमें, यह चितिभावों की स्थिति के अनुसार होती है,यह चिति सूक्ष्मपुर्यष्टकों में परिगणित है - यथा -

चितिश्चित्तं च चैतन्यं चेतनाद्वय कर्म च ।।
जीवः कलाशरीरं च सूक्ष्मं पुर्यष्टकं मतम् ।। (स्वच्छन्द संग्रहे)

यह पुर्यष्टक चित्यादि आठपुर्यष्टक सूक्ष्म है - ये हृदयस्थित संवित्ति हैं,जो सूक्ष्मपुर्यष्टक हैं। आचार्यों के प्रतिपादनानुसार कुण्डलिनी ही जाग्रत होकर हृदयपद्म में स्फुरित होती है, जो संवित्ति सूक्ष्म रूपा है, वही पुर्यष्टक चित्यादिका माना जाता है, यह योगिनी हृदयपूजा संकेत में भगवान् शिव ने भगवती से कहा है- यथा -

हृदयान्तरसंवित्तिशून्यपुर्यष्टकात्मना ।।-
बीजरूपस्वरकलास्पृष्टवर्गात्मना ।। १५२ -१/२)

यहीं संवित्तिकला चितिरूपा बीजरूपस्वरकलाओं में स्पृष्ट वर्गात्म रूप में भाव, वर्ग तथा क्रमात्मकरूप से भासित होती है।। भाव अर्थात् "हृदयपुण्डरीक हृत्पुण्डरीकं पुरमध्यसंस्थाम् " (महानारायणोप० ८/१६) हृदयकमल (पुण्डरीक) पुर (शरीर) के मध्य में अनाहत

चक्र रूप में है - इसमें "मध्यमा" वाक् का स्थान है, यह चक्र मध्यमा वाणी (नाद) भावरूप में विद्यमान रहता हैं । यह चिति इस भाव के अनुरूप होती है इसलिये "भावानुगा" है यहीं से शरीर के कण्ठस्थान में विशुद्धचक्र (षोडशदल - अष्टारचक्र) वर्ग अर्थात् वैखरी चतुर्थवाणी नाद बनता है, यहाँ चिति स्पृष्टवर्गों (शब्दों के अकचटतपयादि अष्टवर्ग रूप) की वर्गानुगा होती है -

"अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवर्गिणीम् ।।

ज्येष्ठाङ्ग बाहुपादाग्रमध्यस्वान्त निवासिनीम् ।।(नि.वो.अर्णवे ७)

कलानुगाचिति के विषय में भगवान् आद्यशङ्कराचार्य जी ने "देवीभुजङ्गम्" स्तोत्र में भगवती की वन्दना की है - **निवृत्तिः प्रतिष्ठा च विद्या च शान्तिस्तथा शान्त्यतीतेति पञ्चीकृताभिः ।।**

कलाभिः परे पञ्चविंशात्मिकाभिस्त्वमेकैव सेव्या शिवाभिन्नरूपा ॥९॥

क्रमानुगा- **यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम् ।।**

ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वंदे सिद्धमातृकाम् ।।५।।

पुनश्च-वर्गानुक्रमयोगेन यस्यां मात्रष्टकं स्थितम् ।।

वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यष्टकेश्वरीम् ।। ११ ।।(नि.षो.अर्णवे)

साऽक्रमा चिन्मात्ररूपा त्रिपुरा परिकीर्तिता ॥

इयमेव शिवो विष्णुर्धाता त्वमहमेव च ॥ 10 ॥

वह चितिकुण्डलिनी केवल चिन्मात्ररूपा है । वही त्रिपुरा ललिता महात्रिपुरसुन्दरी है- "सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता" (भावनो० २८) तथा -

कुण्डलिन्यधिष्ठितचिदग्निमण्डलकुण्डोद्भवा (चिदग्निकुण्ड सम्भूतायै नमः पादुकां पूजयामि नमः ॥ ल स. नाम४) यही चिति रूपा त्रिपुराललिता शिवरूपा, विष्णुरूपा, ब्रह्मारूपा और तुम्हारे और मेरे स्वरूप वाली हैं ॥

एनामृते न किञ्चित् स्यात् भावो वाऽभाव एव वा ॥
परा सा ह्यपरिच्छिन्ना परिच्छिन्नाऽपराभवेत् ॥11॥

चिन्मात्ररूपा त्रिपुरा के बिना किञ्चिन्मात्र न भाव का अस्तित्व है, न ही अभाव का अस्तित्व है । वह चिद्रूपा परा अपरिच्छिन्न है, तथा अक्रमा परचितिरूपा कामकला है एवं अपरा-चिति परिच्छिन्न है, वह क्रमाकामकला है ॥११॥

शिवादिरूपिणी सैव जगल्लीलानिमित्ततः ॥
परा तु येयं त्रिपुरा चिति मात्रस्वरूपिणी ॥ 12 ॥

वही चिन्मात्ररूपा त्रिपुराजगत् की लीला (सृष्टि, पालन, संहृति, निग्रह, अनुग्रहकृत्य) निमित्त ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र,ईशान,सदाशिव तथा-शिवशक्ति आदि ३६ तत्त्वों के रूप में अभिव्यक्त होती हैं । यह अपराचिति का परिच्छिन्न रूप है । परन्तु जो यह त्रिपुरापरा है, वह केवल चितिस्वरूपिणी अपरिच्छिन्न है ॥१२॥

सा विमर्शस्वरूपा हि यतो न जडरूपिणी ॥
एतदेवाऽजडत्वं यत्स्वरूपस्य विमर्शने ॥ 13 ॥

वह अपरिच्छिन्ना चिति प्रकाशस्वरूपशिव की विमर्शरूपिणी ही है, क्योंकि वह जडरूपिणी अर्थात् अचिति नहीं है । पुर्यष्टकों में चिति है,चैतन्य है,चित्त है, चेतनाद्वय (ज्ञानकर्म- इन्द्रियाँ), कर्म, जीव,कला,शरीर हैं, सूक्ष्मपुर्यष्टक होने से यह जडरूपिणी नहीं है। इसका अजडत्व इसी से सिद्ध है कि यह स्वरूप के विमर्शन में अभिव्यक्त होती है ॥ १३ ॥

स्वतन्त्रा सर्वथा यस्माज्जड़े नास्ति विमर्शनम् ॥
स्वातन्त्र्यं हि प्रोक्तं विमर्शस्फुरणं तथा ॥ 14 ॥

सर्वथा विमर्शस्वरूपिणी होने से वह चिति,जडरूपा नहीं है,

क्योंकि जड में विमर्शन नहीं होता । इसका स्वातन्त्र्यभाव ही विमर्श का स्फुरण है ॥ १४ ॥

चैतन्यं विक्रिया चेति पराकर्तृत्वमित्यपि ॥
वाग्रूपता पराहन्ता शक्तिश्चेत्यादिशब्दतः ॥ 15 ॥

चैतन्य, विक्रिया, परा, कर्तृत्व, वाग्रूपता, पराहंता, शक्ति इत्यादि शब्दों से ही- उसके स्वरूप का अवभास होता है - ॥ १५ ॥

अगले श्लोकों में इन उक्त सात शब्दों की व्याख्या श्रीदत्तगुरु ने किया है यथा -:

स्वरूपस्यावभासो ऽयमेतैः शब्दैरूदाहृतः ॥
न जडानां स्वरूपस्य स्वस्मिन् भासनमस्ति हि ॥16॥

(१५वें श्लोक में कहे गये) इन शब्दों से इस स्वरूप का अवभास होता है । जो जड़ हैं उनका स्वयं में अपने स्वरूप का अवभासन निश्चित ही नहीं होता । वह अवभास केवल अजड चिन्मात्र रूप में होता है ॥ १६ ॥

यस्माच्चितिं समाश्रित्य भासते नान्यथा क्वचित् ॥
अतो जडानां यद्भानं परस्यैव हि तद्भवेत् ॥ 17 ॥

पुर्यष्टक का चैतन्यचिति का ही आश्रय लेकर भासित होना बिना चिति का आश्रय लिये भाषित कहीं भी नहीं हो सकता । चैतन्य यह नाम चिति के आश्रय से ही है । इस कारण जडों का जो भान है, वह पर का ही है, उसका (जड) अपना नहीं है ॥ १७ ॥

अत एव पराग्रूपमिदमित्यवभासनम् ॥
जडानां स्याच्चितेर्नैव स्वातन्त्र्येणावभासनात् ॥18॥

परं अञ्चति इति पराक् यह पराक्रूप है । यह इदम् इस रूप से अवभासित होता है, क्योंकि जो जड हैं, उनका चिति के द्वारा स्वतन्त्ररूप से अवभासन नहीं होता ॥१८॥

प्रत्यग्रूपमहमिति भानं सर्वत्र दर्शनः ॥

सोऽहंभावो हि न स्थूलो बाह्यो सम्भवतो भवेत्॥19॥

प्रत्यक् "रूप अहम्" है, और इसका भान होना सभी स्थलों में देखा जाता है, वह अनुभूत होता है। वह जो चिति से सम्बन्ध होने से सोऽ हं भाव है यह सूक्ष्म है- स्थूल नहीं है, तथा बाह्य -जड जगत् से सोऽहं भाव सम्भव ही नहीं है ॥ १९ ॥

पूर्णत्वेन परायास्तु चितेः कस्माद्धिसम्भवेत् ॥

चेतनानां समाध्यादाविव सूक्ष्मो निगद्यते ॥ 20 ॥

पराभगवती पूर्ण हैं चितिका पूर्णत्व किस कारण से सम्भव हो सकता है? जैसे जो चेतन हैं उनका समाधि आदि अवस्थाओं में (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयावस्था) उसे सूक्ष्म कहा जाता है ॥२०॥

सूक्ष्मोऽपि स विभुर्यस्माच्छुद्धसंवित्तिगोचरः ॥

एषैव च पराहन्ता शुद्धा वाग्रूपिणी स्मृता ॥ 21 ॥

वह विभु-सूक्ष्म है,तो भी उससे शुद्धसंवित्ति (शुद्ध चिति-ज्ञान) गोचर- इन्द्रियों से अनुभूत होती हैं। यही पराहन्ता है, जो शुद्ध वाग्रूपिणी रूप से स्मरण की जाती है ॥ २१ ॥

वाग्बीजरूपिणी यस्माच्छुद्धसंविद्धि कीर्तिता ॥

चेतनेष्वेदेतदेवास्ति वाग्वृक्षस्य सुबीजकम् ॥ 22 ॥

वाग्रूपता- अर्थात् वाग्बीजरूपिणी- वाणी की बीज (हेतु) रूपिणी है, जिससे (वाग्रूपिणी) शुद्ध-संवित् (शुद्धज्ञान) प्रसिद्ध होती है। चेतनों में यही वाग्बीज का सुन्दरबीज है ॥ २२ ॥

यया तु स्थितया वाचं व्याहरन्ति हि चेतनाः ॥

एनां बिना शिवे विष्णौ वापि कीटे पतङ्गके ॥ 23 ॥

जिस वाग्रूपता की जो वाग्रूपिणी है, जिसकी स्थिति से चेतन

प्राणी वाणी का व्यवहार करते हैं, बोलते हैं । इसके बिना (शक्ति) शिव में,विष्णु में भी और कीट,पतङ्ग में- ॥२३ ॥

इसकी शक्ति से ही सभी व्यवहार सम्पन्न होते हैं ॥ -:

न किञ्चिदस्ति रामैतद्विमृश सूक्ष्मया धिया ॥

देहादिबुद्धिपर्यन्तमियमेव सुसङ्गता ॥ 24 ॥

हे परशुराम! यह वाग्रूपता अर्थात् वाग्रूपिणी पराशक्तित्रिपुरा देह (शरीर त्रय) इन्द्रियादि (ज्ञान-कर्म), अन्तःकरण, मन, चित्त, बुद्धि-अहंकारपर्यन्त यही शक्तिरूप में सुसङ्गता है । इसके बिना कुछ भी अस्तित्वयुक्त नहीं है, यह तुम सूक्ष्मधी से बुद्धि से विमर्शन करो॥२४॥

परिच्छिन्नाहन्तयोक्ता प्रोक्ता विद्यादिनामभिः ॥

एवं पराहं स्फुरणानुसन्धि प्रोच्यते बुधैः ॥ 25 ॥

परिसीमित अहन्ता से (अभेददृष्टि) वह त्रिपुरा विद्यादि नामों से कही गई है । उसका आश्रय लेकर साधक में "पराहं " भाव की, स्फुरणारूप निहितार्थ की,प्रयोजन की या उद्देश्य-लक्ष्य की सिद्धि होती है । ऐसा मनीषी अनुभवी साधक कहते हैं ॥ २५ ॥

उक्तिर्यथा- अहमि प्रलयंकुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः ।
पराक्रमपरो भुङ्क्ते स्वभावमशिवापहम् ।।

पराक्रमपरः - शब्द में सौभाग्यहृदयामर्शन संकेत हैं । पराक्रम में "सौः" बीज से भी (परापंचाशिका-५०) कामकलाऐक्य अनुभूत होता है यह चिन्तन वाच्यार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ का द्योतक भी हो सकता है । इस परा-क्रम (सौः) का स्वरूप श्रीगुरुमुखैकगम्य है । यह "सौभाग्यामर्शन" है ।

परं कामकलाध्यानमात्मनो भृगुवंशज !!

शुद्धायास्तु चितेर्भानं पराहंभाव उच्यते ॥ 26 ॥

हे भार्गव! आत्मा का "अहन्तारूप में अर्थात् व्यापकआत्मदृष्टि से ध्यान है, वह परध्यान (पराध्यान) है वही पराकामकला है, जिसके ध्यान से विभुआत्मरूप स्वयं के माध्यम से (ध्यान से) सिद्ध होता है, यही कामध्यान -आत्मा का है, इसके फलस्वरूप जो भान भासित होना आरम्भ होता है, वह पूर्णरूप से शुद्धचिति का भान होना है - अर्थात् उस शुद्ध चिति त्रिपुरा (आत्म-कुण्डलिनी) में और साधक में सामरस्य होने लगता है, यही "पराहंभाव" है, यही पराकामकला है (काम = महाकामेश्वर -परमशिव- प्रकाश-कला = विमर्शरूपा महात्रिपुरसुन्दरी) अहंन्ता से इदन्ता का अपलाप = वीरत्व है - इससे ही ध्यान करना प्रयोजन है, अभिसन्धि है।

एतदेव समालक्ष्य जीवन्मुक्तो भवेन्ननु ॥
अपरा या कामकला प्रोक्ता सा प्रोच्यते शृणु ॥27॥

परारूपा कामकला का ध्यान आत्मनः(अहं) इस में तन्मय होकर-साधक जीवन्मुक्त हो जाय । अपरा जो कामकला कही गई है, वह कही जा रही है, तुम उसे सुनो ॥ २७ ॥

परायामसमर्थो हि तां ध्यायेदपरात्मिकाम् ॥
द्वयं या परमाशक्तिर्या पराहन्तयोच्यते ॥ 28 ॥

पराकामकला के चिन्तन में यदि प्रारम्भिक साधक असमर्थ हो तो वह उस अपरारूपा कामकला का ध्यान करे । यह जो परमाशक्ति है; जो पराहन्ता द्वारा कही जाती है । उसका अपरा रूप अगले श्लोक में श्री दत्तगुरु आविर्भूत कर रहे हैं -: यथा -

तस्यास्तु वाचकं रूपं स्वरे तुर्यमुदाहृतम् ॥
तस्यास्त्यंशत्रयंराम! बिन्दुर्बिन्दूकला इति ॥29॥

उस अपरा कामकला का वाचक रूप चतुर्थ स्वर "ई " में

उदाहृत है वाच्य है अपरा कामकला । हे राम ! उस "ई " कार वाचक स्वर के तीन अंश हैं - एक ऊद्धर्व बिन्दु, उसके नीचे तिर्यक् (दांए,बांए) दो बिन्दु और उनके नीचे हरार्धकला ।। २९।। भगवान् शिव ने "दिव्यमङ्गलाध्यान में- भगवती से अपरा-कामकला का स्वरूप कहा है -

चक्रपूजापरोमन्त्रो श्री चक्रार्चनपूर्वकम् । बिन्दु बिन्दुद्वयारूढहार्द-बिन्दुस्वरूपकाम् ।। ९३।। हृत्प्रेरणा से ही होता है! इस वर्णन का सुस्पष्ट अवगमन श्रीगुरुमुख से ही उपदेश (दीक्षा से) श्री गुरु की कृपा से होता है ।

अहन्तायामस्ति चांशत्रयं स्यादेतदेवतत् ।।
अहकारौ च शून्यं चेत्यंशत्रयमुदाहृतम् ।। 30 ।।

अहन्ता "में तीन अंश हैं, यह त्रिरूपअंशत्रय, वह परमानन्द रूप परब्रह्म परमस्पन्दनरूप में व्यक्त होता है वह अहन्तारूप में ही त्रिधारूप में होता है- अहन्ता में अकार,और हकार ये दो और तीसरा अंश शून्य (बिन्दु) रूप होता है, यहीं अंशत्रय का उदाहरण दिया गया है।। ३० ।।

लीनाऽहन्तामयी चितिः परशिवोभवेत् ।।
सशून्यरूपः पूर्णत्वाद्यदा सृष्ट्युन्मुखो भवेत् । 31 ।

यह अहन्तामयीचिति है, वह परशिव में लीन है, जब परम शिव सृष्ट्युन्मुख होते हैं तब पूर्णरूप होने से वह शून्यरूप (बिन्दु) होते हैं- अहन्ता के अहकार उस बिन्दुरूप में संयुक्त हो जो उसे ही कामकला के रूप में कहा जाता है ।। (सदानन्द पूर्णास्वात्मैव परदेवता ललिता) भावनोप० २८ निरूपाधिकसंविदेव कामेश्वरः ।।२७।। "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्"(तै०उ० ३/६) तथा एतस्यैवानन्दमयस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति (बृ०उ० ४/३/३२) अभियुक्त-वचन भी यही है

"स्वसंवित् त्रिपुरादेवि लौहित्यं तद्विमर्शनम् " इन्हीं सभी वचनों से वह परमानन्द रूपपूर्ण परब्रह्म सृष्ट्युमुख होने पर बिन्दुरूप में स्थिर हो जाता है, वहीं "अहंता" त्रिधा रूपिणी है ॥ ३१ ॥

तदा स्वान्तर्विलीना या पराहन्तामयी शिवा ॥
सूक्ष्मा विमर्शाभिधाना परस्वातन्त्र्यरूपिणी ॥ 32 ॥

सृष्ट्युन्मुखावस्था में जो पराहंतामयी शिवा है वह स्वान्तर में विलीन रहती है, तब वह सूक्ष्म विमर्शनाम्नी शक्ति परस्वातन्त्र्यरूपिणी है॥३२॥

जातोच्छूना ह्येतदेव सृष्ट्यौन्मुख्यमुदाहृतम् ॥
स्थूला वर्णद्वयात्माभूच्छून्येनापि सुसङ्गता ॥ 33 ॥

स्वान्तर्विलीन पराहन्तामयी शिवा परस्वातन्त्र्यरूपिणी सूक्ष्मविमर्शरूपा है, वह जब विकसित होकर उत्तुङ्ग होती है, तभी उसका वह सृष्ट्यौन्मुख्य है अर्थात् सृष्टि के लिये उन्मुख होना तब वह सूक्ष्म से स्थूल होकर दो वर्णों से अ-हकार (दोनों ही कण्ठ्यवर्ण) गोचर होते हैं पर शून्य (बिन्दु) से संयुक्त ही रहते हैं क्योंकि यही उनका सामरस्य है । वह कामकला है ॥ ३३॥

शिवशक्तिविभेदात् सा दशेयं परिकीर्तिता ॥
आद्याद् बिन्दोरधस्तात्तु तिर्यग्बिन्दुद्वयात्मकम्॥34॥

वह कामकला शिव और शक्ति भेद होने से यह दशा समझी जाती है, प्रथम बिन्दु है, उसके नीचे के तिरछे (दांए, बांए) दो बिन्दु हैं । उनका यह रूप स्थिर होता है (∘ ∘) ।

आद्यो बिन्दुः शक्तिगर्भः शिवो मिश्र उदाहृतः ॥
सूर्येच्छाशक्तिरूपश्च तिर्यग्बिन्दुद्वयं च यत् ॥ 35 ॥

आद्य बिन्दु, शक्तिगर्भ, शिव, मिश्र बिन्दु कहा गया है ॥ और वह सूर्य(रवि) है, तथा इच्छाशक्ति का रूप है । तिरछे (दांए, बांए) जो अधः दो बिन्दु हैं ॥ ३५ ॥

शिवः शक्तिर्विभिन्नो अग्निषोममयं तथा ॥
ज्ञानक्रियात्मकमपि चैवं बिन्दुत्रयात्मकम् ॥ 36 ॥

शिव और शक्ति ये दो विभिन्नरूप (तिर्यग्बिन्दु) ये दोनों एक अग्निमय दूसरा सोममय हैं, तथा एक ज्ञानशक्त्यात्मक है, दूसरा क्रियाशक्त्यात्मक है इस प्रकार ये तीन बिन्दुरूपाकामकला है ॥३६॥

ललितासहस्रनाम में - भगवती का नाम है- इच्छाशक्ति,ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तिस्वरूपिणी (ल.स.६५०) भगवान् दत्तात्रेय ने स्वरूप व्यक्त किया है, इसी का अन्य मनीषियों ने अनुकरण किया है- महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ''संकेतपद्धति'' इसी का अनुकरण कर रही है-यथा-

इच्छा शिरः प्रदेशश्च ज्ञाना च तदधोगता ।।
क्रियापदगताह्यस्या एवं शक्तित्रयं वपुः ।।

इसी प्रकार वामकेश्वरतन्त्र भी इसका प्रतिपादन कर रहे हैं-यथा -

त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी ।।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये ।।

ज्ञानशक्ति वाम- ब्रह्मा, क्रियाशक्ति ज्येष्ठा-विष्णु,इच्छाशक्ति-रौद्री रुद्र, (ये तीनत्रिक व्यष्टिरूप माने गये हैं, और वामादि शक्तियों की समष्टिशक्ति अम्बिका,एवं ज्ञानादिशक्तियों की समष्टि शक्तिशान्ता वर्णन यो.ह. में है। ये श्रीचक्र में त्रिकोण शक्तियाँ हैं कामेश्वरी वज्रेश्वरी, एवं भगमालिनी ये त्रिकोणशक्तियाँ इनकी समष्टि महात्रिपुरसन्दरी हैं, यहाँ बिन्दु सर्वानन्दमय नादरूप- नवमावरण में भगवती बैन्दवासना (ल.स.मे. नाम ९०५) हैं इसी विषय में एक उक्ति है- ''त्रिकोणे वैन्दवंश्लिष्टम्'' यहीं पर भगवतीत्रिपुरा बिन्दुत्रय में अभिव्यक्त होकर कामकला के रूप में भक्त के हृदय में आविर्भूत होती हैं । आगे के श्लोकों में भगवान्दत्त इस परमरहस्य को अभिव्यक्त कर रहे हैं- यथा-

आद्या निलीनस्वातन्त्र्या चितिः परशिवात्मिका ॥
उन्मज्जत् स्वातन्त्र्ययुता मिश्रबिन्दुतयास्थिता ॥37॥

आद्याचिति परशिवात्मिका है, इसलिये शिवशक्तिगर्भ हैं और वह गर्भगतशक्ति चितिनाम्नीआद्या उसका स्वातन्त्र्यभाव उसमें विलीन रहता है । जब उसका स्वातन्त्र्यभाव उन्मज्जित होता है अर्थात् अभिव्यक्त होने लगता है तब वह स्वातन्त्र्यभाव उन्मज्जित होता हुआ मिश्रबिन्दुरूप से स्थित हो जाता है ॥ ३७ ॥

सदाशिवात्मिका प्रोक्ता या विसर्गरूपिणी ॥
बिन्दुद्वयात्मिका सा तु भिन्नस्वातन्त्र्यसंयुता ॥38॥

जो आद्याशक्ति है वह विसर्गरूपिणी है,और सदाशिवात्मिका है। किन्तु वह जब अतिरिक्त स्वातन्त्र्य से संयुता होती है,तब वह दो बिन्दुरूपों में (अग्नि और सोम) होती हैं ॥३८॥

भवेदीश्वररूपा सा तत्र याद्या परात्मिका ॥
सा तुर्य बिन्दुरूपा वै सान्तत्येन परा त्रिषु ॥ 39 ॥

वह जो आद्यापराम्बिका शक्ति थी वह भिन्नस्वातन्त्र्यसंयुता होकर ईश्वररूपा (निग्रहकृत्य) वह चतुर्थ-बिन्दु के रूप में व्यक्त होती है, वह उन पूर्वोक्त तीनबिन्दुओं से सन्तत (निरन्तर) परा अर्थात् परे रहती हैं,वह पराशक्ति ही है ॥ ३९ ॥

यही भगवती के चतुर्थ पाये- ईशानकोण स्थित में ईश्वररूप में निरन्तर रहती हैं, निग्रहरूप चतुर्थ कृत्याधिकारिणी है - भगवती ईश्वरी नाम्नी हैं, (ल.स.ना. २७१) सौभाग्यभास्करग्रन्थ में -

''ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतन्त्रता चित्स्वरूपताचेति ॥
एते चाहन्तायाः पर्यायाः सद्भिरुच्यन्ते ॥ -

वही अहन्ता अर्थात् पराहन्ता है- चतुर्थ बिन्दुरूप में ईश्वरी है

वह भगवती के चतुर्थ पाए के रूप में सन्तत रहती है ।। -

चित्रस्य भित्तिरूपा सा प्रवाहपरिवर्जिता ॥
मिश्रबिन्दुर्व्यष्टिबिन्दुरिति बिन्दुत्रयं स्थितम् ॥ 40 ॥

वह परात्मिका आद्याशक्ति ईश्वररूपा निग्रहकृत्याधिकारिणी है, वह प्रवाह (परिवर्तन) वर्जिता है, चित्र (जगच्चित्र) की भित्तिरूपा (आधाररूपा) है । ईश्वर का यही निग्रहकृत्य है कि जगत् के परिवर्तन का निग्रह वे तीन बिन्दु मिश्रबिन्दुरूप में तथा व्यष्टिबिन्दुरूप में स्थित हैं-अर्थात् (प्रलय =सृष्टि, स्थिति, संहृति-रूप तीन कृत्यों का निग्रह) उद्‌र्ध्व बिन्दुसमष्टि (मिश्र) और व्यष्टिबिन्दु- दो अग्नि षोमात्मक) इस प्रकार तीन बिन्दु स्थित होते हैं ।।४०।।

सूर्याग्नीषोमरूपं तदूर्ध्वाग्रं योनिवत् स्थितम् ॥
बिन्दुत्रयं परिणतं त्रिकोणाकारतां गतम् ॥ 41 ॥

सूर्य, अग्नि और सोमरूप तीन बिन्दु हैं, इनमें ऊद्‌र्ध्वबिन्दु (सूर्य) जो अग्रबिन्दु है, वह योनिवत् स्थित हैं, (मूलकारणरूप तथा समष्टिरूप) वे तीन बिन्दु ही त्रिकोणकारता को प्राप्त हो गए ।।४१।।

अधोमुखं तत्त्रिकोणं सपरार्धकलात्मकम् ॥
एवमंशत्रययुतस्तुर्यः स्वर इहोदितः ॥ 42 ॥

वह त्रिकोण अधोमुख है ( ) वह परार्धकलात्मक है अर्थात्- हरार्धरूप है (ए) इस प्रकार तीन अंशों से युक्त चतुर्थस्वर (ई) यहाँ कहा गया है ।। ४२ ।।

भगवान-शिव ने भी यो. ह. पृ. १५ के चक्रसंकेत में १०वीं "शून्याकाराद्विसर्गान्ताद्‌बिन्दोःप्रस्पन्दसंविदः ।। १/२ ।। इस प्रकार कामकला का सूत्र - संकेत किया है ।

भगवान् शङ्कराचार्य जी भी देवीभुजङ्गम् " स्तोत्र में - यथा -

महामन्त्रराजान्तबीजं पराख्यम् ।
स्वतो न्यस्तबिन्दु स्वयं न्यस्तहार्दम् ।।
भवद्वक्त्रवक्षोजगुह्याभिधानम् -
स्वरूपं सकृद्भावयेत्स त्वमेव ।। १६ ।।
तथान्ये विकल्पेषु निर्विण्णचित्ताः,
तदेकं समाधाय बिन्दुत्रयन्ते ।।
परानन्द सन्धानसिन्धौ निमग्नाः,
पुनर्गर्भरन्ध्रं न पश्यन्ति धीराः ।। १७ ।।

इसीप्रकार सौ०ल०के १९वें श्लोक में -

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुग्मधस्तस्य तदधो- .
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ! ते मन्मथकलाम् ।

स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु - **त्रिलोकीमप्याशुभ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ।** रुद्रयामल में त्रिलोकी का कामकलारूप वर्णन मिलता है । नभोमहाबिन्दुमुखी, चन्द्रसूर्यस्तनद्वयासुमेरुहारवलया शोभमान महीपदा । पातालतलविन्यासा त्रिलोकीयं तवाम्बिके । कामराजकलारूपा जागर्ति स चराचरा ।

मानसपूजा में भी -

ईकारोद्ध्वंग बिन्दुराननमधो बिन्दुद्वयञ्च स्तनौ,
त्रैलोक्ये गुरुगम्यमेतदखिलं हार्दञ्चरेखात्मकम् ।।
इत्थं कामकलात्मिकां भगवतीमन्तस्समाराधन्नानन्दाम्बुधिमज्जने प्रलभतामानन्दथुंसज्जनः ।।१०३।।

चतुश्शती में -:

बिन्दुं संकल्प्य वक्त्रं तु तदधस्तात्कुचद्वयम् ।
तदधश्च हरार्धं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम् ।।
तत्र कामकलारूपामरुणां चिन्तयेदिह ।
ततस्तेनैव रूपेण निजरूपं विचिन्तयेत् ।।

मिश्रबिन्दु मुखंध्यायेद् व्यष्टिबिन्दुकुचद्वयम् ॥
सपरार्धकलां योनिं ध्यायेदेवं क्रमेणतु ॥43 ॥

मिश्रबिन्दु शिवशक्तिसम्मिलित समष्टिरूपबिन्दु का मुखरूप में ध्यान करे तथा व्यष्टिरूप में दो बिन्दुओं (अग्नि और सोम) को दोनों दाएँ,बाँए स्तनों के रूप में ध्यान करे। इस प्रकार सपरार्धकला (हरार्ध) कला की योनि ("ए" बीज) का इस प्रकार क्रमपूर्वक ध्यान करे ॥ ४३ ॥

मूर्तौ श्रीदेवतायाश्च स्वतनौ च क्रमेण तु ॥
एतद् गुह्यंह्यागमेषु राम ! मुक्त्यैकसाधनम् ॥ 44 ॥

राम ! श्रीदेवता की मूर्ति में और अपने शरीर में क्रम से चिन्तन करे अर्थात् उन अभौतिक बिन्दुओं (सूर्य, अग्नि और सोम) का तथा हरार्धकला (ए) यह कला- दो स्वरों की गुणित परिणति है- एक रूप "अकारो वै ब्रह्म (बृहदा०) तथा "इ" शक्ति अर्थात् शिवशक्ति का सामरस्यमयरूप चिन्तन करे ऐसा करने पर इष्ट में तथा आराधक में ऐक्य सम्पन्न होगा तब वह गर्भगत होने के लिये बाध्य नहीं होगा ॥४४॥ -

गुरुजन कहते हैं - **"परानन्दसन्धानसिन्धौ निमग्नाः पुनर्गर्भ रन्ध्रं न पश्यन्ति धीराः ॥"**

माहेश्वर १४ सूत्रों में प्रथम सूत्र "अ इ उ ण" सूत्र में नन्दिकेश्वरकाशिका में भगवान् नन्दिकेश्वर ने व्यक्त किया है - यथा- अकारो ब्रह्मरूपःस्यान्निर्गुणःसर्ववस्तुषु ॥ चित्कलामिं समाश्रित्यजगद्रूप उणीश्वरः(३) अकारं सन्निधीकृतजगतां कारणत्वतः, इकारःसर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणंगतम् (७) जगत्स्रष्टुमदिच्छा यदा दह्यासीत्तदाभवत्। कामबीजमिति प्राहुर्मुनयो वेदपारगाः(८) अकारो ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कलामता । उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वरः ॥९॥

स्वप्रकाश परमात्मवस्तुनो दृश्यमानजगतः सिसृक्षया ।।
कामतः परशिवप्रकाशितं कामबीजमिदमेव निश्चितम् ।।
बीजं बिन्दुद्वयारूढं सार्धयोनिस्वरूपकम् ।
महाकामकलारूपमात्मानं चिन्तयेत् प्रिये ।।इति च ।।
य एवं सततं ध्यायेत् स मुक्तिं प्राप्नुयाद् द्रुतम् ।।
एतत्ते राम! सम्प्रोक्तं यत्पृष्टं भवता ननु ।। 45 ।।

हे परशुराम! जो धीर मुमुक्षु साधक गुरुअनुग्रह प्राप्त होकर तथा पूर्णदीक्षा से सम्पन्न होकर श्रवण,मनन,निदिध्यासनक्रम से निरन्तर ध्यान करेगा, वह शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करेगा ।।

हे जामदग्न्य परशुराम!! आपने जो पूछा, जिज्ञासा की वह सभी सरहस्य तुम्हारी शान्ति के लिये सम्यक्रूप से हमने आपसे कहा ।।४५।।

श्रीमदितिहासोत्तमे श्री त्रिपुरारहस्ये श्रीमच्चर्याखण्डे ऽष्टादशाध्याये श्रीकामकलातत्त्व प्रतिपादनं श्रीमत्त्रिपुरालिताम्बार्पणमस्तु श्रीमद्दत्तगुरवे नमः। श्री सद्गुरुनाथाय नमः ।।

यस्यान्तं नादिमध्यं न हि करचरणं नामगोत्रं न सूत्रम् ।
नो जातिर्नैव वर्णो न भवति पुरुषो नो न पुंसं न च स्त्री ।।
नाकारं नो विकारं न हि जनि-मरणं नैव पुण्यं न पापम् ।
नोऽतत्त्वं तत्त्वमेकं सहज समरसं सद्गुरुं तं (त्वां) नमामि ।।

अवधूतगीतायाम् - ।। १४४।।-

भगवद्गीतोक्त निर्देशः -

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।गी.२/२७।।

इसी आज्ञा के अनुसार -

यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत् ।
यत्तपस्यामि गोविन्द! तत्सर्वं वै त्वदर्पणम् ।।

परिशिष्ट

विरुद-षोडशी

।।श्री हरिः।।

पूज्य महाराज जी की हस्तलिपि सुस्पष्ट अक्षरों में :

"इदं पुस्तकं ढुण्ढिराजानन्दनाथाय पीठपण्डिताय श्री राजराजेश्वरी-ललिताम्बाचरणकमलमिलिन्दाय विरुदषोडशी निर्मात्रे सस्नेहं प्रदीयते।

(श्रीमुखम्) श्रीः

लोकसमर्पको विदुषांवशवंदोऔपमन्यवो द्विवेदी रविशङ्करः-

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम् ।
रक्तशुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्यन्त्रैपुरं महः ।।
गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम् ।।
माता मरकतश्यामा मातंगीमदशालिनी ।
कटाक्षयतु कल्याणी कदम्बरुहवासिनी ।।
बालार्कारुण तेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीम् ।
नानालङ्कृतिराजमानवपुषं बालोडुराड्शेखराम् ।।
हस्तैरिक्षुधनुः सृणीं सुमशरं पाशं मुदा बिभ्रतीम् ।
श्रीचक्रस्थितं सुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां भजे ।।
त्वन्मुखाम्बुज विलोकनोल्लसत्प्रेमनिश्चलविलोचनद्वयीम् ।
उन्मनीमुपगतां सभामिमां भावयामि परमेशितावकीम् ।।
निर्विशेष चिद्ब्रह्मज्योतिः प्रकाशस्वरूपमहाकामेश्वर
लौहित्यविमर्शात्मकब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी ।।

चिदग्निकुण्ड सम्भूतकोटिभानुचन्द्र
प्रकाश सुशीतल बिसतन्तुतनीयसी ।
कामगिरिपूर्णगिरि जालन्धरोड्याणाख्यपीठादिषट्चक्र
परिव्याप्त बिन्द्वादि महाबिन्द्वन्त वितन्विती ।
भवविभवपराभवनिग्रहानुग्रहात्मकविधि
हरिहरेश्वर-सदाशिवमयपञ्चप्रेतासनाधिष्ठायिनी ।
भुज चतुष्टय सन्धारित मनोमयेक्षुकोदण्डक्रोधा-
काराङ्कुशोज्ज्वल-पञ्चतन्मात्र-सुमसायकरागस्वरूप-
पाशाढ्यनिगृहीत चराचर प्रपञ्च कादम्बा ।
निजाज्ञा प्रेरितवशिन्याद्यष्ट वाग्देवता
संस्तुत-सहस्त्ररहस्याभिधानवती ।
महाचतुः षष्टिकोटियोगिनीगणमयूख-
परिसेवित-नित्याषोडशिकारूपिणी ।
भारती गौरिलक्ष्मिकोटिशक्ति संयुत विधि-हरिहर कोटि समावृता।
परासुहन्मन्त्रिणीदण्डिनीसमावृत-सचामरलक्ष्मिशारदाकोटि
समाराध्या महागणेशमार्तण्ड भैरव लक्ष्मी नारायण
साम्बसदाशिवात्मकचतुरायतना ।
गणेश गुहबाला बाल्यलीला विनोदनानर्तनालोकामोदिनी ।
अभिनव सच्चिदानन्दस्वरूपब्रह्मपरिबृंहणैका-
धिष्ठानचतुर्वर्णाश्रममयसनातनधर्मविधायिनी ।
काव्यालापविनोदननर्मक्रीडा प्रहसन पर सुरेशादिलोकपालदिक्
पालपरिवृतचन्द्रमौलीश्वरा । श्रुतिगताभिधान स्वरूपानुसन्धानैक

प्रवणोन्मनसनकादि दक्षिणामूर्तिहयग्रीवानन्द भैरव लोपामुद्राऽगस्त्य-दत्तात्रेयसंवर्तजामदग्न्य सुमेधादि परौघदिव्यौघसिद्धौघमानवौघनवनाथ श्रीगुरु परमगुरु परमेष्ठिगुरु मण्डलप्रभामयी ।

अनादि ब्रह्मविद्यासम्प्रदायोपदेष्ट्र श्रीमन्नारायणादिशङ्कराचार्य-जगद्गुरुपरम्परासमाराधित श्रीचक्रमयी । अनन्त कोटिब्रह्माण्डजननी, सुधासिन्धुमध्यमणिद्वीपकदम्बवनमध्यचिन्तामणिप्रासादराजान्तःपुरनि-वासिनीमहाश्रीचक्रनवावरणावरणेशीसहित महामाहेश्वरिमहामहारात्रि महामहाशक्ति महामहागुप्तामहाज्ञप्ता, महामहानन्दा, महामहास्पन्दा, महामहाशया, महामहाश्रीचक्रनगरसम्राज्ञी, महामहात्रिपुरसुन्दरी राजराजेश्वरी, पराभट्टरिका ललिताम्बा भगवती श्रीमाता लालित्य संवर्द्धिनी-परमवात्सल्यशालिनी-कारुण्यवारांनिधि श्रीमत्कामेश्वरांक-निलया, पञ्चप्रेतासनासीना, पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी अनन्तकोटिज्ञानरत्नमय-नवप्रेतपाद-पीठसन्निहित-पादाम्भोरुहा विजयतेतमाम् ।

कृपाङ्कुरु जगन्मातः मामेव हततेजसम् ।
ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं देहि मनस्विनि ।।
प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।।
स्वकीयैरम्भोभिस्सलिलनिधि सौहित्यकरणम् -
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तवजननि वाचां स्तुतिरियम् ।। इति ।।

विरुत् षोडशी तथा खड्गमाला में वर्णित शक्तियों के नाम परिचय श्लोकों में -

प्रोक्ता पंचदशीविद्या 'महात्रिपुरसुन्दरी' ।
श्रीमहाषोडशीप्रोक्ता 'महामाहेश्वरी' सदा ।।१।।
प्रोक्ता श्रीदक्षिणाकाली 'महाराज्ञीति' संज्ञया ।
(लोकेख्याता 'महाराज्ञी' नाम्ना दक्षिणकालिका ।।)
आगमेषु 'महाशक्तिः' ख्याताभुवनेश्वरी ।।२।।
'महागुप्ता' गुह्यकालीनाम्ना शास्त्रेषु कीर्तिता ।
महोग्रतारा निर्दिष्टा 'महाज्ञप्तेति' भूतले ।।३।।
महानन्दा कुब्जिका स्याल्लोकेऽत्रजगदम्बिका ।
त्रिशक्त्याद्यात्र चामुण्डा 'महास्पन्दा' प्रकीर्तिता ।।४।।
महामहाशया प्रोक्ता बालात्रिपुरसुन्दरी ।
श्रीचक्रराजः सम्प्रोक्तस्त्रिभागेन महेश्वरि ।।५।।

।। इति ।।

माता राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी,
परमहंसी गंगा आश्रम, झोंतेश्वर (म.प्र.)

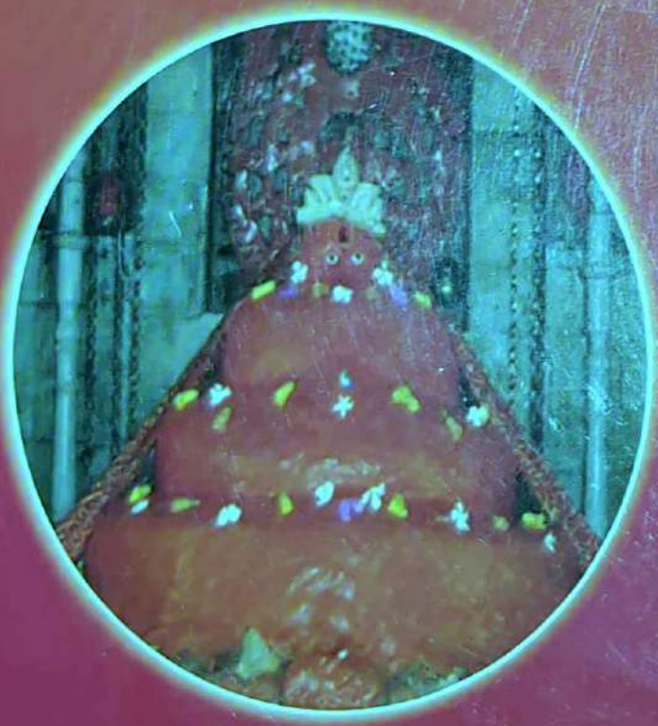

माता भद्रकाली
देवभूमि द्वारका (गुजरात)

माता पूर्णागिरि
ज्योतिर्मठ (बदरिकाश्रम)